॥ श्रीः ॥

चौखम्भा संस्कृत भवन ग्रन्थमाला

३७

श्रीविष्णुशर्मविरचितं

पञ्चतन्त्रम्

(अपरीक्षितकारकं नाम पञ्चमं तन्त्रम्)

'किरणावली' संस्कृत-हिन्दीव्याख्योपेतम्

व्याख्याकारः

डॉ. राजू (राजेश्वर) शास्त्री मुसलगाँवकर

एम.ए., पी-एच्.डी., साहित्याचार्यः

सिंधिया प्राच्यविद्या शोध प्रतिष्ठान

विक्रम विश्वविद्यालय-उज्जैन

सम्पादकः

श्री आर.डी. मुसलगाँवकरः

कुलसचिवः, देवी अहिल्या विश्वविद्यालय-इन्दौर

चौखम्भा संस्कृत भवन

वाराणसी

इस ग्रन्थ का प्रकाशनाधिकार प्रकाशक द्वारा सुरक्षित है। इस ग्रन्थ के किसी भी अंश का पुनः किसी माध्यम से तैयार होना, सुधार कर आदि किसी पद्धति से संप्रेषण प्रकाशक तथा कार्पीराइट धारक के पूर्व अनुमति विना अवैधानिक होगा।

प्रकाशक :

चौखम्भा संस्कृत भवन

संस्कृत, आयुर्वेद एवं इण्डोलाजिकल ग्रन्थों के प्रकाशक एवं वितरक
चौक, चित्रा सिनेमा के सामने (बैंक ऑफ बड़ौदा बिल्डिंग)
वाराणसी -२२१००१ (भारत)
फोन : +९१-५४२-२४२०४१४
e-mail : csb.brajendra@gmail.com

ISBN-978-81-89986-48-3

सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन
© चौखम्भा संस्कृत भवन

संस्करण : पुनर्मुद्रित, वि०सं० २०७३ (सन् २०१६)
मूल्य : रु० ६०.००

वितरक :

चौखम्भा संस्कृत भवन

चौक, चित्रा सिनेमा के सामने (बैंक ऑफ बड़ौदा बिल्डिंग)
वाराणसी -२२१००१ (भारत)

मुद्रक : मित्तल आफसेट, वाराणसी

।। समर्पणम् ।।

श्रद्धाविश्वास-रूपिण्याः,

ब्रह्मसायुज्यमुपगतायाः,

प्रेरणास्रोतस्वरूपायाः, देव्याः, मातृरूपायाः

डॉ. सौ. विमला गजानन मुसलगाँवकरेति ख्यातायाः

पादारविन्दे श्रद्धाञ्जलिरूपेण

समर्प्यते कृतिरियम्

१४ जुलाई २००१

श्री हरिः शरणम्

विषय-सूची

		पृष्ठाङ्काः
	आत्मकथ्य	५
	भूमिका	६-२२
	कथाः	
१	क्षपणक-कथा	१-२९
२	ब्राह्मणी-नकुल-कथा	३०-३६
३	लोभाविष्टचक्रधर-कथा	३७-५८
४	सिंहकारकमूर्खब्राह्मण-कथा	५८-६४
५	मूर्खपण्डित-कथा	६४-७३
६	मत्स्यमण्डूक-कथा	७४-८२
७	रासभशृगाल-कथा	८३-९२
८	मन्थरकौलिक-कथा	९३-१०६
९	सोमशर्मपितृ-कथा	१०७-११०
१०	चन्द्रभूपति-कथा	१११-१३४
११	विकाल-वानर-कथा	१३५-१४२
१२	अन्धक-कुब्जक-त्रिस्तनी कथा	१४३-१४४
१३	राक्षसगृहीत-ब्राह्मण कथा	१४५-१५७
१४	भारुण्डपक्षि-कथा	१५८-१६१
१५	ब्राह्मण-कर्कटक कथा	१६२-१६६

आत्मकथ्य

संस्कृत भाषा में लोककथाओं का सर्वप्रथम सोद्देश्य संग्रह हमें पञ्चतन्त्र नाम से उपलब्ध होता है। कि बहुना संस्कृत साहित्य का यदि कोई ग्रंथ व्यापक अर्थ में विश्वासाहित्य का अंग बना हो तो वह है- पञ्चतन्त्र। इसके-मित्रभेद, मित्रसम्प्राप्ति, काकोलूकीय, लब्धप्रणाश, और अपरीक्षितकारक, ये तंत्र हैं। प्रस्तुत संस्करण **अपरीक्षितकारक** का है। इस तंत्र पर एक सुदीर्घकाल में एक सुव्यवस्थित परीक्षोपयोगी संस्करण की आवश्यकता थी, जिसे हमने पूर्ण करने का प्रयत्न किया है। जो छात्रों हेतु उपादेय होगा।

हमारे पूज्य पितृव्यचरण गुरुपाद- सर्वशास्त्रवाचस्पति मीमांसाभूषण डॉ. गजाननशास्त्री मुसलगाँवकर तथा स्व. सौ. डॉ. विमला मुसलगाँवकर के कृपा प्रसाद का ही यह फल है, जिन्होंने मुझे बौद्धिक एवं शारीरिक पोषण देकर इस योग्य बनाया। उनके चरणों में मेरा कोटि-कोटि नमन है।

पूज्यपाद पितृचरण डॉ. केशव राव मुसलागाँवकर एवं पूजनीया जननी सौ. प्रमिलाजी का अनन्त उपकार मानता हूँ, जिनके कृपा प्रसाद से मैं इस व्याख्या को सम्पन्न कर सका हूँ। एतदर्थ उनके श्रीचरणों में मेरा कोटिशः प्रणाम है।

प्रस्तुत संस्करण का सम्पादन हमारे ज्येष्ठ भ्रातृवर्य श्री आर.डी. मुसलगाँवकर जी ने प्रशासन के कार्यों में व्यापृत रहते हुए भी करुणा दृष्टि से किया है, जिससे संस्करण का महत्त्व और बढ़गया है, तदर्थ उन्हें नमन पूर्वक धन्यवाद देता हूँ।

श्री दीपक मिश्र (अध्यक्षः महामना मण्डल भा.ज.पा.), श्री शिवदास मौर्य, श्री आलोक उपाध्याय, श्री अखिलेश श्रीवास्तव, श्री प्रमोद, श्री सुभाष मिश्र को अनेक धन्यवाद देता हूँ, जिनके सहयोग से अपेक्षित सामग्री प्राप्त हुई। भूतभावन श्री विश्वेश्वर महादेव से नित्य उनके शुभोदर्क की कामना करता हूँ।

अन्त में यह भी निवेदन है कि मनुष्य भ्रान्तियों का दास है। भरसक प्रयत्न के उपरान्त भी अशुद्धियाँ रह गयी हैं, जिन्हें विद्वान् ठीक करके ही देखेंगे।

१३, दीनदयालनगर, नवाबगंज
वाराणसी - १०

विदुषांवशंवदः
राजेश्वरशास्त्री

भूमिका

विश्व-साहित्य में संस्कृत के आख्यान-साहित्य का महत्त्वपूर्ण स्थान है। रोचकता, मौलिकता व रचना-नैपुण्य के कारण वह अनुपम है। संस्कृत काव्य-साहित्य के कवियों तथा लेखकों को उनके अपने-अपने क्षेत्र में अक्षय्य यश प्रदान करने में उसका विपुल योग-दान रहा है। वस्तु की सुन्दर निर्मिति में वस्तुके मूल रूप का भी विशेष महत्त्व होता है। इस ईक्षण से देखने पर उसमें परंपराभुक्त पात्रों का चित्रण न होकर जन-जीवन का जो सजीव अंकन देखने को मिलता है, वह उसके मूल-रूप की ओर ही इंगित करता है। संस्कृत की प्राचीन कहानियाँ दो रूपों में मिलती हैं–उनका **एक रूप** है–नीत्यात्मक या उपदेशात्मक और **दूसरा रूप** है–मनोरंजनात्मक। इनमें नीतिकथाओं के मुख्यपात्र पशु-पक्षी होते हैं, और मनोरंजक कहानियों के पात्र मनुष्य। दोनों में प्रधान कथा के अन्तर्गत अवान्तर कथाओं को ग्रहण करने की रूढ़ि का आश्रय लिया गया है।

कहानियों का सर्वप्रथम उल्लेख वैदिकसंहिताओं में परिलक्षित होता है। उन्हीं का विस्तृतरूप हमें ब्राह्मणों तथा उपनिषदों में मिलता हैं। उपनिषदों तथा रामायण-महाभारत में कई पशु-पक्षियों की कहानियाँ केवल उपदेश देने के लिये ही रचित हैं। उल्लेखनीय यह है कि भले ही इन वैदिक कहानियों ने अपना रूप पुराणों में, रामायण में, और महाभारत में किंचित् परिवर्तित कर लिया हो, परन्तु वे कथानक में अपने मूल-रूप में एक ही हैं। तृतीय शताब्दी ई०पू० के भरहुत के स्तूप पर अनेक नीति कथाओं का नाम अंकित है। इनके अतिरिक्त जैन-साहित्य में इनकी विपुलता है। धार्मिक देशना के निमित्त इन कथाओं का उपयोग किया जाता था। पालिभाषा में रचित बौद्धों की मनोरंजक कथाओं का संकलन **'जातक'** में उपलब्ध होता है। जिनकी संख्या ५५० है। यहाँ ध्यातव्य यह है कि बौद्धों की कथाएँ अतीत से सम्बन्ध रखती हैं जबकि जैन कथाएँ वर्तमान से संबंध रखती हैं। अत: जैन कथाओं में (वर्तमान) भारतीय समाज के नाना स्तरों का ऊपर से लेकर निम्नतम स्तर का-यथार्थ चित्रण देखने को मिलता है।

ईसा की प्रथम शती में इस प्रकार की कथाओं का एक बृहत् संग्रह, जिस पर न किसी धर्म की छाप थी और न जिसमें कहानियों को किसी विशेष उद्देश्य की सिद्धि के लिए रूपान्तरित किया गया था, वड्ढकहा (बृहत्कथा) नाम से तैयार हुआ। इस कथा संग्रह के प्रणेता थे **गुणाढ्य** और इसकी भाषा थी पैशाची प्राकृत। दुर्दैव से यह संग्रह आगे चलकर कालकवलित हो गया, किन्तु बृहत्कथा एक बड़ा कथा ग्रंथ था इसमें कोई संदेह नहीं। बृहत्कथा पर आधारित दो बड़े पद्यमय कथा-ग्रंथों का निर्माण ईसा की दसवीं-ग्यारहवीं शताब्दी में सम्पन्न हुआ। इनमें एक है सोमदेव का **कथासरित्सागर** और दूसरा क्षेमेन्द्र की बृहत्कथा मंजरी। कथासरित्सागर के श्लोकों की संख्या २२००० से भी अधिक है। इसमें १८ लम्बक और १२४ तरंग हैं। क्षेमेन्द्र की कथा मंजरी सरित्सागर से बहुत छोटी है। दोनों लेखकों ने गुणाढ्य को अपना अपजीव्य स्वीकार किया है। इनमें ऐतिहासिक, पौराणिक, आख्यान, आख्यायिका, कथा सभी प्रकार की कहानियों का संग्रह है।

पञ्चतन्त्र और हितोपदेश

नीति कथाओं में **विष्णुशर्मा** द्वारा रचित **'पंचतन्त्र'** तथा **नारायण पण्डित** द्वारा रचित **'हितोपदेश'** का विशेष महत्त्व है । वस्तुत: पंचतन्त्र संस्कृत साहित्य का एक देदीप्यमान रत्न है । संस्कृत साहित्य का यदि कोई ग्रन्थ व्यापक अर्थ में विश्वसाहित्य का अंग बना हो तो वह है–**'पंचतन्त्र'** । देश-विदेश सर्वत्र उसकी प्रसिद्धि हुई । विश्व की लगभग ६० भाषाओं में दो- सौ से अधिक उसके अनुवाद या रूपान्तर प्राप्त होते हैं । पंचतन्त्र की उत्पत्ति स्थान के विषय में कुछ विद्वानों का मत है कि उसकी रचना कश्मीर में हुई, इसके विपरीत कुछ विद्वान् इसे वर्णनों के आधार पर दक्षिण देश से संबंधित मानते हैं ।

पञ्चतंत्र का संग्रथन अनूठा है । उसकी एक कथा दूसरी का उत्स है अथवा एक कथा दूसरी कथा से गुँथी हुई है । संक्षेप में इसकी शैली को इस प्रकार समझ सके हैं कि- लोक व्यवहारगत एक उदाहरण के अनुमोदन में दूसरी कथा

कही गयी है और पु: उस दूसरी कथा के अन्तर्गत समाविष्ट तथ्य के उद्घाटन में तीसरी। कहानियों का यह क्रम इसी प्रकार ग्रंथ में चलता रहा है और इस तरह पाँच प्रमुख कथानकों के उदर में १०० के लगभग कहानियाँ समा गयी हैं।

जर्मनी के दो विद्वानों डॉ. बेनफी और डॉ. हर्टल की दृष्टि में 'पंचतन्त्र'

डॉ. बेनफीने पंचतन्त्र का विशेष अध्ययन कर कहा है कि यूरोप का मध्य-युगीन साहित्य पंचतन्त्र का विशेष ऋणी है। डॉ. हर्टल ने पंचतन्त्र के साहित्यिक रूप, उसकी विविध वाचनाओं तथा उससे उद्भूत कथा साहित्य के विषय में गम्भीर तथा विशद अनुशीलन किया है। इन दोनों विद्वानों के मत में पंचतन्त्र केवल भारतीय साहित्य का ही अंग न होकर विश्वसाहित्य का भी एक उदात्त तथा उल्लेखनीय अंग है।

पंचतंत्र के रूपान्तर

काल-प्रवाह में पंचतंत्र का वह प्राचीनतम रूप आज लुप्त होकर परिवर्तित हो गया है। तथापि समय-समय पर उसके अनेक परिवर्तन और परिवर्धन हुए जो अनेक नामों से आज प्रसिद्ध है। इनका तुलनात्मक अध्ययन करके **डॉ. एजर्टन** ने पंचतंत्र का एक प्रामाणिक संस्करण तैयार किया है। इसे 'पुनर्घटित पंचतंत्र' कहा जाता है।

पंचतंत्र के भाग

'पंचतंत्र' में **'मित्रभेद'**, **'मित्रसम्प्राप्ति'**, **'काकोलूकीय'**, **'लब्ध-प्राणाश'** और **'अपरीक्षित-कारक'** नाम के पाँच तंत्र या भाग हैं। प्रत्येक भाग में प्रधान कथा एक है, जिसे परिपुष्ट करने के लिए गौण कथाओं का समावेश किया गया है। ये उपकथाएँ स्वतन्त्ररूप से भी पढ़ी–समझी जा सकती है। उक्त पाँचों तंत्रों में प्रथम तंत्र सबसे बड़ा है और अन्तिम दो तंत्र बहुत छोटे है।

पंचतंत्र की रचना का उद्देश्य

ग्रन्थकार का उद्देश्य आरम्भ से ही सदाचार तथा नीति से परिपूर्ण व्यवहार कुशलता का शिक्षण देना परिलक्षित होता है। ग्रन्थ के आरम्भ में ही उल्लिखित इन–**'अस्ति दाक्षिणात्ये जनपदे महिलारोप्यं नाम नगरम्। तत्र अमरशक्तिर्नाम राजा बभूव।'**---------- इत्यादि पंक्तियों में ग्रन्थ रचना का उद्देश्य विदित हो जाता है।

ग्रंथकार का नाम–राजा को अपने मूर्ख पुत्रों को विद्वान् तथा नीति-संपन्न बनाने के लिए योग्य गुरु की आवश्यकता थी। उन्हें अपनी सभा में ही योग्य गुरु **'विष्णुशर्मा'** मिले। विष्णुशर्मा ने ही राजपुत्रों को नीतिकुशल बनाने के लिए इस ग्रंथ की रचना की।

पंचतंत्र का विषय

पंचतंत्र में पशु-पक्षियों की रोचक कथाओं द्वारा व्यवहार कुशलता, सदाचार और राजनीति का उपदेश दिया गया है। पशु-पक्षियों का प्राधान्य होने पर भी उनमें मानव-पात्र की उपेक्षा नहीं की गई है। लोभ, पाखण्ड, कपट, और स्त्री चरित्र के दोषों को उद्घाटित करने वाली अनेक कथाएँ हैं। कथा और सिद्धान्त-ये दो उसके प्रधान विभाग हैं। वर्णनात्मक कथा भाग में गद्य का प्रयोग किया गया है और उपदेश या सिद्धान्त कथन श्लोकों में अंकित है। ये श्लोक प्राय: संस्कृत के प्राचीन ग्रंथों से लिये गये हैं।

पञ्चतन्त्र की कहानियाँ धार्मिक, अध्यात्मिक और सामाजिक रूढिगत भार से सर्वथा मुक्त, विशुद्ध व्यावहारिक जीवन की कहानियां हैं जिनमें मानवी प्रकृति के उदात्त और कुत्सित दोनों स्वरूपों के दर्शन होते हैं। धर्म, नीति और व्यवहार का ऐसा कौन सा पक्ष है जिसकी चर्चा और समीक्षा इस ग्रंथ में न प्राप्त होती है। पाश्चात्य विचारकों ने पञ्चतन्त्र पर बौद्ध प्रभाव सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। उनके मतानुसार यह बौद्ध कथाओं का ब्राह्मण संस्करण है जिसमें ब्राह्मणों ने अपने अनुकूल बदल दिया है। पाश्चात्य विद्वानों की उपर्युक्त भ्रान्त धारणा

ब्राह्मणों के विरूद्ध उनके पूर्वाग्रह का परिणाम है। वस्तुत: पञ्चतन्त्र और बौद्ध कथाओं का उत्स एक ही है, लोक व्यवहार। बौद्धों ने अपने स्वार्थानुसार उन्हें साम्प्रदायिक बनाया है तो दूसरी ओर पञ्चतन्त्रकार ने उन्हे उनके पूर्ववत् रूप में रहने दिया है।

पंचतंत्र की भाषा और शैली

प्रासादिक मुहावरेंदार भाषा, भावानुरूपशब्दावली, अनूठीकथन प्रणाली, छोटे-छोटे किन्तु अर्थपूर्ण वाक्य विन्यास, और वर्णित कथाओं का संगठन– ये समस्त विशेषताएँ पंचतंत्र को एक उत्कृष्ट और कलापूर्ण कृति बना देती हैं। पंचतंत्र के अनुवादक **श्री राइडर** के मत में पंचतंत्र 'संसार का सर्वश्रेष्ठ कहानी संग्रह है।' उपमा, उत्प्रेक्षा, दृष्टान्त, और अर्थान्तरन्यास आदि विविध अलंकारों का प्रचुर प्रयोग इसमें देखने को मिलता है। लम्बे समासों तथा श्लिष्ट शब्दावली का प्रयोग बहुत कम हुआ है। पंचतंत्र के पाँचों भागों मे पाण्डित्य व हास्य रस का समावेश हुआ है।

पंचतंत्र का विदेशी भाषाओं में अनुवाद

'पंचतंत्र' विश्वकी सर्वाधिक अनूदित पुस्तकों में से एक है। ५५० ई० के आसपास उसका ईरान की प्राचीन भाषा पहलवी में अनुवाद हो चुका था। ८वीं शती में इसका अरबी में अनुवाद किया गया। इस अनुवाद का नाम 'कलीलह और 'दिमनह' था, जो पंचतंत्र के 'करटक' और 'दमनक' नाम के दो सियारों का रूपान्तर है। इस अरबी अनुवाद के आधार पर पंचतंत्र का यूरोप की प्राय: सभी भाषाओं-यूनानी, स्लाव, डच, लैटिन इटालियन, जर्मन, स्पैनिश, हीब्रू, अंग्रेजी, तर्की आदि में अनुवाद हुए हैं। कहा जाता है कि भारत से बाहर 'पंचतंत्र' के ६० भाषाओं में २५० विविध संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं।

हितोपदेश

उपदेशपूर्ण कथाओं का एक लोकप्रिय संकलन–**'हितोपदेश'** है। इसकी

रचना बँगाल के नारायण पंडित ने १००० ई० और १३०० ई० के मध्य में की थी। इसकी कहानियाँ चार भागों–**मित्रलाभ, मित्र भेद, विग्रह,** और **सन्धि** में विभक्त हैं।

पञ्चतंत्र का अपरीक्षितकारक

यह पंचतंत्र का अन्तिम प्रकरण है, इसका प्रधान उद्देश्य, कहानियों द्वारा-प्रत्येक कार्य को करने के पहले उस कार्य का सम्यक् प्रकार से विचार कर लेना, मानव को उपदेश देना ही है–इसे ऐसा भी समझा जा सकता है **'परित ईक्षा परीक्षा, विचार्य कार्यकारित्वम्, परीक्षा जाताऽस्येति परीक्षितः** विचार्य कार्यकारीपुरुषः। **न परीक्षिता अपरीक्षिताः कारका यत्र तद्–अपरीक्षितकारकम्।'** इसमें १५ कहानियाँ हैं। जो नैतिक वचनों से पूर्ण हैं, जिनका पालन-अनुशीलन करने से मानव जीवन सुखी हो सकता है।

जनक गंज **आर. डी. मुसलगाँवकर**
बक्षी का गोठ
लश्कर (ग्वालियर) म. प्र.
४७४००१

अपरीक्षित कारक की संक्षिप्त कथाएँ

(१) क्षपणक-कथा

मणिभद्र नामक एक सेठ दक्षिण प्रदेश के पाटलिपुत्र नामक नगर में रहता था। दैववशात् धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष से संबंधित कर्मों में सदा व्यापृत रहने वाला वह निर्धन हो गया। निर्धनता को समस्त अपमानों का मूल कारण समझकर प्राणत्याग करने का निश्चय कर वह सो गया। रात्रि में पद्म नामक निधि ने क्षपणक (जैन साधु) के रूप में स्वप्न में आकर उसे दर्शन दिया और कहा कि 'कल प्रात: मैं इसी रूप में तुम्हारे घर आउँगा और तुम दण्डे से मेरे शिर पर प्रहार करना जिससे मैं स्वर्णमय होकर तुम्हारे घर में अक्षय-निधि हो जाऊँगा'। प्रात: रात्रि के स्वप्न की यथार्थता के विषय में वह विचार कर ही रहा था कि उसकी पत्नी ने नाई को पैरों की सफाई करने के लिए बुला लिया। उसी समय वही क्षपणक वहाँ उपस्थित हुआ, उसे मणिभद्र ने पहचान कर उसके शिर पर दण्डे से प्रहार किया। मारते ही वह क्षपणक स्वर्णमय होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। सेठ ने प्रत्यक्षदर्शी नाई को यथोचित वस्त्र-धन आदि देकर कहा कि इस घटना की जानकारी किसी को न देना। घर आकर नाई ने विचार किया कि ये सभी क्षपणक यदि शिर पर प्रहार करने से स्वर्णमय हो जाते हैं, तो क्यों न सभी क्षपणकों को प्रात: घर बुलाकर उनके शिर पर प्रहार किया जाय और प्रभूत स्वर्ण का अर्जन किया जाय। ऐसा विचार कर उसने जैन साधुओं के मठ में जाकर उन्हें अपने घर आने की प्रार्थना की। बहुत प्रार्थना करने पर कुछ साधु उसके घर गये। वहाँ ले आने पर पूर्व से ही रखे हुए दण्डे से उन्हें वह मारने लगा। चारों ओर रक्त की धारा प्रवाहित हुई। कोलाहल को सुनकर नगर के रक्षक ने उसे पकडा और इस कृत्य का कारण पूछा। उसने मणिभद्र सेठ के यहाँ देखी हुई घटना को इसका कारण बताया। मणिभद्र ने भी अपनी बात बतायी। नाई को शूली पर चढ़ा ने की आज्ञा हुई। इस कथा का तात्पर्य यह है कि जो भली-भाँति देखा न गया हो, भली भांति ज्ञात न हो और समुचित रीति से जाँचा न गया हो, उस कार्य को नहीं करना चाहिए।

ब्राह्मणी-नकुल-कथा

किसी नगर में देवशर्मा नामक ब्राह्मण रहता था। उसकी पत्नी ने एकपुत्र को जन्म दिया। उसी दिन एक नेवले की स्त्री ने एक नेवले को जन्म दिया और वह तत्काल मर गयी। ब्राह्मणी ने अपने पुत्र के साथ-साथ उस नेवले का भी बड़े ही मनोयोग से लालन-पालन किया। किन्तु पुत्र के प्रति अत्यधिक स्नेह होने से वह नेवले का उतना विश्वास नहीं करती थी। और सदा आशंकित रहती थी कि कभी जातिस्वभाव-वश यह उसके पुत्र का अपकार न कर दे। एक दिन अपने पुत्र को खाट पर सुलाकर वह अपने पति से यह कहकर कि 'पुत्र की नेवले से रक्षा करना' जल लाने तालाब पर चली गयी। उसके जाने पर ब्राह्मण भी घर छोड़कर भिक्षा मांगने के लिये निकल गया। इसी समय दैव से बिल में से एक काला सर्प निकल आया। उस सर्प को देखकर नेवला सर्प को अपना स्वाभाविक शत्रु समझकर अपने भाई (ब्राह्मणी-पुत्री) की रक्षा करने के लिये उस पर टूट पड़ा और उसके टुकडे-टुकडे कर डाले। ब्राह्मणी के आते ही वह रक्तरंजित मुख से उसके सन्मुख गया। ब्राह्मणी को अपने पुत्र के मारे जाने की शंका हुई। ऐसा सोचकर उसने उस नेवले पर जलसे भरा हुआ घड़ा पटक दिया। जिससे उस नेवले की तत्काल मृत्यु हो गई। शीघ्रता से घर में आकर उसने अपने पुत्र को सुरक्षित सोया हुआ और काले सर्प को खण्ड-खण्ड में मृत देखा। यह देखकर उसे बहुत क्लेश हुआ-पश्चात्ताप हुआ कि विना विचार किये ही मैंने नेवले को मार डाला है। पति के आने पर उसके लोभाभिभूत होकर भिक्षा के लिये जाने की निन्दा की।

तात्पर्य यह है कि-मनुष्य को कोई भी कार्य जल्दी में विना विचार किये नहीं करना चाहिए, साथ ही अत्यधिक लोभ भी नहीं करना चाहिए। जो अधिक लोभ करते हैं, उनके मस्तक पर विपत्ति का चक्र घूमता है। श्लोक (११)

(३) लोभाविष्ट चक्रधर कथा

किसी स्थान पर चार ब्राह्मण मित्र-भाव से रहते थे। वे अत्यन्त निर्धन

थे। निर्धनता से दुःखी होकर धनार्जन के लिए वे घर से निकल पड़े। उज्जयिनी में पहुँचकर उन्होंने शिप्रा नदी में स्नान किया और जैसेही महाकाल के दर्शन कर वे निकले, उन्हें भैरवानन्द नामक एक योगी मिला, जिससे उन्होंने चार सिद्धवटियाँ प्राप्त की। योगी ने उन्हें कहा कि हिमालय की ओर जाओ और जहाँ-जहाँ यह वटी गिरे वहीं जमीन खोद कर धन प्राप्त कर लें। निर्देशानुसार उस ओर जाने पर एक ब्राह्मण के हाथ से वटी गिरी और वह वहीं भूमि खोदकर ताम्र प्राप्त कर घर चला गया। शेष तीन आगे बढ़े। कुछ दूर जाने पर दूसरे के हाथ से सिद्धवटिका गिर गयी। वहाँ दूसरे ने भूमि खोदी और रजत प्राप्त की। उसने अन्य दोनों को भी वहीं से लौट चलने को कहा, किन्तु वे दोनों नहीं माने और वे आगे बढ़े। कुछ दूर जाने पर तीसरी सिद्धवटी भी गिरी और तीसरे ने भूमि को खोद कर स्वर्णराशिको प्राप्त किया। उसने चौथे को भी वहीं से लौट चलने के लिए कहा पर वह लोभवश-कि इसके आगे और अच्छी (रत्नों की) भूमि-मिलेगी और वह आगे बढ़ा। तीसरा वहीं रुक गया कि यह चौथा लौट आने पर साथ चलेगा। चौथा सूखे प्रदेश में आगे बढ़ा और भूखप्यास से व्याकुल होकर दुःखी हुआ। उसने आगे चलने पर देखा कि एक व्यक्ति के शिर पर चक्र घूम रहा है। उसने उसके पास पहुँचकर उसे पूछा–यह क्या है ? और उसके पूछते ही वह चक्र उसके सिर पर से उचटकर इसके (चौथे ब्राह्मणके) सिर पर आ गया। तदनन्तर उसने उसे बताया कि जब कोई आगे इसी प्रकार सिद्ध-वटी लेकर निधि प्राप्त करने के लिए यहाँ आयेगा और तुमसे बातें करेगा तब यह भ्रमित चक्र तुम्हारे सिर पर से उचट जायगा। इस चक्र को धारण किये हुए तुम भूख-प्याससे त्रस्त रहोगे, किन्तु मरोगे नहीं। जब तीसरे व्यक्ति ने बहुत समय तक उसकी प्रतीक्षा की और वह नहीं आया तो उसने उसे ढूँढना प्रारंभ किया, कुछ आने जाने पर उसने उसे सिर पर घूमते चक्र को धारण किये हुए देखा। पासमें जाकर उसे ऐसी दशा कारण उसने पूछा–तब चक्रधर ने कहा–

(श्लोक न. ३५) कार्यकाल का विचार करने वाली बुद्धि, विद्या की अपेक्षा श्रेष्ठ होती है,क्योंकि बुद्धि के अभाव में लोग विद्वान् होकर भी ऐसे ही कष्ट से ग्रस्त

होकर नष्ट हो जाते हैं जैसे बुद्धिहीन, किन्तु विद्या-सम्पन्न ब्राह्मण शेर को जीवित करने के कारण नष्ट हो गये। (३५)

(४) सिंह-कारक मूर्खब्राह्मण-कथा

एक स्थान पर चार ब्रह्मण-मित्र साथ-साथ रहते थे। उन चारों में से तीन तो शास्त्र-ज्ञान से सम्पन्न थे, किन्तु बुद्धिहीन थे। चौथा ब्राह्मण विद्वान् नहीं था, किन्तु अत्यधिक बुद्धिमान था। किसी समय उन चारों ने विचार किया कि अपनी अर्जित विद्या से राजाओं को प्रसन्न कर धनार्जन यदि नहीं किया तो उस विद्या से क्या लाभ ? ऐसा विचार कर वे पूर्वदेश की ओर चल पड़े। आगे चलकर एक ने कहा कि अर्थ तो विद्या से प्राप्त होता है, बुद्धि से नहीं, अतः मूर्ख को साथ में न ले जाकर घर लौटा दिया जाय। दूसरे ने भी इस विचार का समर्थन किया, पर तीसरे ने कहा कि वह सदा अपने साथ रहा है अतः धनार्जन में इसे भी समभागी बना लो और इसे साथ ले चला जाय। अन्ततः वे चारों आगे बढ़े। आगे चलने पर उन्हें कुछ अस्थियाँ दिखाई दी। एक ने अपनी विद्या से उन अस्थियों को एकत्र किया। दूसरे ने अपनी विद्या से उन पर मांस तथा त्वचा का आरोपण कर दिया। तीसरा जब अपनी विद्यासे उसमें प्राण संचार करने वाला था तो चौथे ने उसे ऐसा करने से रोका और कहा–यदि इसमें प्राणों का संचार हो जायगा तो यह सिंह हम सभी को खा जायगा। जब तीसरे ने उसका कहना नहीं माना तो वह वृक्ष पर चढ़ गया। प्राणों का संचार उसमें होते ही वह सिंह तीनों को मारकर खा गया।

(५) मूर्ख पण्डित-कथा

एक स्थान पर चार ब्राह्मण-मित्र रहते थे। बाल्यकाल में उन्होंने परदेश में जाकर विद्यार्जन और धनार्जन करने का निश्चय किया। तदनन्तर वे कान्यकुब्ज के विद्यालय में गये। वहाँ गुरु-गृह में बारह वर्षों तक उन्होंने विद्यार्जन किया। विद्यार्जन करने के पश्चात् गुरु की आज्ञा से धनार्जन करने के लिए वे निकल

पड़े। मार्ग चलने पर उन्हें दो मार्ग दिखाई दिये। उन दो मार्गों को देखकर उनके मन में विचार आया कि किस मार्ग से जाना चाहिए ? उसी समय एक शव लेकर बहुत लोग जा रहे थे। उनमें से एक ने शास्त्र-वचन देखकर **'महाजनो येन गतः स पन्थाः'** उसी मार्ग से चलने का अनुरोध किया जिस मार्ग से महाजन गये हैं। वे सभी उसी मार्ग से गये। आगे जाने पर श्मशान में एक गधा दिखाई दिया। उसे देखकर दूसरे ने शास्त्र वचन देखा और उस वचन के अनुसार उसे अपना बन्धु बना लिया–**'राजद्वारे श्मशाने च यस्तिष्ठति स बान्धवः'** पश्चात् उन्हें एक ऊँट दिखाई दिया। तीसरे ने नीतिवचन के अनुसार उसे धर्म बताया और **'इष्टं धर्मेण योजयेत्'** के अनुसार ऊँट के गले में गधे को बाँध दिया। वहाँ से भागने पर नदी में तैरते पत्ते को देखकर-**'आगमिष्यति यत् पत्रं तदस्मांस्तारयिष्यति'** के अनुसार कोई उस पत्ते पर बैठ गया। वह डूबने लगा। यह देखकर एक ने शास्त्रवचन के अनुसार **'सर्वनाशे समुत्पन्ने अर्धं त्यजति पण्डितः'** उसका सिर काट डाला। तत्पश्चात् वे किसी ग्राम में भोजन के लिए निमन्त्रित हुए वहाँ सेवईं, मण्ड, तथा बड़ा भोजन में क्रमशः तीनों को मिला और तीनों ने क्रमशः **'दीर्घसूत्री विनश्यति'** **'अतिविस्तारविस्तीर्णं चिरायुषं न भवति'** तथा **'छिद्रेषु अनर्था बहुली भवन्ति'**–कहकर भोजन त्याग दिया। और इस प्रकार वे विद्यासंपन्न होने पर भी निन्दा के पात्र हुए।

(६) मत्स्य-मण्डूक-कथा

एक सरोवर में शतबुद्धि (सौ बुद्धियों वाला) तथा सहस्रबुद्धि (एक हजार बुद्धियोंवाला) नामकी दो मछलियाँ तथा एक बुद्धि नामका मेंढक एक साथ प्रेमपूर्वक रहते थे। एक दिन सायंकाल के समय कुछ मछुवारे उस जलाशय पर आये और आपस में बातें करने लगे–कि 'यह सरोवर विपुलमछलियों से सम्पन्न है। कल प्रातःकाल जाल बिछाकर मछलियों को पकडेंगे। उनकी बातें सुनकर एक बुद्धि मेंढक ने अपने दोनों मित्रों-शतबुद्धि और सहस्रबुद्धिसे कहा–कि हमने उन मछुवारों की बातें सुनी है। अच्छा यही है कि विपत्ति आने के पूर्व

ही इस सरोवर को छोड़ दिया जाय। यह सुनकर शतबुद्धि और सहस्त्रबुद्धि ने कहा कि इस पैतृक सरोवर को छोड़ देना ठीक नहीं है। हम अपने बुद्धि-कौशलसे इस विपत्ति से मुक्त हो जायँगे। एक बुद्धि कछुए ने उनके विचार को न मानकर उसी रात को अपने परिवार के साथ उस सरोवर को छोड़ दिया। दूसरे दिन प्रात:काल मछुवारों ने अनेक मछलियों को पकड़ लिया और अपने स्कन्धों पर लादकर चले गये। उनके जाते समय एक बुद्धि ने अपने मित्रों को मछुवारों के स्कन्धों पर लटकते हुए देखा। तात्पर्य यह है कि अपने मित्र की बात को नहीं टालना चाहिए।

(७) रासभ-शृगाल-कथा

एक स्थान में एक धोबी (रजक) के यहाँ उद्धत नामक एक गधा था। वह धोबी पूरे दिन उस गधे पर बोझा लादकर अपना दैनिक कार्य करता था और रात में उसे चरने के लिए छोड़ देता था। स्वेच्छापूर्वक खेत में चरते समय उसकी एक स्यार से मित्रता हो गई। दोनों प्रेमपूर्वक साथ-साथ खेत में खाते रहते थे। एक दिन खेत की बाड तोडकर वे दोनों ककड़ी के खेत में घुस गये। चरने के पश्चात् चाँदनी से निर्मल बनी रात्रि में गर्दभ ने संगीत गाने की इच्छा की। गाने के लिए स्यार ने उसे मना किया। स्यार ने कहा तुम्हारी आवाज कर्णकटु है। अत: मत गाओ। अन्यथा खेत के रक्षक हमें दण्डित करेंगे। किन्तु गधा नहीं माना, पर स्यार भयसे खेत के बाहर चला गया। गधा गीत गाने लगा। उसके तेज स्वर से रक्षक जग गये और लाठियों से उसे मारकर उसके गले में पत्थर का कोल्हू बाँध दिया। तात्पर्य यह है कि–जिसके पास स्वयं की बुद्धि नहीं है और जो मित्र का कहना भी नहीं मानता वह नष्ट हो जाता है।

(८) मन्थर कौलिक-कथा

एक स्थान में मन्थर नाम का एक जुलाहा रहता था। उसे वस्त्र-बुनने के लिए लकडियों की आवश्यकता पड़ने पर वह जंगल मे लकड़ी काटने के लिए

गया। वहाँ उसे शीशम का वृक्ष दिखाई दिया। वह उस वृक्ष को काटने का प्रयत्न करने लगा। उस वृक्ष पर एक यक्ष रहता था। उसने उसे वृक्ष काटने से रोका तथा जुलाहे को उस वृक्ष के बदले अभीष्ट वस्तु देने का वचन दिया। जुलाहे (मन्थर) ने कहा–"मैं अपने मित्र और अपनी पत्नी से पूछ कर आता हूँ" ऐसा कहकर वह घर की ओर चला। मार्ग में उसे उसका मित्र मिला, उसने मित्र को संपूर्ण वृत्तान्त सुनाया। वृत्त सुनकर मित्र ने उसे राज्य मांगने को कहा। जिससे सभी प्रकार का सुख प्राप्त होगा। मित्र (नाई) ने पत्नी से राय लेना ठीक नहीं होगा,–कहा, किन्तु जुलाहे ने अपनी स्त्री से राय मांगी। स्त्री ने कहा कि नाई की बात मानना ठीक नहीं है क्योंकि राज्य समस्त विपत्तियों का मूल कारण है। आप तो उस यक्ष से अपने लिये दो हाथ और दो मुँह मांगलें। जिससे अधिक वस्त्र बुन सकेंगे। जुलाहे ने पत्नी की राय मान ली। यक्ष ने उसे चार हाथ और दो मुखवाला बना दिया। इस विचित्र रूप से गाँव के सभी लोगों ने उसे भूत समझकर पत्थरों से मार डाला।

(९) सोमशर्मा के पिता की कथा

एक नगर में एक ब्राह्मण रहता था। उसने भिक्षा मांग-मांग कर सत्तू से एक घड़ा भर दिया। एक दिन रातमें सोते हुए उसने विचार किया कि यदि दुर्भिक्ष (अकाल) पड़े तो इस सत्तू से सौ रूपये प्राप्त हो जायेगा। फिर उन रुपयों से दो बकरियाँ खरीद लूँगा। छ:-छ: महिने में उनसे बच्चे पैदा होंगे और इस प्रकार उनसे बकरियों का एक झुण्ड हो जायगा। फिर उनसे क्रमश: गाय, भैंस, और घोडियाँ खरीदूँगा। घोडियों से घोड़े होंगे। उन्हें बेचकर पर्याप्त धन एकत्र होगा और एक विशाल भवन बन जायेगा। तदनन्तर कोई अपनी सुरूपा कन्या का मेरे साथ विवाह कर देगा। उससे मुझे एक पुत्र होगा। मैं उसका नाम सोमशर्मा रखूँगा। सोमशर्मा जब खेलते हुए मेरे पास आयेगा तो मैं अपनी पत्नी से उसको देखने के लिए कहूँगा। वह गृह-कार्य में अत्यधिक व्यस्त रहने के कारण मेरी बात न सुनेगी तब मैं क्रोधसे उसे लात मारुँगा। इस प्रकार विचार

करते-करते उसने पाद-प्रहार से सत्तू का घड़ा फोड़ डाला और सब सत्तू उसके ऊपर गिर गया। तात्पर्य यह है कि अनावश्यक चिन्ता करनेवाला व्यक्ति सोमशर्मा के पिता की तरह भग्नमनोरथ हो जाता है।

(१०) चन्द्रभूपति कथा

एक नगर में चन्द्र नाम का राजा था। उसने बन्दरों को पाला था। उसके बच्चे प्यार से उन्हें खिलाते-पिलाते थे। वानरों का नायक नीतिशास्त्रज्ञ था। वह नीतिशास्त्र के वचनों के अनुसार आचरण करता था और वानरों को भी तदानुसार उपदेश करता था। राजा ने छोटे बच्चों को चढ़ने-बैठने के लिए भेड़ों को भी पाला था। उनमें से एक भेड़ प्रतिदिन रसोई-घर में घुस जाती थी और जो पदार्थ मिलता उसे वह खा जाती थी। रसोईये भी उसे भगाने के लिये पास में जो वस्तु मिलती थी, उससे उसे मारकर भगा देते थे। यह देखकर वानरों के नायक ने अपने परिवार के अन्य वानरों को कहा–किसी दिन कोई वस्तु पास में न मिलने पर रसोईये जलती लकडी से ही उस भेड़ को मारेंगे और भेड़ में बालों की अधिकता होनेसे उनमें आग लगा जायेगी और अनर्थ हो जायगा। एक दिन वह भेड़ पाठशाला में घुस गयी, रसोईये ने अन्य वस्तु न पाकर जलती लकड़ी उस पर फेंक दी। उससे भेड़ के बाल जलने लगे, भेड़ अश्वशाला में भागी वहाँ घास अधिक होनेसे घास में भी आग लग गयी। घोडे जलने लगे। कुछ मर गये और कुछ घायल हो गये। वैद्यों ने घोडों की चिकित्सा के लिये वानरों की मेदकी आवश्यकता बताई यह सुनकर राजाने सभी वानरों को मार देने का आदेश दिया। वानरों का नायक पूर्व में ही वहाँ से चला गया था, अन्य वानर नायक की बात न सुनने के कारण मारे गये। जब यह घटना उस वानर-नायक को ज्ञात हुई तो उसने बदला लेने का निश्चय किया। भ्रमण करते हुए उसे एक सरोवर दिखाई दिया। उसे प्यास लगी थी, उसने देखा कि सरोवर में जाने के निशान तो बहुत हैं, पर लौटने के नहीं। अत: उसने कमल-नालसे पानी पीया। उस सरोवर में एक राक्षस रहता था। वह उस वानर की बुद्धिमत्तासे बहुत

प्रसन्न हुआ। राक्षस ने वानर को रत्न-हार दिया और कहा कि जो इस सरोवर में प्रविष्ट होता है, उसे वह खा जाता है। वानरों का नायक राजा के यहाँ गया और रत्न-हार का लोभ दिखाकर राजा के सभी परिवार-जनों को सरोवर में प्रविष्ट कराकर राक्षस का आहार बना दिया।

(११) विकाल-वानर-कथा

किसी नगर में भद्रसेन नाम का एक राजा था। उसकी रत्नावली नामकी एक सुन्दर कन्या थी। इसे एक राक्षस हर लेने की इच्छा करता था। वह नित्य रात्रिमें आकर उस कन्या के साथ काम-क्रीड़ा किया करता था। एक दिन मध्यरात्रि में राजकुमारी ने अपनी सखी से कहा कि यह विकाल मुझे हरण करना चाहता है। राक्षस ने उसकी बात सुन ली। उसने समझा कि विकाल नामक अन्य कोई राक्षस इसे हरण करनेवाला भी है। अत: अश्वशाला में अश्व का रूप धारणकर मैं देखता हूँ कि वह कितना शक्तिशाली है। जिस समय वह अश्वशाला में गया, उसी समय एक चोर आया और अश्व को चुराने की इच्छा से उसकी पीठ पर बैठ गया। राक्षस उसे शक्तिशाली समझकर भागा। चोर भी, लगामसे अश्व न रुकने के कारण उस अश्व को राक्षस समझकर कर कहीं रेतीली भूमि पर कूदने का विचार करने लगा। आगे चलकर एक बरगद का वृक्ष दिखाई दिया, उसकी शाखा को पकड़कर चोर लटक गया। उस वृक्ष पर उस राक्षस का मित्र वानर रहता था। उसने राक्षस को पहचान कर कहा–यह तो तुम्हारा भक्ष्य मनुष्य है। राक्षस उसका वचन सुनकर रुक गया। चोर ने वानर की बात सुनकर दाँतों से उसकी पूछ काट डाली। उस पीड़ा से वानर ने चोर को शक्तिशाली समझकर अपना मुख विकृत कर लिया और कुछ बोला नहीं। वानर की विकृतमुद्रा देखकर राक्षस पुन: भय से भाग गया।

१२ अन्धक-कुब्जक-त्रिस्तनी-कथा

एक राजा को तीन स्तनोंवाली कन्या उत्पन्न हुई। राजा को ज्योतिषियों द्वारा ज्ञात हुआ कि पिता कन्या का मुख देखते ही मर जायगा और उसका वर

विवाह होने पर मुख देखकर मर जायगा। राजा ने घोषणा की कि जो इस कन्या के साथ विवाह करेगा उसे एक लाख सुवर्णमुद्राएँ दी जायँगी, किन्तु उसे इस राज्य के बाहर जाना पडेगा। एक अन्धने जो एक कुबडे की सहायता से भिक्षार्जन करता था, उस कन्या के साथ विवाह कर लिया, वे दोनों राज्य के बाहर चले गये। उस कुबडे की सहायता से उस त्रिस्तनी कन्या ने अन्धे की हत्या करने की योजना बनायी, पर संयोगवश उस अन्धे को दृष्टि प्राप्त हो गयी। अन्धे ने कुबडे को उठाकर उस कन्या पर पटक दिया, जिससे कुबडा सुरूप हो गया और कन्या का तीसरा स्तन भीतर घुस गया।

१३ भारुण्ड-पक्षी-कथा

समुद्र-तट पर एक भारुण्ड पक्षी था। उसे एक पेट था किन्तु मुख और गर्दन दो थीं। किनारे पर एक मुख को एक मीठा फल मिला, उसे खाकर फल की उसने प्रशंसा की। दूसरे मुख ने भी उस फल को मांगा, किन्तु पहले मुख ने उसे न देकर यह कहा कि तृप्ति तो एक पेट होने से, दोनों को हो ही जाती है। दूसरे दिन दूसरे मुख को एक विष का फल मिला और पहले दिन के अपमान से नाराज वह पहले मुख द्वारा मना किये जाने पर भी उसने उस फल को खा लिया-फलतः वह पक्षी मर गया। तात्पर्य यह है कि (श्लोक न. ९२) एक साथ मिलकर कार्य न करने वाले नष्ट हो जाते हैं।

१४ ब्राह्मण-कर्कट-कथा

एक स्थान पर ब्रह्मदत्त नाम का एक ब्राह्मण रहता था। एक दिन जब वह किसी कार्यवश अन्य ग्राम में जाने लगा तो उसकी माँ ने कहा कि अकेले नहीं जाना चाहिए। अतः किसी को साथ में ले लो। माँ ने उसे अकेले जाता देखकर बावली से एक केकडा पकड़ कर उसे ही साथ में जाने को कहा। ब्राह्मण ने माँ का सम्मान करने की दृष्टिसे केकड़े को कपूर की पेटी में रखकर, साथ में ले लिया। मार्ग में थक जाने के कारण वह एक वृक्ष की छाया में सो

गया। उसके सो जाने पर एक काला सर्प उसकी ओर आया। सर्प कपूर की गन्ध से आकृष्ट होकर पेटी में रखे केकड़े की ओर गया। केकड़े ने उस सर्प को काटकर मार डाला। जब ब्राह्मण सो कर उठा तो सर्प को मृत देखकर उसे माँ के वचन में विश्वास हुआ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि अपरीक्षितकारक की सभी कहानियाँ सोद्देश्य वर्णित की गयी हैं–किसी भी कार्य को विना विचार किये नहीं करना चाहिए। सभी कहानियाँ नैतिक वचनों से पूर्ण है। इनका पालन करने से मनुष्य का जीवन सुखमय बन सकता है।

।। श्रीः ।।

श्रीविष्णुशर्मविरचितं

।। अपरीक्षितकारकम् ।।

(पञ्चतन्त्रस्य पञ्चमं तन्त्रम्)

।। पं. राजेश्वरशास्त्रिकृतया 'किरणावली' व्याख्यया सहितम् ।।

(आमुख)

(१) क्षपणक-कथा

अथेदमारभ्यतेऽपरीक्षितकारकं नाम पञ्चमं तन्त्रं, यस्याऽयमादिमः श्लोकः–

किरणावली–

पूज्यो गणेश इति शक्तिरपीह केचित्
प्राहुः परे च तपनं शशिभालमन्ये ।
तैस्तैर्विभासि खलु रूपगुणैस्त्वमेव
तस्मात्त्वमेव शरणं कमलायताक्ष ! ।।
रमते भारती यत्र शास्त्रार्थो राजते मुखे ।
यत्कृपा सफला नूनं वन्देऽहं तं गजाननम्[१] ।।

अथेति = अथ शब्दः मङ्गलार्थकः, प्रकरणारम्भसूचकश्च, **इदम्** = वक्ष्यमाणम् प्रकरणम्, **आरभ्यते** = प्रारभ्यते, **अपरीक्षितकारकम्** = परित ईक्षा परीक्षा विचार्य कार्यकारित्वम्, परीक्षाजाताऽस्येति परीक्षितः विचार्य कार्यकारी पुरुषः । न परीक्षिता अपरीक्षिताः कारका यत्र् तद् अपरीक्षितकारकम् । (अपरीक्षितकारक नामक) **तन्त्रं** = प्रकरणम् (प्रकरणको) **यस्य** = अपरीक्षितकारकस्य, **आदिमः** = प्रथमः, **श्लोकः** = पद्यः ।

---

१. महामहोपाध्याय - मीमांसाभूषण - वैदिकतिलक- डॉ. गजानन सदाशिव-शास्त्रिचरणा भदीयगुरुचरणा।

हिन्दी– अब यह अपरीक्षित कारक नाम का पाँचवाँ तन्त्र आरम्भ किया जाता है, जिसका सर्वप्रथम श्लोक इस प्रकार है:–

[**विशेष– अथ**-अव्यय, मंगलसूचक शब्द जो किसी रचना के आरम्भ में प्रयुक्त होता है- और जिसका अनुवाद 'यहाँ' 'अब' = मंगल, आरंभ, किया जाता है। परन्तु यथार्थ में तो **'अथ'** का अर्थ 'मंगल' नहीं है, फिर भी इस शब्द का उच्चारण या श्रवणमात्र 'मंगल' का सूचक है, क्योंकि यह शब्द ब्रह्मा के कण्ठ से निकला हुआ माना जाता है- **'ओंकारश्चाथशब्दश्च द्वावेतौ ब्रह्मणः पुरा। कण्ठं भित्वा विनिर्यातौ तेन मांगलिकाविभौ।'** और इसी लिए हम शांकरभाष्य में देखते हैं- **'अर्थान्तरप्रयुक्तः अथशब्दः-श्रुत्या मंगलमारचयति, अथ निर्वचनम्, अथ योगानुशासनम्।]**

कुदृष्टं कुपरिज्ञातं कुश्रुतं कुपरीक्षितम्।
तन्नरेण न कर्तव्यं नापितेनाऽत्र यत्कृतम्।।१।।

अन्वयः– अत्र नापितेन कुदृष्टं, कुपरिज्ञातं, कुश्रुतं, कुपरीक्षितं यत् कृतं, तत् नरेण न कर्तव्यम्।।१।।

व्याख्या– कुदृष्टमिति। अत्र = इह संसारे लोके वा (अस्मिन् प्रकरणे,-इस बताये जानेवाले प्रकरण में) **नापितेन** = क्षौरकर्मकारिणा, (नाईने) **कुदृष्टम्** = सम्यक् प्रकारेण, यथावत् रीत्या,-कुत्सितं दृष्टं कुदृष्टम्, अत्रसर्वत्र कुशब्दस्य प्रयोगः ईषदर्थे, [कु-अव्यय,-खराबी, ह्रास, अभाव आदि के भावों का संकेत करनेवाला उपसर्ग,] **कुपरिज्ञातम्** = अज्ञातरहस्यवृत्तम्, (पूर्णजानकारी के अभावमें यथावत् न जाने हुए) **कुश्रुतम्** = समीचीनतया न श्रुतम्, यस्याऽभिप्रायः समीचीनतया न ज्ञातः (बिना ध्यानपूर्वक सुने, एकाग्रचित्तसे न सुने हुए) **कुपरीक्षितम्** = यस्य परीक्षा सम्यक् प्रकारेण न कृता, असमीक्षितमित्यर्थः, (विना ठीके से मनन किये, विचार किये ही,) **यत्** = कर्म, यादृशं कर्म (जैसा कार्य) **कृतम्** = अनुष्ठितम् (जैसा किसी मूढ नाईने किया) **तत्** = तादृशं कर्म (उस प्रकार का कार्य) **नरेण** = मनुष्येण, (दूसरे मनुष्य-व्यक्तिको) **न कर्तव्यम्** = कदापि न विधातव्यम्, (नहीं करना चाहिये)।।

हिन्दी– [पञ्चतन्त्र के लेखक **पं० विष्णुशर्मा** ने राजकुमारों से कहा]-

मैं अब पञ्चतन्त्रके **'अपरीक्षितकारक'** नामक अन्तिम तन्त्र को आरम्भ करता हूँ (तुम्हें बताता हूँ), जिसका प्रथम श्लोक यह है–

(किसी भी) कार्य के परिणाम को ध्यानपूर्वक विना सोचे समझे, विना उसकी यथावत् पूर्ण जानकारी प्राप्त किये, उसके सम्बन्ध में पूर्ण जानकारी बिना सुने, और विना यथार्थ की परीक्षा-समीक्षा किये किसी भी कार्य को आरम्भ नहीं करना चाहिये, जैसा किसी मूढ नापित-(नाई) ने किया था ॥१॥

तद्यथाऽनुश्रूयते-अस्ति दाक्षिणात्ये जनपदे पाटलिपुत्रं नाम नगरम् । तत्र मणिभद्रो नाम श्रेष्ठी प्रतिवसति स्म । तस्य च धर्मार्थ-काममोक्षकर्माणि कुर्वतो विधिवशाद्धनक्षयः सञ्जातः । ततो विभवक्षयादपमानपरम्परया परं विषादं गतः । अथाऽन्यदा रात्रौ सुप्तश्चिन्तितवान्–अहो, धिगियं दरिद्रता ।

व्याख्या– तदिति । तत् = नापितस्य वृत्तम् (नाई की कथा) **अनुश्रूयते** = आकर्ण्यते, **यथा** = येन प्रकारेण, (नाई की कथा जिस प्रकार सुनी जाती है ।) **दाक्षिणात्ये** = दक्षिणस्यां दिशि भवः दाक्षिणात्यस्तस्मिन् दाक्षिणात्ये दक्षिणदिशि स्थिते (दक्षिणदिशा में स्थित प्रदेश में) (दक्षिणा + त्यक् = दक्षिण में रहनेवाला) **जनपदे** = देशे विषये वा (देश में) **तत्र** = पाटलिपुत्रे, **श्रेष्ठी** = वणिक्,-श्रेष्ठं धनादिकमस्त्यस्येति विग्रहः, (किसी व्यापार संघ या शिल्पिसंस्थान का प्रधान) **प्रतिवसतिस्म** = निवसतिस्म-अनिवसत्, (रहता था) **तस्य** = मणिभद्रस्य, धनिकस्य (मणिभद्रनामक धनिक) **धर्मार्थकाममोक्षकर्माणि** = धर्मः "वेदप्रतिपाद्यः प्रयोजन-वदर्थो धर्मः"-ध्रियते लोकोऽनेन, धरति लोकं वा, (धृ + मन्) लक्षणकः ऐहिकामुष्मि-कलोकद्वयकल्याणसाधनमित्यर्थः, **अर्थः** = धनम्, **कामः** = यथेष्टलाभः, स्त्र्यादि-विषयभोगः, **मोक्षः** = दुःखात्यन्तनिवृत्तिपरानन्दावाप्तिरूपोऽपवर्गः, एतेषां द्वन्द्वः, तेषां कर्माणि = तत्तत्साधनरूपान् व्यापारानित्यर्थः । (धर्मश्च, अर्थश्च, कामश्च, मोक्षश्च ते धर्मार्थकाममोक्षाः तेषां कर्माणि = अर्थात् धर्मार्थकाममोक्षसाधकानि विविधानि कार्याणि), (धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष; पुरुषार्थ चतुष्टयको साधनेवाले कार्यों का सम्पादन करते रहने पर भी) **कुर्वतः** = सम्पादयतः, **विधिवशात्** = विधेः

वशः विधिवशस्तस्माद्विधिदशात् = भाग्यवशात्, **धनक्षयः** = अर्थविनाशः, (भाग्य के दोष से धन का नाश), **सञ्जातः** = अभवत्, (हो गया) **ततः** = तदनन्तरम् (तब) **विभवक्षयात्** = धननाशात्, (धनके नष्ट हो जाने के कारण) **अपमानपरम्परया** = निरन्तरतिरस्कारप्राप्त्या, (निरन्तर बन्धु-बान्धवों से निरादर होते रहने से) **परम्** = परमम्, अत्यन्तम्, (अत्यधिक) **विषादम्** = खेदम्, (दुःखको) **गतः** = प्राप्तः, (प्राप्त हुआ) **अथ, अन्यदा** = अन्यस्मिन् समये, (किसी समय) **रात्रौ सुप्तः** = निद्रामुपगतः, (रात में सोते समय) **चिन्तितवान्** = विचारितवान्, (सोचने लगा) **अहो** = खेदे, **धिक् इयं दरिद्रता** = ईदृशी दरिद्रता = निर्धनता, । ईदृशी मे निर्धनावस्था जाता, अतो धिगिति भावार्थः (ऐसी निर्धनावस्था को धिक्कार है ।) **उक्तं च** = केनापि कथितं च ।

हिन्दी– जैसा कि सुना जाता है– दक्षिण दिशा के किसी प्रदेश में पाटलिपुत्र नाम का एक नगर था (है), वहाँ मणिभद्र नामका एक सेठ रहता था। धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष के लिए शास्त्र द्वारा निर्धारित कार्यों का सम्पादन करते हुए दैवयोग से उसका सम्पूर्ण धन नष्ट हो गया। तब वैभव (धन) के नाश होने से निरन्तर लोगों द्वारा तिरस्कार-अपमान-होते रहने से वह अत्यन्त दुःखी हुआ। एक दिन रात में सोता हुआ वह विचार करने लगा– अहो, इस दरिद्रता को धिक्कार है। किसी ने ठीक ही कहा है–

शीलं शौचं क्षान्तिर्दाक्षिण्यं मधुरता कुले जन्म ।
न विराजन्ति हि सर्वे, वित्तविहीनस्य पुरुषस्य ।।२।।

अन्वयः– शीलं शौचं, क्षान्तिः, दाक्षिण्यं, मधुरता, कुले जन्म (एते) सर्वे हि वित्तविहीनस्य पुरुषस्य न विराजन्ति ।।२।।

व्याख्या– अथ दरिद्रतामेव निन्दति नवभिरार्याभिः–**''शील''–मित्यादिभिः**– **शीलम्** = चरितम्-शौचम् = बाह्याभ्यन्तररूपेण द्विप्रकारा शुद्धिः, पवित्रता, **क्षान्तिः** = क्षमा, **दाक्षिण्यम्** = चातुर्यम् उदारता वा, **मधुरता** = प्रियभाषित्वम्, तथा **कुलेजन्म** = कुलीनता आभिजात्यमिति, यावत् एते, **सर्वे** = सकला अपि गुणा, **वित्तविहीनस्य** = धनरहितस्य, **पुरुषस्य** = मनुष्यस्य, **न** = नैव,

विराजन्ति = शोभन्ते, विद्यमाना अप्येते लोकेषु प्रतीता न भवन्तीत्यर्थः। आर्यावृत्तम् ॥२॥

हिन्दी– उत्तम स्वभाव या चरित्र, पवित्रता, क्षमा, चातुर्य या उदारता, प्रिय भाषण तथा उत्तम कुल में जन्म लेना, ये सभी गुण दरिद्र पुरुषों को शोभा नहीं देते हैं। इस लोक में मनुष्य के निर्धन हो जाने पर इन गुणों के रहने पर भी, वे उसमें प्रतीत नहीं होते हैं, अर्थात् इनका कोई विश्वास नहीं करता ॥२॥

मानो वा दर्पो वा विज्ञानं विभ्रमः सुबुद्धिर्वा।
सर्वं प्रणश्यति समं, वित्तविहीनो यदा पुरुषः ॥३॥

अन्वयः– मानः वा दर्पः वा विज्ञानं, विभ्रमः, सुबुद्धिः वा यदा पुरुषः वित्तविहीनः (भवति) समं सर्वं प्रणश्यति ॥३॥

व्याख्या– मान इति। मानः = सन्मानः, समादरः, (सम्मान) **दर्पः** = गर्वः, अहमुत्तमकुले जातो महानस्मीत्यादिरूपो गर्वः अहंकारः वा, (मैं श्रेष्ठ कुल का हूँ, इस प्रकार का अहंकार) **विज्ञानम् वा** = शिल्पज्ञानम्, कलाकुशलित्वम् (कला आदि का ज्ञान) **विभ्रमः** = नानाविधासु खेलासु विलासशीलता, विलासः (विविध क्रीडाओं का ज्ञान या काम चेष्टाएँ) **सुबुद्धिः** = सद्बुद्धिः शोभना प्रज्ञा च (तीक्ष्ण बुद्धिमत्ता) **वित्तविहीनः** = निर्धनः यदा भवति, (दरिद्र होने पर) **समम्** = धनेन सह, धनेन विहीनः **तदा** = तब, **सर्वम्** = (सभी उक्त बातें) **समम्** = (साथ ही) युगपदेव, **प्रणश्यति** = विनाशमुपैति (नष्ट हो जाती हैं) ॥३॥

हिन्दी– (समाज में) आदर सम्मान, अच्छे कुल में जन्म लेने का अहंकार, कलाओं में विशिष्ट प्रकार का ज्ञान, विविध काम चेष्टाएँ, एवं तीक्ष्ण बुद्धि, ये सभी गुण पुरुष के धन के नष्ट होने पर, धन के साथ ही, नष्ट हो जाते हैं ॥३॥

प्रतिदिवसं याति लयं वसन्तवाताहतेव शिशिरश्रीः।
बुद्धिर्बुद्धिमतामपि कुटुम्बभरचिन्तया सततम् ॥४॥

अन्वयः– बुद्धिमताम् अपि बुद्धिः सततं कुटुम्बभरचिन्तया वसन्तवाताहता शिशिरश्रीः इव प्रतिदिवसम् लयं याति ॥४॥

व्याख्या– प्रतिदिवसमिति । बुद्धिमताम् = प्रतिभासम्पन्नानाम्-धीमताम् (प्रतिभासम्पन्न- मनुष्यों की भी) **बुद्धिः** = मतिः, **सततम्** = निरन्तरम् (निरन्तर ही) **कुटुम्बभरचिन्तया** = परिवारपालनपोषणविचारेण, (परिवारजनों के पालन-पोषणकरने की चिन्ता से) **वसन्तवाताहता** = वसन्तकालीनमलयमारुता तिरस्कृता, नाशिता वा (वसन्तकालीन पवन से प्रताडित) **शिशिरश्रीः** = शिशिरर्तुशोभा इव (शिशिर ऋतु की शोभा की तरह) **प्रतिदिवसम्** = प्रतिदिनम्, (प्रतिदिन), **लयम्** = क्षयं-नाशं वा, **याति** = गच्छति (नष्ट होती है) धीमन्तोऽपि निर्धनाश्चेत् हतबुद्धयो जायन्तेऽतो महतीयं कुटुम्बभरयन्त्रणेति भावः । उपमालङ्कारः ।।४।।

हिन्दी– विद्वानों की भी बुद्धि निरन्तर परिवारजनों के भरण पोषण करने की चिन्ता से उसी प्रकार क्षीण हो जाती है, जैसे निरन्तर वसन्तकालीन पवन के मार से शिशिरऋतु की शोभा प्रतिदिन क्षीण होती चली जाती है । तात्पर्य यह है कि परिवारजनों के पालन-पोषण सम्बन्धी चिन्ता से ग्रस्त बुद्धिमान् व्यक्ति की बुद्धि भी निरंतर क्षीण होती जाती है ।।४।।

नश्यति विपुलमतेरपि बुद्धिःपुरुषस्य मन्दविभवस्य ।
घृतलवणतैलतण्डुलवस्त्रेन्धनचिन्तया सततम् ।।५।।

अन्वयः– विपुलमतेरपि मन्दविभवस्य पुरुषस्य बुद्धिः सततं घृत-लवण-तैल-तण्डुल-वस्त्र-इन्धनचिन्तया नश्यति ।।५।।

व्याख्या– नश्यतीति । विपुलमतेरपि = विशालबुद्धेरपि-विपुला विशाला विविधकार्य- सम्पादनदक्षा मतिर्यस्य तादृशस्यापि (अत्यधिक बुद्धिवाले, विविध प्रकार के कार्यों को करने में दक्ष बुद्धिवाले व्यक्ति की) **मन्दविभवस्य** = निर्धनस्य पुरुषस्य-मन्दः क्षीणो विभवो धनादिसम्पद् यस्य सः तस्य दरिद्रपुरुषस्य-(निर्धन व्यक्ति की) **बुद्धिः** = मतिः, विचारशक्तिः, **सततम्** = निरन्तरम् (निरन्तर) **घृतलवणतेलतण्डुलवस्त्रेन्धनचिन्तया** = घृतम्-आज्यम् (घी) लवणम् = सैन्धवादिकम् तैलं = तिलस्नेहः, तण्डुलः = अन्नविशेषः (चावल) वस्त्रं = वासः (कपड़ा) इन्धनम् = काष्ठादिवह्निदीपनं, (लकडी आदि की) एतेषां चिन्तया, (इन सबकी चिन्ता से) अर्थात् परिवारजनों के भरण-पोषण योग्य आवश्यक सामग्री की चिन्तासे । **नश्यति** = विनश्यति (नष्ट हो जाती है ।) ।।५।।

हिन्दी– धनाभाव में अत्यधिक बुद्धि-सम्पन्न व्यक्तियों की भी बुद्धि निरन्तर, घी, नमक, तैल, चावल, वस्त्र तथा इन्धन आदि परिवार के भरण-पोषण के लिये लगनेवाली सामग्री की चिन्तासे, विनष्ट हो जाती है। मैं यह सब सामग्री धनाभाव में कैसे प्राप्त करूँ ? इसी चिन्तासे उसकी बुद्धि क्षीण हो जाती है ॥५॥

गगनमिब नष्टतारं, शुष्कमिव सरः, श्मशानमिव रौद्रम्।
प्रियदर्शनमपि रूक्षं, भवति गृहं धनविहीनस्य ॥६॥

अन्वयः– धनविहीनस्य गृहं नष्टतारं गगनम् इव, शुष्कं सरः इव, रौद्रं श्मशानम् इव, प्रियदर्शनम् अपि रूक्षं भवति ॥६॥

व्याख्या– गगनमिति। धनविहीनस्य = निर्धनस्य मनुष्यस्य, (धनरहित व्यक्ति का) **गृहं** = भवनम् (घर) **नष्टतारम्** = नष्टाः लुप्ताः अदर्शनङ्गताः ताराः नक्षत्राणि यस्मात् तादृशं **गगनमिव** = आकाशमिव (नक्षत्र रहित आकाश की तरह) अर्थात् शून्य, **शुष्कम्** = जलरहितम् (विना जल के) **सरः** = जलाशयः (सरोवर, तालाब) **रौद्रम्** = भयङ्करम्, (डरानेवाले) **श्मशानम्** = प्रेतावास इव (प्रेतभूमि, श्मशान की तरह) **प्रियदर्शनम्** = नेत्रप्रीतिकरम् (देखने में मनोरम होने पर भी) **रूक्षम्** = कर्कशम्-श्रीविहीनम् **भवति** (उदास) होता है ॥६॥

हिन्दी– निर्धन व्यक्ति का घर मनमोहक (सुन्दर) होने पर भी (धनाभाव के कारण) नक्षत्र रहित आकाश की तरह शून्य (उदास), जलरहित तालाब की तरह नीरस, शुष्क, और श्मशान की तरह भयप्रद प्रतीत होता है ॥६॥

विशेषः– 'मालोपमा' ॥६॥

न विभाव्यन्ते लघवो वित्तविहीनाः पुरोऽपि निवसन्तः।
सततं जातविनष्टाः पयसामिव बुद्बुदाः पयसि ॥७॥

अन्वयः– वित्तविहीनाः लघवः पुरः निवसन्तोऽपि पयसि सततं जातविनष्टाः पयसां बुद्बुदा इव न विभाव्यन्ते ॥७॥

व्याख्या– नेति। वित्तविहीनाः = वित्तैर्धनैर्विहीनाः रहिताः दरिद्रः (धनहीन व्यक्ति) अत एव **लघवः** = क्षुद्रतां गता जनाः, प्रभावहीनः नगण्याः (निर्धन होने

से प्रभावहीन, नगण्यजन) **पुरः** = अग्रे (सामने, सम्मुख रहने पर भी) **निवसन्तोऽपि** = विद्यमाना, अपि = (उपस्थित रहने पर भी) **पयसि** = जले (जल में) **जातविनष्टाः** = उत्पद्य विनाशं गताः (उत्पन्न होकर नष्ट होनेवाले) **पयसाम्** = जलानाम् (पानी के) **बुद्बुदा इव** = जलविकृतय इव, जलस्फोटा इव, (जल में उत्पन्न होने वाले बुद्बुदों के समान) **न विभाव्यन्ते** = न लक्ष्यन्ते, कैश्चिदपि सादरं नालोक्यन्ते। (किसी के द्वारा आदरपूर्वक नहीं देखे जाते हैं) ॥७॥

हिन्दी– धनहीन व्यक्ति क्षुद्र-तुच्छ-हो जाता है, वह सम्मुख उपस्थित रहने पर भी जल में उत्पन्न होनेवाले क्षणिक बुद्बुद्धों की तरह दिखाई नहीं देता अर्थात् निर्धन व्यक्ति को अनदेखा किया जाता है, लोग उसकी उपेक्षा करते हैं ॥७॥

सुकुलं कुशलं, सुजनं विहाय, कुलकुशलशीलविकलेऽपि।
आढ्ये, कल्पतराविव नित्यं रज्यन्ति जननिवहाः ॥८॥

अन्वयः– जननिवहाः सुकुलं कुशलं सुजनं विहाय कुलकुशलशीलविकलेऽपि आढ्ये कल्पतरौ इव नित्यं रज्यन्ति ॥८॥

व्याख्या– सुकुलमिति। जननिवहाः = जनानां निवहाः सङ्घाः (जन-समुदाय) **सुकुलम्** = उच्चवंशोत्पन्नम्, (उच्चकुल में उत्पन्न) **कुशलम्** = कार्यदक्षम्, चतुरम् (कार्य करने में दक्ष) **सुजनम्** = सज्जनपुरुषम्, (सज्जन व्यक्ति) **विहाय** = परित्यज्य (छोड़कर, त्यागकर), **कुलकुशलशीलविकलेपि** = कुल = वंशम्, कुशलम् = चतुरं, शीलं = सदाचारं-सुस्वभावः एतैर्विकले विहीने, (कुलीनता-दक्षता-सदाचारादिरहिते) अकुले कुलहीने, चातुर्य-रहिते, दुःशीले अपि (समस्त अच्छेगुणों से रहित होने पर भी) **आढ्ये** = धनसम्पन्ने (धनी व्यक्ति पर) **कल्पतरौ** = कल्पवृक्ष इव-मनोवांच्छितफलप्रदे कल्पवृक्षे (मनोकामना को पूर्ण करनेवाले कल्पवृक्ष नामके वृक्ष की तरह) **नित्यम्** = सदा, **रज्यन्ति** = अनुरक्ता भवन्ति (प्रसन्न होते हैं) ॥८॥

हिन्दी– कवि, लोगों के स्वभाव की ओर संकेत करते हुए कहता है कि–संसार की रीति बड़ी विचित्र है–संसारी मनुष्य, कुलीनता, कुशलता तथा सदाचारयुक्त सज्जनता आदि गुणों से युक्त पुरुष को छोड़कर, कुलीनता,

दक्षता, एवं सद्गुणों से रहित धनवान् पुरुषमें कल्पवृक्ष की तरह अनुराग करते हैं उसे प्रसन्न करते हैं ॥८॥

विफलमिह पूर्वसुकृतं, विद्यावन्तोऽपि कुलसमुद्भूताः ।
यस्य यदा विभवः स्यात्तस्य तदा दासतां यान्ति ।।९।।

अन्वयः– इह पूर्वसुकृतं विफलं (यतः) कुलसमुद्भूताः विद्यावन्तः अपि यस्य यदा विभवः स्यात् तदा तस्य दासतां यान्ति ॥९॥

व्याख्या– विफलमिति । इह = अस्मिन् संसारे, (इस संसार में) **पूर्वसुकृतं** = पूर्वस्मिन् जन्मनि उपार्जितं पुण्यं (पूर्व के जन्म में उपार्जित पुण्य), **विफलं** = फलशून्यं भवति, निष्फलम् भवति, (व्यर्थ हो जाता है, कोई फल प्राप्त नहीं होता) **कुलसमुद्भूताः** = सुकुलोत्पन्नाः पुरुषा अपि (उच्चकुलोत्पन्नपुरुष भी) **विद्यावन्तः** = विद्वांसः अपि, (विद्वान् भी) **यदा** = यस्मिन् काले (जब) **यस्य** = पुरुषस्य (जिस पुरुष के पास) **विभवः** = धनम् (पैसा-रहता है, सम्पत्ति रहती है) **तस्य** = धनिकस्य जनस्य (धनिक पुंरुष की) **दासताम्** = भृत्यतां (दासता) **यान्ति** = गच्छन्ति (स्वीकार करते हैं) इह यस्य जनस्य यस्मिन् काले ऐश्वर्यं स्यात् तस्य सद्वंशोत्पन्नाः विद्वांसोऽपि दासतां स्वीकुर्वन्ति इत्यर्थः ॥९॥

हिन्दी– कवि कहता है कि–इस संसार में पूर्वजन्म में उपार्जित किया हुआ पुण्य भी व्यर्थ हो जाता है, क्योंकि विद्वान् तथा उच्चकुल में उत्पन्न पुरुष भी, जिस पुरुष के पास धन-होता है, उसी की सेवा करने लगते हैं ॥९॥

लघुरयमाह न लोकः कामं गर्जन्तमपि पतिं पयसाम् ।
सर्वमलज्जाकरमिह, यद्यत्कुर्वन्ति परिपूर्णाः ।।१०।।

अन्वयः– लोकः कामं गर्जन्तमपि पयसां पतिम् "अयं लघुः" न आह, (यतोहि) इह परिपूर्णाः यद्यत् कुर्वन्ति सर्वम् अलज्जाकरं (भवतीति) ॥१०॥

व्याख्या– लघुरिति । लोकः = जनाः (जनसमूहः) (लोगों का समूह) **कामं** = स्वच्छन्दं-यथेच्छं (अपनी इच्छानुसार) **गर्जन्तं** = प्रलपन्तम्, उच्चैः शब्दं कुर्वन्तमपि (उच्चस्वरसे या गर्जना करते हुए) **पयसां पतिं** = समुद्रं मेघं वा (समुद्र या बादल को) **अयं लघुः** = अयं क्षुद्र इति (यह नीच है) **न**

आह = कथयति (नहीं कहते हैं) **यतो हि**-क्योंकि, **इह संसारे** (इस संसार में) **परिपूर्णाः** = श्रीमन्तः, (धनी) **यत् यत् कुर्वन्ति** = यत् यत् आचरन्ति (जो-जो कार्य करते हैं) **तत् तत् सर्वम्** = (वह सब) **अलज्जाकरं** = अलज्जा जनकं, लज्जाकरं न भवति (लज्जा जनक नहीं होता) इह संसारे श्रीमन्तः न्याय्यमन्याय्यं वा कुर्वन्ति तत् तेषां सर्वम् लज्जाकरं न भवतीति। तेषां निषिद्धाचरणमपि प्रशंसार्हमेव ॥१०॥

हिन्दी– संसार के लोग स्वच्छन्द गर्जना करनेवाले समुद्र या मेघ को "यह नीच है"–ऐसा नहीं कहते। क्योंकि श्रीमान्-धनी लोग उचित या अनुचित जो भी कार्य करते हैं, वह लज्जाजनक नहीं होता अतः निन्दनीय भी नहीं होता। वह सब प्रशंसनीय ही होता है ॥१०॥

एवं सम्प्रधार्य भूयोऽप्यचिन्तयत्–"तदहमनशनं कृत्वा प्राणानुत्सृजामि। किमनेन नो व्यर्थजीवितव्यसनेन?" एवं निश्चयं कृत्वा सुप्तः। अथ तस्य स्वप्ने पद्मनिधिः क्षपणकरूपो दर्शनं दत्त्वा प्रोवाच–"भोः श्रेष्ठिन्! मा त्वं वैराग्यं गच्छ। अहं पद्मनिधिस्तव पूर्वपुरुषोपार्जितः। तदनेनैव रूपेण प्रातस्त्वत्गृहमागमिष्यामि। तत्त्वयाऽहं लगुडप्रहारेण शिरसि ताडनीयः येन कनकमयो भूत्वाऽक्षयो भवामि।

व्याख्या–एवमिति। एवम् = उक्त प्रकारेण, (उपर्युक्त प्रकार से निर्धनता से होनेवाली पीड़ा तथा सांसारिक लोगों द्वारा होनेवाले तिरस्कार पर) **सम्प्रधार्य** = सम्यक् रीत्या विचार्य (भली प्रकार से विचार करके) **भूयः** = पुनः (फिर से) **अचिन्तयत्** = चिन्तयामास, (विचार करने लगा) **तत्** = तस्मात् **कारणात्** = (उस कारण से, अर्थात् यदि यहाँ धन की ही प्रधानता है तो अहम्), **अनशनं कृत्वा** = उपवासं विधाय, भोजनं त्यक्त्वा (उपवास करके भोजन का त्याग करके) **प्राणान् उत्सृजामि** = जीवनम् परित्यजामि (प्राणों का त्याग करता हूँ) **किम् अनेन** = धनरहितेन (निर्धनतासे) **नः** = अस्माकं, **व्यर्थजीवितव्यसनेन** = व्यर्थं धनशून्यं जीवितमेव व्यसनं तेन किम्, न किंचित्फलमित्यर्थः-जीवितस्य व्यसनं जीवितव्यसनं, व्यर्थं च तत् जीवितव्यसनं

व्यर्थजीवितव्यसनं तेन व्यर्थजीवितव्यसनेन = निष्फलजीवनधारणखेदेन, किम् ? (निष्फल जीवन धारण करने से होनेवाले दुःखसे क्या लाभ है ?) **एवम्** = इत्थं (इस प्रकार) **निश्चयं कृत्वा** = प्राणत्यागस्य निश्चयं कृत्वा = विधाय, (प्राणत्यागने का निश्चय करके) **सुप्तः** = अस्वपत् (सो गया) **अथ** = अनन्तरं (सो जाने के बाद) **तस्य** = श्रेष्ठिनः (उस सेठके) **स्वप्ने** = निद्रायां-स्वप्नावस्थायाम् (स्वप्न में) **पद्मनिधिः** = पद्माख्यो निधिः (पद्मनाम के निधि ने) **क्षपणकरूपः** = जैन-भिक्षुरूपः-(जैन भिक्षु के रूपमें) **दर्शनं दत्त्वा** = प्रत्यक्षो भूत्वा (प्रत्यक्षरूप में उपस्थित होकर) **प्रोवाच** = उवाच (बोला) **भोः श्रेष्ठिन् !** हे मणिभद्र श्रेष्ठिन् (हे मणिभद्र सेठ !) **मा त्वं वैराग्यं गच्छ** = त्वं जीवनौदासीन्यं न गच्छ (तुम अपने जीवन के प्रति उदासीन-निराश न हो) अहं पद्मनिधिः रूपः पूर्वपुरुषोपार्जितः = तव पूर्वपुरुषैः सञ्चितः (मैं पद्मनिधि तुम्हारे पूर्वजों द्वारा संचित किया हुआ हूँ) **अनेन रूपेण** = क्षपणकवेषेण (इस क्षपणक के रूप में) **प्रातः त्वद्गृहं आगमिष्यामि** = प्रातः तव गृहं यास्यामि (प्रातः काल तुम्हारे घर आऊँगा) **तत् त्वया अहं**-क्षपणकः **लगुडप्रहारेण** = दण्डघातेन (दण्डे के प्रहार से) **शिरसि** = मस्तके (सिर पर) **ताडनीयः** = हन्तव्यः (मारना) **येन** = लगुडप्रहारेण = (लाठी की मार से) **कनकमयः** = सुवर्णमयः (सोने का होकर) **भूत्वा, अक्षयो भवामि** = अनश्वरः = (सदा के लिये नष्ट न होनेवाला)- **भवामि** = भविष्यामि (हो जाऊँगा) ॥

हिन्दी– उक्त प्रकार से विचार करने के पश्चात् वह (सेठ) पुनश्च विचार करने लगा-"मैं अनशन करके अपने प्राणों का त्याग कर दूँगा। क्योंकि निर्धनता में दुःखमय जीवन व्यतीत करने से कोई लाभ नहीं है। यह निश्चय करके वह सो गया। स्वप्न में पद्मनिधि ने-क्षपणकरूप धारण करके उस सेठ के सम्मुख प्रत्यक्षरूप में उपस्थित होकर कहा–"श्रेष्ठिन् ! तुम विरक्त न हो, मैं तुम्हारे पूर्वजों द्वारा संचित पद्म नामक निधि हूँ। कल प्राप्तः काल इसी रूप में मैं तुम्हारे घर आऊँगा। तुम मेरे शिर पर लाठी से प्रहार करना। तुम्हारे प्रहारसे मैं स्वर्णमय होकर तुम्हारे लिये अक्षय अर्थात् कभी नष्ट न होनेवाला निधि बन जाऊँगा।

अथ प्रातः प्रबुद्धः सन् स्वप्नं स्मरंश्चिन्ताचक्रमारूढस्तिष्ठति–

"अहो, सत्योऽयं स्वप्नः किं वा असत्यो भविष्यति, न ज्ञायते। अथवा नूनं मिथ्याऽनेन भाव्यम्। यतोऽहमहर्निशं केवलं वित्तमेव चिन्तयामि। उक्तंच–

व्याख्या– अथेति। अथ = स्वप्नदर्शनानन्तरम् (स्वप्न को देखने के पश्चात्) **प्राप्तः प्रबुद्धः सन्** = प्रातःकाले शयनादुत्थितः सन् (प्रातः काल उठकर) **स्वप्नं स्मरन्** = स्वप्ने क्षपणकोक्तं वचनं ध्यायन् (स्वप्न में क्षपणक ने कहे हुए वचनों का ध्यान करते हुए) **चिन्ताचक्रसमारुढस्तिष्ठति** = विचार-परम्परामनुसृतः तिष्ठति = आस्ते, (विचारों में मग्न हुआसा), अहो, **सत्यः** = वास्तविक असत्यः किं वा भविष्यति = (यह स्वप्न सत्य होगा या असत्य होगा) **न ज्ञायते** = मालूम नहीं होता। अथवाऽ**नेन भाव्यम्** = असत्येन भवितव्यम् (यह स्पप्न असत्य ही होगा) यतः यस्मात् कारणात् (क्योंकि) **अहर्निशम्** = अहोरात्रं (रातदिन) **वित्तमेव** = धनमेव (धनकीही) **चिन्तयामि** = ध्यायामि (सोचता रहता हूँ) **उक्तं च** = केनापि कथितं च (किसी के द्वारा कहा गया भी है)।

हिन्दी– इसके पश्चात् प्रातःकाल निद्रासे जागने पर रात में देखे हुए स्वप्न के विषय में विविध प्रकार से विचार करने लगा। विचारों में मग्न होकर वह सोचने लगा-"क्या यह स्वप्न सत्य है या असत्य ? इसके सत्यासत्य के बारे में मैं कुछ विचार नहीं कर पा रहा हूँ। अथवा, यह असत्य ही होगा, यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है। क्योंकि दिन-रात मैं धन के विषय में ही सोचता रहता हूँ। किसी ने कहा भी हैं–

व्याधितेन सशोकेन चिन्ताग्रस्तेन जन्तुना।
कामार्तेनाऽथ मत्तेन दृष्टः स्वप्नो निरर्थकः ।।११।।

अन्वयः– व्याधितेन, सशोकेन, चिन्ताग्रस्तेन, कामार्तेन, अथ मत्तेन जन्तुना दृष्टः स्वप्नः निरर्थकः (भवति) ।।११।।

व्याख्या– व्याधितेनेति। व्याधितेन = ज्वरादिरोगग्रस्तेन, (ज्वर आदि रोग से पीडित) **सशोकेन** = शोक सहितेन शोकाकुलेन वा (शोकाकुल) **चिन्ताग्रस्तेन** = अभिष्टस्य पदार्थस्य अलाभे तत् प्राप्त्यर्थमन्तःकरणस्य चित्तस्य

वा भावनाविशेषो व्यापारः चिन्ता तथा, व्याप्तेन, विचारमग्नेन वा (निरन्तर किसी पदार्थ का विचार) **अथ** = अपि च अथवा, **कामार्तेन** = कामासक्तेन, भोगविलासान् प्रति आसक्तेन, (कामी) **मत्तेन** = मद्यादिना क्षीबेण, प्रमत्तेन वा (मद्यपानादिसे मदोन्मत्त) **जन्तुना** = पुरुषेण (व्यक्तिद्वारा) **दृष्टः** = विलोकितः स्वप्नः, (देखा हुआ स्वप्न) शयनावसरे निद्रायां विषयविशेषानुभवः **निरर्थकः** = निष्फलः (व्यर्थ, अर्थहीन) (निष्फल होता है) ॥११॥

हिन्दी– रोगग्रस्त, शोकाकुल, चिन्ताकुल, कामातुर, तथा प्रमत्त व्यक्ति द्वारा देखा गया स्वप्न प्रायः निष्फल ही होता है ॥११॥

एतस्मिन्नन्तरे तस्य भार्यया कश्चिन्नापितः पादप्रक्षालनायाहूतः। अत्रान्तरे च यथानिर्दिष्टः क्षपणकः सहसा प्रादुर्बभूव। अथ स तमालोक्य प्रहृष्टमना यथासन्नकाष्ठदण्डेन तं शिरस्यताडयत्। सोऽपि सुवर्णमयो भूत्वा तत्क्षणात्भूमौ निपतितः। अथ तं स श्रेष्ठी निभृतं स्वगृहमध्ये कृत्वा नापितं सन्तोष्य प्रोवाच-"तदेतद्धनं, वस्त्राणि च मया दत्तानि गृहाण। भद्र! पुनः कस्यचिन्नाख्येयोऽयं वृत्तान्तः"।

व्याख्या– एतस्मिन्निति। एतस्मिन्नन्तरे = अस्मिन्नेवकाले (इसी समय) **तस्य** = श्रेष्ठिनः (सेठकी) **भार्यया** = पत्न्या (पत्नी के द्वारा) **कश्चिन्नापितः** एको नापितः (एक नाई), **पादप्रक्षालनाय** = पादयोः शोधनाय अर्थात् नखकर्त्तनयावकरसादिद्वारापादालङ्करणाय, (नाखून आदि काटने तथा यावक रसादि से अलंकृत करने के लिये) **आहूतः** = समाहूतः (बुलाया गया) **अत्रान्तरे** = एतस्मिन्नेवावसरे (ठीक इसी समय) **यथानिर्दिष्टः** = स्वप्ने यथा क्षपणकेनाज्ञप्तः (स्वप्न में जैसाकि क्षपणक ने कहा था) **क्षपणकः** = जैनभिक्षुः (सन्यासी) **सहसा** = अकस्मात्, (एकाएक) **प्रादुर्बभूव** = समागतः (उपस्थित हो गया) **अथ स** = तदनन्तरं सः श्रेष्ठिः (उस के बाद वह सेठ) **तमालोक्य** = क्षपणकं विलोक्य (क्षपणक को देखकर) **प्रहृष्टमनाः** = प्रसन्नचितः (प्रसन्न चित्तसे) **यथासन्नकाष्ठदण्डेन** = निकटस्थेन लगुडेन (पास में ही रखे हुए काष्ठ दण्ड से) **तं** = क्षपणकं (उस सन्यासी को) **शिरस्यताऽडयत्** =

शिरसि = मस्तके, अताडयत् = दण्डेन- प्रहारमकरोत् (उसके सिर पर दण्डेसे प्रहार किया) **सोऽपि** = क्षपणकोऽपि (संन्यासी, क्षपणकभी) **सुवर्णमयो-भूत्वा** = कनकमय: **तत्क्षणात्** = सद्य: (तत्काल, मस्तक पर प्रहार होते ही) **भूमौ निपतितः** = पृथिव्यां पतित: (भूमि पर गिर पड़ा) **अथ तं** = तदनन्तरं तं क्षपणकम् = (उसके पश्चात् उस क्षपणक को जो सोने का हो गया था) **स श्रेष्ठी** = मणिभद्र: (उस सेठ मणिभद्र ने) **निभृतं** = निगूढं, (अत्यन्त गुप्तरूपसे) **स्वगृहमध्ये** = स्वकीयभवनान्तरे, (अपने घर में) **कृत्वा** = विधाय, **निक्षिप्य** (रखकर) **नापितं** = नाईको **सन्तोष्य** = धनेन पुरस्कृत्य (धनादिदेकर सन्तुष्ट करके) **प्रोवाच** = अवोचत् (बोला) "**तदेतद्धनं** = वित्तं (यह धन) **वस्त्राणि च मया दत्तानि गृहाण** = मया समर्पितानि गृह्यताम् (स्वीकार करो) **भद्र !** = प्रिय ! नापित ! = (प्रिय नाई) **कस्यचित्** = कस्मै अपि (किसी को भी) **नाख्येयः** = न वक्तव्य: (न कहना) **अयं वृत्तान्तः** = एष उदन्त: (इस समाचार को) ॥

हिन्दी– इसी बीच या उसी समय जब मणिभद्र की पत्नी ने अपने पैरों में महावर आदि लगाने के लिए किसी नाई को बुलाया, तभी स्वप्न में देखा हुआ वह क्षपणक सन्यासी वहाँ अकस्मात् उपस्थित हुआ। उसे देखकर मणिभद्र ने प्रसन्न चित्तसे समीप में ही रखी हुई लकड़ी से उस क्षपणक के मस्तकपर प्रहार किया, जिससे वह क्षपणक सन्यासी सुवर्णमय बनकर भूमि पर गिर पड़ा। तत्पश्चात् उस सेठ ने उस सुवर्णराशि को अपने घर में छिपा दिया और नाई को द्रव्य-वस्त्रादि देकर संतुष्ट किया और कहा-हे प्रिय ! यह धन-वस्त्रादि मैं तुझे दे रहा हूँ। इसे स्वीकार करो, और इस वृत्त-घटना को किसी से न कहना।

नापितोऽपि स्वगृहं गत्वा व्यचिन्तयत्–नूनमेते सर्वेऽपि नग्नकाः शिरसि दण्डहताः काञ्चनमया भवन्ति। तदहमपि प्रातः प्रभूतानाहूय लगुडैः शिरसि निहन्मि, येन प्रभूतं हाटकं मे भवति। एवं चिन्तयतो महता कष्टेन निशा व्यतिचक्राम।

व्याख्या– नापित इति। नापितोऽपि = (नाई भी) **स्वगृहं** =

स्वभवनं = (अपने घर) **गत्वा** = उपेत्य (जाकर) **व्यचिन्तयत्** = अचितन्तयत् (सोचने लगा) **नूनं** = निश्चयेन (निश्चितरूपसे) **एते सर्वेऽपि** = (ये सभी) **नग्नकाः** = क्षपणकाः, (सन्यासी) **शिरसि दण्डहताः** = मूर्ध्नि (सिर पर) ताडिताः = दण्डेन शिरसि ताडिताः, (दण्डेसे सिर पर प्रहार करने पर) **काञ्चनमया** भवन्ति = स्वर्णमयाः **भवन्ति** = जायन्ते (स्वर्णमय होंगे) **तदहमपि प्रातः प्रभूतानाहूय** = प्रातः प्रचुरान्, विपुलसंख्याकान् (प्राप्तः काल बहुत से क्षपणकों को बुलाकर) **लगुडैः** = दण्डैः (दण्डेसे) **शिरसि** = मस्तके, (मस्तक पर) **निहन्मि** = प्रहरामि, (मारुँगा) **येन** = दण्डप्रहारेण (दण्डे के प्रहार से) **प्रभूतं** = प्रचुरं (विपुल) **हाटकं** = सुवर्णम् (सुवर्ण) **मे भवति** = (मेरे पास बहुतसा सोना हो जायगा) **एवं चिन्तयतः** = विचारयतः, **महता कष्टेन** = अत्यन्तक्लेशेन (बड़ी कठिनाई से) **निशा** = रात्रिः (रात) **व्यतिचक्राम** = उल्ललङ्घे, व्यपगता (व्यतीत हुई) ॥

हिन्दी— इस घटना को देखने के पश्चात् नाई अपने घर जाकर विचार करने लगा। निश्चय ही, ये सभी क्षपणक मस्तक पर दण्डेसे प्रहार करने पर सुवर्ण के हो जाते हैं। तो मैं भी प्रातःकाल अनेक क्षपणकों को बुलाकर उनके मस्तक पर दण्डेसे प्रहार करूँगा। जिससे मेरे पास भी प्रभूत मात्रा में सोना एकत्र हो जायगा। इस प्रकार विचार करते-करते उस नाई की वह रात बड़ी कठिनाई से व्यतीत हुई।

अथ प्रभातेऽभ्युत्थाय बृहल्लगुडमेकं प्रगुणीकृत्य, क्षपणकविहारं गत्वा जिनेन्द्रस्य प्रदक्षिणत्रयं विधाय, जानुभ्यामवनिं गत्वा वक्त्र-द्वारन्यस्तोत्तरीयाञ्चलस्तारस्वरेणेमं श्लोकमपठत्—

व्याख्या— अथेति। अथ = तत्पश्चात्, **प्रभाते** = प्रातःकाले (सुबह) **समुत्थाय** = शयनादुत्थाय (बिस्तरेसे उठकर) **बृहल्लगुडम् एकं** = अतिदीर्घाकारं एकम् दण्डम् (बहुत बड़ा दण्डा) **प्रगुणीकृत्य** = सज्जीकृत्य (तैयार करके) **क्षपणकं विहारं** = क्षपणकानां विहारं मठं = (भिक्षुओं के मठ में) **गत्वा**, (जाकर) **जिनेन्द्रस्य** = भगवतो जिनस्य "विहारो भ्रमणे स्कन्धे लीलायां सुगतालये"

इति **मेदिनी** । (जिन भगवान् की) **प्रदक्षिणत्रयं** = वारत्रयं प्रदक्षिणां, **विधाय** = कृत्वा (तीनवार प्रदक्षिणा करके) **जानुभ्याम् अवनिम्** = जानुभ्यां पृथ्वीं प्रणम्य (जानु को मोड़कर पृथ्वी को प्रणाम किया) **वक्त्रद्वारन्यस्तोत्तरीयाञ्चलः** = वक्त्रस्य मुखस्य द्वारे आरम्भरन्ध्रे न्यस्तः स्थापितः उत्तरीयाञ्चलः उत्तरीयवस्त्रस्य प्रान्तभागो येन स तथाभूतः (उत्तरीय को मुखद्वार पर रख कर) **तारस्वरेण** = उच्चस्वरेण (उच्चस्वर से) **श्लोकमपठत्**-एकं पद्यम् अपठत्-(एक पद्य पढा) ॥

हिन्दी– इस प्रकार रात में विचार करने के पश्चात् प्रातःकाल उस नाई ने उठकर एक दीर्घाकार दण्डा तैयार किया । तदनन्तर क्षपणकों के मठ में जाकर जिनाचार्य की तीन बार प्रदक्षिणा कर मुखाग्र को उत्तरीय वस्त्र के छोर से ढककर उच्चरस्वरसे यह श्लोक पढा–

जयन्ति ते जिना येषां केवलज्ञानशालिनाम् ।
आजन्मनः स्मरोत्पत्तौ मानसेनोषरायितम् ।।१२।।

अन्वयः– केवलज्ञानशालिनाम् येषां (जिनानां) आजन्मनः समरोत्पत्तौ मानसेन ऊषरायितं ते जिना जयन्ति ।।१२।।

व्याख्या– जयन्तीति । केवलज्ञानशालिनां = केवलज्ञानेन-ज्ञानमात्रेण ज्ञानविशेषेण शालन्ते शोभन्त इति केवलज्ञानशालिनः तेषाम्, (जो ज्ञान से शोभित हैं,) **येषाम्** = जिनानाम्-जैनक्षपणकानाम् (जैन क्षपणकों के) **आजन्मनः** = जन्मारभ्य **स्मरोत्पत्तौ** = काम-देवस्योत्थाने, (जन्मसे ही काम-वासना की उत्पत्ति के सम्बन्धमें) **मानसेन** = स्वान्तेन (चित्तसे) **ऊषरायितम्** = ऊषरेणेव क्षारमृत्तिक-येवाचरितम् (ऊषरभूमि की तरह जिनके हृदयमें कठोरता का परिचय दिया है ।) **ते** = कामवासनारहिताः (कामवासनासे शून्य) **जिनाः** = जैनसाधवः (जैन साधुओं की) **जयन्ति** = सर्वोत्कर्षेण वर्तन्ते ।। (जय हो) ।। यथा क्षारायां भूमौ उप्तं बीजं किमपि न प्ररोहति, तत्र तत् बीजं नष्टं भवति, तद्वत् येषां चित्ते कदापि कामवासना स्त्रीभोगवासनात्मकः कामः न जायते ते जिनाः सर्वोत्कृष्टाः सन्तीतिभावः ।।१२।।

हिन्दी– ज्ञानमात्रसे शोभादेनेवाले केवली जैन भिक्षुओं के हृदयमें काम-वासना की उत्पत्ति, ऊषर भूमिमें बोये गये बीज की तरह निष्फल होती है, उन जिनों की सर्वदा विजय होती है ॥१२॥

सा जिह्वा या जिनं स्तौति तच्चित्तं यज्जिने रतम् ।
तावेव च करौ श्लाघ्यौ यौ तत्पूजाकरौ करौ ।।१३।।

अन्वयः– या जिनं स्तौति सा जिह्वा, (श्लाघ्या) यत् जिने रतं तच्चित्तं (श्लाघ्यं) यौ करौ तत्पूजाकरौ तौ एव करौ तु-श्लाघ्यौ ॥१३॥

व्याख्या– सेति । या = रसना (जो जीभ) **जिनं** = अर्हन्तं भगवन्तं (जैनाचार्यको) **स्तोति** = अभिनन्दति, जिनस्य स्तोत्रपाठान् पठति, (स्तुति करती है) **सा जिह्वा** = सैव जिह्वा (वही यथार्थ में जीभ है) **तत् चित्तं** = तदेव चित्तं नान्यत् **यत् जिने** = जिने रतम् = संलग्नम् (वही चित्त है, जो जिन में लीन है ।) **यौ करौ** = पाणीच-हस्तौ, (जो हाथ) **तत्पूजाकरौ** = तस्य जिनस्य पूजा तत्पूजा, तत्पूजां कुरुतः इति तत्पूजाकरौ, जिनार्चनातत्परावित्यर्थः (उस जिनाचार्य की पूजा में संलग्न हैं, वे ही प्रशंसनीय हैं) ॥१३॥

हिन्दी– जो रसना जिनों की स्तुति करती है या उनके स्तोत्रों का पाठ करती है, वही जीभ यथार्थ में जीभ है, जो चित्त जिनों में सदा लीन रहता है, वस्तुतः वही चित्त है, और जो हाथ जिनों की सेवा-आराधना मे तत्पर हैं वे ही हाथ प्रशंसार्ह हैं ॥१३॥

ध्यानव्याजमुपेत्य चिन्तयसि कामुन्मील्य चक्षुः क्षणं,
पश्यानङ्गशरातुरं जनमिमं त्राताऽपि नो रक्षसि ।
मिथ्याकारुणिकोऽसि निर्घृणतरस्त्वत्तः कुतोऽन्यः पुमान्;
सेर्ष्यं मारवधूभिरित्यभिहितो बुद्धः जिनः पातु वः ।।१४।।

अन्वयः– ध्यानव्याजम् उपेत्य कां चिन्तयसि, क्षणं-चक्षुः उन्मील्य अनङ्गशरातुरम् इमं जनं पश्य, त्राता अपि नो रक्षसि, मिथ्याकारुणिकः असि, त्वत्तः निर्घृणतरः अन्यः पुमान् कुतः इति मारवधूभिः सेर्ष्यम् अभिहितः बुद्धः जिनः वः पातु ॥१४॥

व्याख्या– ध्यानव्याजमिति । ध्यानव्याजं = ध्यानं = चित्तवृत्तिनिरोधात्मकः समाधिः तस्य व्याजं कपटं मिथ्यासमाधिमित्यर्थः (झूठी समाधि का बहाना बनाकर, ध्यान में लीन रहने का बहाना बनाकर) **उपेत्य** = आश्रित्य, **काम्** = सुन्दरीम् (किस सुन्दरी का) **चिन्तयसि** = ध्यायसि (चिन्तन कर रहे हो) **क्षणं** = क्षणमात्रं, स्वल्पकालमात्रं (क्षणभर के लिये) **चक्षुः** = नेत्रम् (नेत्र को) **उन्मील्य** = उद्घाट्य (खोलकर) **अनङ्गशरातुरम्** = अनङ्गस्य कामस्य शरैर्बाणैरातुरं विद्धं कामबाण-व्यथितम्-(कामदेव के बाणों से आहत-पीडित) **इमं जनं** = पुरोवर्तिनं जनं (आपके सामने स्थित इस पीडित जन की ओर) **पश्य** = विलोक्य (देख लो) **त्वं त्राताऽपि** = रक्षणसमर्थोऽपि (रक्षा करने में समर्थ होने पर भी) **नो रक्षसि** = नैव त्रायसे, (कामपीडित हम जनों की आप रक्षा नहीं करते हो) अतः **त्वं मिथ्या-कारुणिकः** = असत्यमेव (झूठ ही) कारुणिकः दयालुरसि-"जिनो दयालु" रितिलोकानां कथनं मिथ्यैवैत्यर्थः (आप दयालु हैं, जिन दयालु हैं, यह लोगों का कथन असत्य ही है ।) **त्वत्तः अन्यः** = युष्मत् अतिरिक्तः भिन्नः, **पुमान्** = पुरुषः (तुमसे भिन्न अन्य कोई पुरुष) **निर्घृणतरः** = नितान्तदयाविहीनः कुतः ? (आपसे अधिक दयाहीन कहाँ मिलेगा ?) अर्थात् कहीं नहीं । **इति** = अनया रीत्या,-इत्थं-(इस प्रकार) **मारवधूभिः** = कामस्त्रीभिः, रत्यादिअप्सरोभिः (कामवधुओं ने) **सेर्ष्यम्** = ईर्ष्यया सह विद्यमानं यथास्यात् तथा, (ईर्ष्यासे) **अभिहितः** = कथितः, उपालम्भितः (उक्त प्रकार से कहा गया-उपालम्भित हुआ) **बुद्धः जिनः** = जिनदेवः, **वः** = युष्मान् सर्वान् (आप लोगों की) **पातु** = रक्षतु, (संसाररूपीसागर से मुक्ति कर दे) **शार्दूलविक्रीडितं** वृत्तम् ॥१४॥

हिन्दी– ध्यानमग्न बैठने के बहाने आप किस सुन्दरी के ध्यान में लीन हैं ? किसी सुन्दरी का चिन्तन कर रहे हैं ? एक क्षण के लिये अपने नेत्रों को खोलकर कामदेव के बाणों से आहत मुझ जन को देखो । आप (आर्तों के) रक्षक होकर भी रक्षा नहीं करते हैं, यह आश्चर्य है । (लोग) व्यर्थ ही आपको दयालु कहते हैं, (मेरे विचार में तो) आपसे बढकर अन्य कोई भी निर्दयी नहीं है, काम की स्त्रियों द्वारा इस प्रकार ईर्ष्यापूर्वक उपालम्भित हुए जितेन्द्रिय जिनेन्द्र आपकी रक्षा करें ॥१४॥

एवं संस्तुत्य, ततः प्रधानक्षपणकमासाद्य क्षितिनिहितजानुचरणः "नमोस्तु वन्दे" इत्युच्चार्य, लब्धधर्मवृद्ध्याशीर्वादः सुखमालिकाऽनुग्रहलब्धव्रतादेश उत्तरीयनिबद्धग्रन्थिः सप्रश्रयमिदमाह–"भगवान्! अद्य विहरणक्रिया समस्तमुनिसमेतेनास्मद्गृहे कर्त्तव्या ।।"

व्याख्या– एवमिति । एवम् = उपर्युक्तप्रकारेण (जिनेन्द्रं) **संस्तुत्य** = स्तुतिं कृत्वा (उपर्युक्त प्रकार से उस नाई ने जिनेद्र भगवान् की स्तुति करके) **प्रधानक्षपणकं** = प्रधानमठाचार्यं, (मठके प्रधान आचार्य के) **आसाद्य** = गत्वा (निकट-जाकर) **क्षितिनिहितजानुचरणः** = क्षितौ पृथिव्यां निहितं स्थापितं जानुचरणं येन स तथाविधः (घुटने टेककर) 'नमोस्तु वन्दे' **इत्युच्चार्य** = इत्युच्चशब्देन उद्घोष्य (जोर से कहकर) **लब्धधर्मवृद्ध्याशीर्वादः** = लब्धः प्राप्तः धर्मवृद्धये आशीर्वादो येन सः (उसने धर्मवृद्धिका आशीर्वाद प्राप्त किया) **सुखमालिकानुग्रहलब्धव्रतादेशः** = अनुग्रहरूपपुष्पमालिकया प्राप्तव्रतादेशः, (प्रधानाचार्य द्वारा प्रदत्त अनुग्रहरूपी पुष्पमाला से ब्रह्मचर्यादिरूपव्रतका आदेश प्राप्त करके) **उत्तरीयनिबद्धग्रन्थिः** = उत्तरीये निबद्धो ग्रन्थिर्येन सः गलाधोभागनिबद्धोत्तरीयैकदेश इत्यर्थः (उत्तरीय वस्त्र को अपने गले में लपेटकर) **सप्रश्रयं** = सप्रणयम् सानुनयम् (नितान्त विनम्रता से) **इदमाह** = एतदुवाच, **भगवन्! अद्य विहरणक्रिया** = भिक्षाटनक्रिया (भोजन) **समस्तमुनिसमेतेन** = समस्तभिक्षुवृन्देन (समस्त-भिक्षुवृन्द-वर्ग के साथ) **अस्मद्गृहे** = मम भवने (मेरे घर) **कर्त्तव्या** = विधातव्या (करना चाहिये) ।।

हिन्दी– जैन भगवान् की उक्त प्रकार से स्तुति करने के पश्चात् वह नाई प्रधान मठाधीश के पास जाकर भूमितल पर घुटने टेककर बैठ गया। पुनः नमस्कारादि करके उनसे प्रसाद एवं अनुग्रहरूप में पुष्प-माला तथा ब्रह्मचर्यादिरूप व्रत-विधान का उपदेश प्राप्त कर गले में उत्तरीय वस्त्र की गांठ लगाकर नितान्त उसने नम्रता पूर्वक कहा- भगवान्! आज समस्त भिक्षुओं के साथ आप मेरे घर पर ही भोजन करें।

स आह–"भोः श्रावक! धर्मज्ञोऽपि किमेवं वदसि, किं वयं

ब्राह्मणसमानाः यत आमन्त्रणं करोषि ? वयं सदैव तत्कालपरिचर्यया भ्रमन्तो भक्तिभाजं श्रावकमवलोक्य तस्य गृहे गच्छामः । तेन कृच्छ्रादभ्यर्थितास्तद्गृहे प्राणधारणमात्रामशनक्रियां कुर्मः । तद्गम्यताम्, नैवं भूयोऽपि वाच्यम् ।

व्याख्या– स इति । स आह = नापितस्य वचनं श्रुत्वा स मठाधीशोऽकथयत् (उस नाई के उक्त कथन को सुनकर वह मठाधीश (जैनाचार्य) बोला) **भोःश्रावक**-भो जिनभिक्षुकानुरागिन् ! (हे, जैन भिक्षुक के प्रेमी)- **धर्मज्ञः** = धर्मविद्, अपि जिनधर्मं जानन्नपि (जिन धर्म को जानते हुए भी) **किमेवं वदसि** = कथमेवं वदसि ? (ऐसा क्यों कहते हो) **किं वयं ब्राह्मणसमानाः** = किं वयं जिनाः विप्रसदृशाः (क्या हम-जिन-ब्राह्मणों जैसे हैं ?) **यतः** = यदर्थम् (जिस कारणसे) **आमन्त्रणं** = निमंत्रणम् (निमंत्रण) **करोषि** = विदधासि, (करते हो, बुलाते हो) **वयं सदैव** = जिनभिक्षवः, (हम जिन भिक्षुक) **सदैव** = निरन्तरम् (सर्वदा) **तत्कालपरिचर्यया** = आहारोपयोगिनिकाले या परिचर्या सेवा तयेत्यर्थः-भोजनसमयोचितभिक्षेच्छया (भोजनका उचित समय होने पर भिक्षा की इच्छासे) **भ्रमन्तः** = भिक्षार्थमटन्तः (भिक्षा के लिए घूमते हुए) **भक्तिभाजम्** = भक्त्यन्वितं सेवकं-भक्तजनं वा (भक्तियुक्त सेवक, श्रद्धालु) **श्रावकं** = जैनगृहस्थम्-जैनधर्मसेविनम् (जैन धर्मका पालन करने वाले गृहस्थ को) **अवलोक्य** = दृष्ट्वा, (देखकर) **तस्य गृहे गच्छामः** = जैनधर्मसेवकस्य भवने, गच्छामः (जैन धर्मीके (गृहस्थ) घर को जाते हैं) **तेन** = श्रावकेन (उस भंक्तने) **कृच्छ्रात्** = कष्टात्-**अभ्यर्थिताः** = प्रार्थिताः महान्तमाग्रहं कृत्वा = (बड़ा आग्रह करके, उसके द्वारा बहुत आग्रह किया जाने पर) **प्राणधारणमात्राम्** = उदरपूर्तिमात्राम्, अत्यन्तं स्वल्पम् (जीनव यापन के लिये अपेक्षित अत्यन्तस्वल्प भोजन) **अशनक्रियाम्** = अशनस्य क्रिया ताम्,-भोजनक्रियाम् (भोजन) **कुर्मः** = करते हैं । अभ्यवहरणम् कुर्मः । **तद्गम्यताम्** = अस्मात् स्थानात् गच्छ, परावृत्यताम् (यहाँ से चले जाओ) **नैवं भूयोऽपि वाच्यम्** = पुनरपि न वक्तव्यम् (फिर से इस प्रकार न कहना) ॥

हिन्दी– उस नाई की बात सुनकर प्रधान भिक्षुक ने कहा– हे श्रावक ! जिनधर्म के जानकार होने पर भी इस प्रकार क्यों कहते हो ? क्या हम-जिन-ब्राह्मणों के समान हैं ? कि आप हमें निमन्त्रित कर रहे हो ? भोजनका उचित समय हो जाने पर हम स्वयं भिक्षा के लिए घूमते हुए किसी श्रद्धालुभक्त को देखकर उसके घर चले जाते हैं। उस भक्त के द्वारा बहुत आग्रह किये जाने पर हम केवल जीवन-यापन के लिए अपेक्षित मात्रा में (स्वल्पभोजन) भोजन करते हैं। आप तत्काल इस स्थान से चले जाओं और भविष्य में पुनः इस प्रकार न कहना।

तच्छ्रुत्वा नापित आह–"भगवन्! वेद्म्यहं युष्मद्धर्मम्। परं भवतो बहुश्रावका आह्वयन्ति। साम्प्रतं पुनः पुस्तकाच्छादनयोग्यानि कर्पटानि बहुमूल्यानि प्रगुणीकृतानि। तथा पुस्तकानां लेखनार्थं लेखकानां च वित्तं सञ्चितमास्ते। तत्सर्वथा कालोचितं कार्यम्।"

व्याख्या– तदिति। तच्छ्रुत्वा = क्षपणकोक्तवचनम् आकर्ण्य (प्रमुख भिक्षु के वचनों को सुनकर) **नापित आह** = नापितोऽवदत् (नाईबोला) **'भगवन्! वेद्मि अहम्** = अहम् जानामि, (मैं जानता हूँ) **युष्मद्धर्मम्** = भवद्धर्मम् (आपके धर्मको) **परं भवतो बहुश्रावकाः** = युष्मान् बहवो भक्ताः (आपको अनेक भक्तजन) **आह्वयन्ति** = आकारयन्ति (बुलाते हैं) **पुस्तकाच्छादनयोग्यानि** = पुस्तकानामाच्छादनस्य प्रावरणस्य योग्यानि पुस्तकबन्धनोपयोगीनि (धार्मिक ग्रन्थों को आवरणोंसे बान्धने योग्य) **कर्पटानि** = पटखण्डानि (वस्त्रों के टुकड़े) **बहुमूल्यानि** = महार्हाणि, (कीमती वेष्टन) **प्रगुणीकृतानि** एकत्री कृतानि, प्रस्तुतानि बहुलीकृतानि वा (एकत्रित किया है) **लेखकानाम्** = धर्मग्रन्थलेखकानां कृते (धर्मग्रन्थके लिखने वाले विद्वानों के लिए) **वित्तं** = धनम् (धन) **कालोचितम्** = समयोचितम् (समयोचित) **कार्यम्** = कर्तव्यमिति (समयोचित कार्य किया जाना चाहिए)॥

हिन्दी– जैनभिक्षु के वचनों को सुनकर नाई ने कहा–"भगवन्! मैं आपके धार्मिक नियमों को (सम्यक्रूप से) जानता हूँ। वस्तुतः आपको अनेक

भक्तजन बुलाते हैं। इस समय मैंने धर्म-ग्रंथों को बान्धने के लिए बहुमूल्य वस्त्रों को एकत्र कर लिया है और धर्मग्रन्थों को लिखवाने के लिए ग्रन्थ लेखकों को पारिश्रमिक रूप में देने के लिए धन भी एकत्र कर लिया है। अतः आप समयानुसार कार्य करें (यही मेरी प्रार्थना है)।

ततो नापितोऽपि स्वगृहं गतः। तत्र च गत्वा खदिरमयं लगुडं सज्जीकृत्य कपाटयुगलं द्वारि समाधाय सार्द्धप्रहरैकसमये भूयोऽपि विहारद्वारमाश्रित्य सर्वान्क्रमेण निष्क्रामतो गुरुप्रार्थनया स्वगृहमानयत्। तेऽपि सर्वे कर्पटवित्तलोभेन भक्तियुक्तानपि परिचितश्रावकान् परित्यज्य प्रहृष्टमनसस्तस्य पृष्ठतो ययुः। अथवा साध्विदमुच्यते–

व्याख्या– तत इति। ततः = तदनन्तरम्, प्रधानक्षपणकस्यादेशं श्रुत्वा (प्रधानक्षपणक का जाने के लिए आदेश सुनने के पश्चात्) **स्वगृहं** = नापितः स्वभवनं गतः (नाई अपने घर गया) **तत्र च गत्वा** = निजगृहं गत्वा-प्राप्य, (अपने घर जाकर) **खदिरमयं** = खदिरकाष्ठमयम् (खैर की) **लगुडं** = दण्डम् महायष्टिम् = (खदिरलकडी का बडा डण्डा) **सज्जीकृत्य** = प्रगुणीकृत्य, अभीष्टकार्यसम्पादनक्षमम् निर्मायेत्यर्थः (तैयार करके, अपने अभीष्टकार्य को बनाने में समर्थ ऐसे दण्ड को तैयार करके) **कपाटयुगलम्** = कपाटद्वयम्, (द्वार के दोनों पल्लों को) **समाधाय** = पिधाय (बन्द करके) **सार्द्धप्रहरेक-समये** = दशवादनसमये, (डेढ पहर दिन व्यतीत हो जाने के पश्चात्) **विहारद्वारम्** = जैनाश्रमद्वारम्, (जैनमठ के द्वार पर) **आश्रित्य** = स्थित्वा, (ठहरकर) **निष्क्रामतः** = निर्गच्छतः, स्वविहारस्थानात् भिक्षार्थम् बहिर्निर्यातान् (अपने आश्रम से भिक्षा के लिए बाहर निकलते हुए) **गुरुप्रार्थनया** = गुर्वी चासौ प्रार्थना गुरुप्रार्थना तया-अत्यादरेणेत्यर्थः, (बहुत आग्रहपूर्वक) **स्वगृहं** = स्वभवनम् (अपने घर) **आनयत्** = आनीतवान् (ले आया) **तेऽपि सर्वे** = जैनसाधवः (वे भी सभी जैन साधु), **कर्पटवित्तलोभेन** = वस्त्रखण्डात्मकधनलिप्सया, अर्थात् वस्त्रधनादिलोभेन (वस्त्रधन के लोभ से) **भक्तियुक्तान्** = अतिभक्तान्, नित्यं **सेवापरायणान्** = (भक्तों को) परिचितश्रावकान् पूर्वपरिचितधार्मिकान्,

परित्यज्य = त्यक्त्वा (पूर्वपरिचित-धार्मिकगृहस्थों को छोड़कर) **प्रहृष्टमनसः** = प्रसन्नचेतसः, (प्रसन्न मनसे) **तस्य** = नापितस्य = (उस नाई के) **पृष्ठतः** = पश्चात् (पीछे-पीछे) **ययुः** = जग्मुः, अनुययुः (पीछे-पीछे चले गये) अथवा **साधु इदम् उच्यते** = अथवा साधु = सुष्ठु, इदम् उच्यते = सम्यक्-समीचीनम् उच्यते (अथवा यह ठीक ही कहा जाता है) ॥

हिन्दी– इस प्रकार उस मठाधीश को निवेदन करके वह नाई अपने घर चला आया और खैर वृक्ष की लकड़ी का एक बडा डंडा बनाकर तैयार रखा। पश्चात् द्वार के दोनों पल्लों को सावधानी से बन्द कर दिया। डेढ़ पहर बीत जाने के पश्चात् वह पुनः जैनमठ के द्वार पर आकर खड़ा हो गया और भिक्षा के लिए आश्रम से बाहर निकलते हुए उन जैन साधुओं को बड़े आग्रह के साथ अपने घर आने के लिए प्रार्थना करने लगा। वे जैन साधु भी वस्त्र एवं धन के लोभ से अपने पूर्वपरिचित गृहस्थजनों को छोड़कर नाई कें पीछे-पीछे उसके घर की ओर चल गये। अथवा किसी ने ठीक-योग्य ही कहा है–

एकाकी गृहसन्त्यक्तः पाणिपात्रो दिगम्बरः।
सोऽपि संवाह्यते लोके तृष्णया पश्य कौतुकम् ।।१५।।

अन्वयः– एकाकी गृहसन्त्यक्तः पाणिपात्रः दिगम्बरः सोऽपि लोके तृष्णया संवाह्यते (इति इदं) कौतुकं पश्य ॥१६॥

व्याख्या– एकाकीति। एकाकी = एकलः, परिवाररहितः, (अकेला-स्त्री-पुत्रादिसे रहित) **गृहसन्त्यक्तः** = परित्यक्तगृहस्थाश्रमः, स्त्रीसंसर्गरहितः (घर को त्यक्त किया हुआ) **पाणिपात्रः** = पाणिः कर एव पात्रं भिक्षान्नाधारभूतं यस्य सः, करपात्री (हाथ को ही पात्र बनाने वाला) **दिगम्बरः** = दिग् दिशैव अम्बरं वासो यस्य सः तथा विधो नग्नः (वस्त्ररहित-नग्न) सः अपि उक्त-विशेषणैःसमन्वितः (उक्त बातों-विशेषणों से युक्त वह भी) **लोके**-संसारे (संसार में) **तृष्णया** = लोभेन (लोभसे) **संवाह्यते** = वशीक्रियते (आकर्षित हो जाता है) **इति त्वं पश्य** = अवलोकय **कौतुकम्** = आश्चर्यम्, (इस प्रकार के आश्चर्य को) वस्तुमात्रपरित्याग-प्रतिज्ञया चरमाश्रमं प्राप्ता अपि साधवो धनलोभाक्रान्ताः संजायन्त इत्याश्चार्यम् ॥१५॥

हिन्दी– इस संसार में अकेला रहनेवाला, घर आदि को त्यागकर विरक्तावस्था में रहनेवाला, करपात्री अर्थात् हाथ को ही भोजनादि ग्रहण करने के लिये पात्र बनाया हुआ व्यक्ति भी तृष्णा-लोभ के द्वारा आकृष्ट होकर उसके वश में हो जाता है। इस महदाश्चार्य को देखो ॥१५॥

जीर्यन्ते जीर्यतः केशाः दन्ता जीर्यन्ति जीर्यतः ।
चक्षुः श्रोत्रे च जीर्येते, तृष्णैका तरुणायते ।।१६।।

अन्वयः– जीर्यतः (पुरुषस्य) केशाः जीर्यन्ते, जीर्यतः दन्ताः जीर्यन्ते, चक्षुः श्रोत्रे च जीर्येते (किन्तु) एका तृष्णा तरुणायते ॥१६॥

व्याख्या– जीर्यन्त इति । जीर्यतः = जरां प्राप्तवतो जनस्य, वृद्धस्य (वृद्धपुरुष के) **केशाः** = शिरो बालाः-शिरोरुहाः (केश) **जीर्यन्ते** = शुक्लीभवन्ति,-श्वेताभवन्ति (श्वेत हो जाते हैं) **दन्ताः** = दशनान्यपि, अन्नचर्वणे असमर्था जायन्ते स्वस्थानं परित्यजन्ति च (दांत भी जीर्ण होकर गिर जाते हैं) **चक्षुः** = नेत्रम् (आँख) **श्रोत्रे** = कर्णौ = (कान) नेत्रकर्णावपि जीर्येते = स्वस्वविषय-ग्रहणाय नालं भवतः (आँखें और कान भी देखने और सुननेमें असमर्थ हो जाते हैं) किन्तु **एका** = केवला = (केवल) **तृष्णा** = लोभः विषयभोगलिप्सा (तु) **तरुणायते** = नवनवीभवति, तरुणत्वम् आप्नोति (तरुण होती जाती है) ॥१६॥

हिन्दी– वृद्धत्व प्राप्त होने पर मनुष्य के केश पक-श्वेत-हो जाते हैं, दाँत गिर जाते हैं या पदार्थचर्वण करने में असमर्थ हो जाते हैं, नेत्र ठीक तरह से देख नहीं पाते, उनकी देखने की शक्ति क्षीण हो जाती है, कान भी शब्द सुनने में असमर्थ अर्थात् बहरे हो जाते हैं, किन्तु आश्चर्य है, कि शरीर के इन्द्रियग्राम क्षीण या बूँढे हो जाने पर भी एक तृष्णा ही केवल प्रतिक्षण युवती होती जाती है। वह कभी भी थकती या शिथिल नहीं होती ॥१६॥

ततः परं गृहमध्ये तान् प्रवेश्य, द्वारं निभृतं पिधाय, लगुडप्रहारैः शिरस्यताडयत्। तेऽपि ताड्यमाना एके मृताः, अन्ये भिन्नमस्तकाः फूत्कर्तुमुपचक्रमिरे। अत्रान्तरे तमाक्रन्दमाकर्ण्य, कोटरक्षपालेनाऽभिहितम्–"भोः भोः! किमयं महान् कोलाहलो नगरमध्ये? तद्-गम्यताम्।"

व्याख्या– तत इति । ततः परं = जैनक्षपणकानामागमनानन्तरम्, (भिक्षुओं के घर में आ जाने पर) **गृहमध्ये** = गृहाभ्यन्तरे, (घर के भीतर) **तान्** = क्षपणकान्, (उन भिक्षुओं को) **प्रवेश्य** = प्रवेशं कारयित्वा, (उन्हें प्रविष्टकर) **द्वारं** = गृहस्य प्रवेशनिर्गमस्थानम्, **निभृतं** = सम्यक् रीत्या प्रच्छन्नं (अच्छी तरह) **पिधाय** = अवरुध्य-(बन्दकरके) **लगुडप्रहारैः** = दण्डप्रहारैः (दण्डे के प्रहारों से) **शिरसि** = मस्तके (सिर पर) **अताडयत्** = प्रताडितवान् (मारा) **तेऽपि** = जैनसाधवः (जैन साधु) **ताड्यमानाः** = हन्यमानाः खादिरेण लगुडेन (डण्डे की मार से मारे जाते हुए) **एके मृताः** = केचन मृताः (कुछ मर गये) **अन्ये** = इतरे क्षपणकाः अवशिष्टाः (शेष बचे हुए जैन साधु) **भिन्नमस्तकाः** = स्फुटितललाटाः, छिन्न-भिन्नशिरसाः (मस्तक फूटने पर) **फूत्कर्तुम्** = हा ! हता वयमिति क्रन्दितुम् (हा हम मारे गये, चिल्लाकर-रोना), **उपचक्रमिरे** = प्रारेभिरे, (प्रारम्भ किया) **अत्रान्तरे** = अस्मिन्नवसरे (इसी समय) **तमाक्रन्दं** = रोदनम् (उनका रोना, हाहाकार) **आकर्ण्य** = श्रुत्वा (सुनकर) **कोटरक्षपालेन** = नगररक्षिपुरुषाध्यक्षेण (दुर्ग रक्षक कोतवाल ने) **अभिहितं** = उक्तम् (कहा) **भो भोः** = किमयं महान् कोलाहलः नगरमध्ये = (नगर में यह बडा कोलाहाल कैसा-क्यों ?) **श्रूयते** = आकर्ण्यते **गम्यताम्** = गत्वा विज्ञायताम् (जाकर मालूम करो) ॥

हिन्दी– तत्पश्चात् उस नाई ने उन सभी भिक्षुओं के घर में प्रविष्ट हो जाने पर चुपचाप दरवाजे के दोनों पल्लों को अच्छी तरह-दृढतासे बन्द कर दिया । तदनन्तर खेर की लकडी से बने हुए डण्डे से उनके सिर पर प्रहार करने लगा, तब उनमें से तो कुछ मर गये और शेष सिर फूट जानेसे हाहाकार-करने लगे-रोने लगे । इसी बीच नगर के कोतवाल ने रोते हुए कोलाहल को सुनकर अपने सिपाहियों से कहा- "हे सिपाहियों ! नगर में ऐसा कोलाहल क्यों हो रहा है ? तुम लोग जाकर ज्ञात करो ।"

ते च सर्वे तदादेशकारिणस्तत्सहिता वेगात्तद्गृहं गताः यावत् पश्यन्ति तावद्रुधिरप्लावितदेहाः पलायमाना नग्नका दृष्टाः । पृष्टाश्च भोः, किमेतत् ? ते प्रोचुर्यथाऽवस्थितं नापितवृत्तम् ।

व्याख्या– त इति । ते च सर्वे = राजपुरुषाः नगररक्षकाः (वे सभी सिपाही) **तदादेशकारिणः** = कोटरक्षपालस्याज्ञापालकाः (उस कोटरक्षपाल, नगररक्षक की आज्ञापालन करने वाले) **तत्सहिताः** = दुर्गपालेन सहिताः (नगर कोतवाल के साथ) **वेगात् तद्गृहं** = झटिति नापितस्य गृहं प्राप्ताः (वे सभी तुरन्त नाई के घर पहुँच गये) **यावत्, पश्यन्ति** = तत्र गत्वा यावदवलोकयन्ति (वहाँ जाकर वे जैसे ही उस स्थल का निरीक्षण करते हैं) **तावत्** = (वैसे ही) **रुधिरप्लावितदेहाः** = रक्तार्द्रशरीराः (रक्त से भरे हुए) **पलायमानाः** = यत्र तत्र धावमानाः (जहाँ-तहाँ दौडते हुए) **नग्नकाः** = क्षपणकाः (क्षपणकों को) **दृष्टाः** = अवलोकिताः (देखा) **पृष्टाश्चभोः किमेतत्** = किम् अभूत् इति (क्या हुआ ?) **ते प्रोचुः** = जैनभिक्षवः उक्तवन्तः (वे भिक्षु बोले) **यथावस्थितम्** = यथादितः घटितम् (जैसा शुरु से हुआ) **नापितवृत्तम्** = नापितस्य वृत्तम्, यथा नापितेन कृतम् तत् सर्वं तैः कथितम् (नाईने जैसा किया, वह सब उन्होंने कहा) ॥

तैरपि स नापितो बद्धो हतशेषैः सह धर्माधिष्ठानं नीतः । तैर्नापितः पृष्टः–"भोः, किमेतद्भवता कुकृत्यमनुष्ठितम् ?"स आह–"किं करोमि । मया श्रेष्ठिमणिभद्रगृहे दृष्टः एवंविधो व्यतिकरः ।" सोऽपि सर्वं मणिभद्रवृत्तान्तं यथादृष्टमकथयत् ।

ततः श्रेष्ठिनमाहूय, ते भणितवन्तः–"भोः श्रेष्ठिन् ! किं त्वया कश्चित्क्षपणको व्यापादितः ?" ततस्तेनाऽपि सर्वः क्षपणकवृत्तान्तस्तेषां निवेदितः । अथ तैरभिहितम्–अहो, शूलमारोप्यतामसौ दुष्टात्मा कुपरीक्षितकारी नापितः ।।

व्याख्या– तैरपीति । तैरपि = राजपुरुषैरपि (सिपाहियों ने) **स नापितः** = क्षौरिकः **बद्धः** = निगडितः (सिपाहियों ने उस नाई को बान्ध दिया) **हतशेषैः** = मृतावशिष्टैः (मरने से बचे हुओं) **सह** = (साथ) **धर्माधिष्ठानम्** = धर्मस्य अधिष्ठानं धर्माधिष्ठानम् न्यायालयमित्यर्थः (धर्म का निर्णय स्थान अर्थात् न्यायालय) **नीतः** = प्रापितः (उपस्थित किया, पहुँचाया) **तैः न्यायाधीशैः** (न्यायाधिशों ने) **कुकृत्यम्** = गर्हितं कार्यम् निन्दितं कर्म (नीन्दनीय कर्म) **अनुष्ठितम्** = कृतम्

(किया) **व्यतिकरः** = व्यवसायो व्यापार (क्रिया) विशेषः (नाई ने कहा- मैंने सेठ मणिभद्र के घर में इस प्रकार की क्रिया देखी थी) **सोऽपि** = क्षौरिकोऽपि (नाईने भी) **सर्वं मणिभद्रवृत्तान्तं** = नापितेनापि यथा मणिभद्रेन कृतम्, तत्र यथा दृष्टम्, तत् सर्वम् अकथयत् (उस नापित ने भी जैसा मणिभद्र ने किया था, वहाँ जैसा देखा था, वह सब कह दिया)।

तत इति । ततः श्रेष्ठिनमाहूय = मणिभद्रम् आकारयित्वा (उससे मणिभद्र को बुलवाकर) **भणितवन्तः** = कथितवन्तः (कहा) **व्यापादितः** = हतः, (मारा है) **तेनापि** = मणिभद्रेणापि (उस मणिभद्रने भी)-**क्षपणकवृत्तान्तः** = स्वप्ने यथा दृष्टं, अनुभूतम् तत् सर्वं क्षपणकवृत्तम् (उसनाई ने भी जैसा स्वप्नमें देखा था, वह सब क्षपणकवृन्तान्तको) **निवेदितः** = निरूपितः (कह दिया) **तैः** = धर्माधिकारिभिः (उन जजों ने) **अभिहितम्** = निर्णीतम् (निणर्य में कहा) **शूलं** = वधसाधनभूतम् (शूली पर) **आरोप्यताम्** = संस्थाप्यताम् (चढाओ) **दुष्टात्मा** = दुर्जनः घातकः (दुर्जन को) **कुपरीक्षितकारी** = पूर्वापरवस्तु-स्वरूपविचारमकृत्त्वैव दुःसाहसकर्मकर्त्ता, (पूर्वापरवस्तुको विना समझे किसी कार्य को करने वाला)।

हिन्दी– तत्पश्चात् उन राजपुरुषों-सिपाहियों-ने उस नाई को बाँधकर मरने से शेष बचे हुए क्षपणकों के साथ उसे न्यायालय में उपस्थित किया। तब न्यायाधीशों ने उसे पूछा-'अरे तुमने ऐसा कुकृत्य-निन्दनीय-कर्म क्यों किया ? तब नाई ने उत्तर दिया श्रीमन् ! मैं क्या करूँ ? मैने सेठ मणिभद्र के घर इस प्रकार का कुकृत्य होते देखा था।' तदनन्तर उस नाई ने मणिभद्र के घर जैसा देखा था, वह सब वृत्त सुना दिया।

इस कार्य-वृत्त को सुनकर जजों ने मणिभद्र को बुलवाकर पूछा- सेठ ! क्या तुमने किसी क्षपणक की हत्या की है ? तदनन्तर मणिभद्र ने जैसा अपने स्वप्न में देखा था, उस क्षपणक का संपूर्ण वृत्तान्त सुना दिया। इस प्रकार सारी घटना को सुनलेने के पश्चात् जजों ने निर्णय दिया कि इस दुर्जन को जो असमीक्ष्यकारी नापित है, उसे शूली पर चढा दो।

तथानुष्ठिते तैरभिहितम्–

कुदृष्टं कुपरिज्ञातं कुश्रुतं कुपरीक्षितम् ।
तन्नरेण न कर्तव्यं, नापितेनाऽत्र यत्कृतम् ।।१७।।

व्याख्या– तथेति । तथा = तेन प्रकारेण, **अनुष्ठिते** = यथा निर्णायकैः निर्णीतम् तथा कृते, शूलमारोपिते, **तैः** = निर्णायकैः **अभिहितम्**-उक्तम् ।

अन्वयः– यथा अत्र नापितेन, कुदृष्टं कुपरिज्ञातं, कुश्रुतं, कुपरीक्षितम्, यत् कृतं, तथा नरेण न कर्त्तव्यम् ।।१७।।

व्याख्या– कुदृष्टमिति । यथा = यथाविधम्, **नापितेन** = क्षौरिकेन, (नाई ने) **अत्र** = अस्मिन् लोके, (यहाँ-इस लोक में) **कुदृष्टम्** = सम्यक्रीत्या न विलोकितम्, **कुपरिज्ञातम्** = यथावद् न ज्ञातम्, **कुश्रुतम्** = सम्यक् न आकर्णितम्, **कुपरीक्षितम्** = सम्यक् न आलोचितम्, यत् कर्म, **कृतम्** = विहितम्, **तत्** = तादृशम् तथाविधम्, **कर्म** = व्यवहारं, **न कर्त्तव्यम्** = नानुष्ठेयम्, सम्यक् रीत्या विचारानन्तरमेव नरेण व्यवहर्तव्यमिह संसारे, इत्यर्थः ।।१७।।

हिन्दी– मणिभद्र के द्वारा वृत्तान्त सुनाने के पश्चात् निर्णायकों द्वारा उस नाई को शूली पर चढाने का आदेश दिया जाने पर, उन निर्णायकों ने कहा-

इस संसार में अच्छी तरह बिना देखे, पूर्णरूप से बिना सुने, तथा अच्छी तरह बिना जाने, तथा विना यथावत् परीक्षा किये, नाईने जिस प्रकार अनर्थ-कार्य-किया था, मनुष्य को तद्वत् कार्य नहीं करना चाहिए ।।१७।।

अथवा साध्विदमुच्यते–

अपरीक्ष्य न कर्तव्यं कर्तव्यं सुपरीक्षितम् ।
पश्चाद्भवति सन्तापो ब्राह्मण्या नकुले यथा ।।१७।।

मणिभद्र आह–"कथमेतत् ?" ते धर्माधिकारिणः प्रोचुः–

अथवेति । अथवा-साधुः = सुष्ठः, **इदं** = वक्ष्यमाणम् **उच्यते** = निर्णायकैः कथ्यते ।

अन्वयः– अपरीक्ष्य न कर्त्तव्यम्, सुपरीक्षितं कर्त्तव्यम् (अन्यथा कृते सति) पश्चात् सन्तापो भवति यथा ब्राह्मण्या नकुले (कृते पश्चात्तापम् अभवत्) ।।१७।।

अपरीक्ष्येति । अपरीक्ष्य = अविचार्य, परीक्षां विवेकमविधाय **न कर्तव्यम्**, किञ्चिदपि कार्यं न कुर्यादित्यर्थः, (बिना परीक्षा किये, किसी भी कार्य को नहीं करना चाहिए) **किन्तु सुपरीक्षितम्** = सम्यक् परीक्षितं = **सुविचारितम् कर्त्तव्यम्**, (अच्छी तरह सोच कर, परीक्षा कर लेने के पश्चात्) पश्चात् अपरीक्ष्य कृते सति- अत्र परीक्षां विना कर्मकरणे दोषविषये दृष्टान्तो यथा- (विना विचार किये कार्य करने पर, यहाँ कवि ने दृष्टान्त दिया है) **सन्तापः** = पश्चात्तापः, (दुःख) **नकुले** = नकुले मृते सति (नकुल के मर जाने के बाद) यथा कयापि विप्रपत्न्या अपरीक्ष्य करणेऽनुताप एव भुक्तः, तथाऽन्योप्येवमनुतप्तो भवत्यतः कोऽप्यविचार्य न कुर्यादित्याशयः ॥१७॥

हिन्दी– अथवा, निर्णायको-विद्वानों ने ठीक ही कहा है-

(इस संसार में प्रत्येक व्यक्तिको) सम्यक्रूपसे बिना परीक्षा किये किसी भी कार्य को नहीं करना चाहिए। किन्तु भली प्रकार से सोच-समझकर ही किसी कार्य को करना चाहिए। अन्यथा बिना ज्ञात किये किसी कार्य को कर लेने पर उसे उसी प्रकार के सन्ताप का अनुभव होता है, जैसे ब्राह्मणी को किसी नेवले के लिये सन्ताप हुआ था ॥१७॥

मणिभद्र ने पूछा-वह कैसे ? धर्माधिकारियों ने कहा-

(२) ब्राह्मणी-नकुलकथा

कस्मिंश्चिदधिष्ठाने देवशर्मा नाम ब्राह्मणः प्रतिवसति स्म । तस्य भार्या प्रसूता सुतमजनयत् । तस्मिन्नेव दिने नकुली नकुलं प्रसूय मृता । अथा सा सुतवत्सला दारकवत्तमपि नकुलं स्तन्यदानाऽभ्यङ्गमर्दनादिभिः पुपोष । परं तस्य न विश्वसति । अपत्यस्नेहस्य सर्वस्नेहातिरिक्ततया सततमेवमाशङ्कते यत्–कदाचिदेष स्वजातिदोषवशादस्य दारकस्य विरुद्धमाचरिष्यति इति । उक्तं च–

व्याख्या– कस्मिंश्चिदिति । अधिष्ठाने = नगरे (नगरमें) **प्रतिवसतिस्म** = अवसत्, (रहता था) **तस्य** = ब्राह्मणस्य = (उस ब्राह्मण की) **भार्या** = स्त्री (स्त्री-पत्नी ने) **सुतमजनयत्** = पुत्रमजनयत् (पुत्र को जन्म दिया) **तस्मिन्नेव दिने** = तस्मिन्नेव दिवसे (उसी दिन) **नकुली** = नकुलस्य स्त्री (नेवली) **नकुलं प्रसूय** = जनित्वा (जन्म देकर) **मृता** = दिवंगता (मर गयी) **अथ** = तत्पश्चात् (उस के बाद) **सुतवत्सला** = पुत्रानुरागसमन्विता सा ब्राह्मणी (पुत्र-स्नेहसे युक्त उस ब्राह्मणी ने) **तम्** = मातृहीनं सद्यः जातं नकुलं (उस मातृहीन नकुल को) **दारकवत्** = निजशिशुवत् (अपने पुत्र की तरह) **स्तन्यदानाभ्यङ्गमर्दनादिभिः** = स्तन्यदाने दुग्धपायनम्, अभ्यङ्गमर्दनम् = तैलादिनावयवानामुद्वर्त्तीकरणं (संवाहनं) (स्तनपानतैलमालिश आदि शरीर को पुष्ट करने वाले कर्म विशेष से) **पुपोष** = पालयामास (पालन किया) । **तस्य** = नकुलस्य (उस नकुलका) **न विश्वसिति** = तम् प्रति विश्वासं नैव करोतिस्म (फिर भी वह ब्राह्मणी उस नकुल पर विश्वास नहीं रखती थी) **अपत्यस्नेहस्य** = निजपुत्रस्नेहस्य (अपने पुत्र का स्नेह) **सर्वस्नेहातिरिक्ततया** = अन्यापेक्षया स्नेहाधिकतया (अन्य की अपेक्षा अधिक स्नेहवश) **सततम् आशङ्कते** = निरन्तरम् शङ्कतेस्म (शङ्का करती थी) **स्वजातिदोषवशात्** = तिर्यग्जातिदोषकारणात् (हिंसक जाति में उत्पन्न होने के कारण नैसर्गिक दोषसे) **दारकस्य** = पुत्रस्य (पुत्रका) **विरुद्धं** = प्रतिकूलम्, (विरुद्ध) **आचरिष्यति** = व्यवहारं करष्यिति (अनिष्टव्यवहार-आचरण कर सकता है ।) **उक्तं च** = केनापि कथितं च-

हिन्दी– किसी नगर में देवशर्मा नाम का एक ब्राह्मण रहता था। उसकी पत्नी ने एक पुत्र को जन्म दिया। उसी दिन एक नकुली ने भी एक नकुल को जन्म दिया और वह दिवंगत हो गई। (मर गयी)। तत्पश्चात् उस पुत्रवत्सला ब्राह्मणी ने उस नकुल का भी पुत्र के समान दूध पिला कर शरीर को पुष्ट करने वाले तैल-मालिश आदि कर्म विशेष से पालन-पोषण किया। इतना करने पर भी वह कभी उस नेवले का विश्वास नहीं करती थी। अपने पुत्र के प्रति निहित स्नेह सर्वोपरि होने के कारण वह सदैव भय-भीत रहती थी कि कहीं यह नेवला अपने जातिगत दोषों के कारण मेरे पुत्र का कोई अनिष्ट न कर दे। (किसी ने उचित ही) कहा भी है-

कुपुत्रोऽपि भवेत्पुंसां हृदयानन्दकारकः।
दुर्विनीतः, कुरूपोऽपि, मूर्खोऽपि, व्यसनी, खलः ।।१८।।

अन्वयः– दुर्विनीतः कुरूपः मूर्खः व्यसनी खलः कुपुत्रोऽपि पुंसां हृदयानन्ददायकः भवेत् ।।१८।।

व्याख्या– कुपुत्र इति। दुर्विनीतः = अत्यधिकोद्धतः दुःशिक्षितः, (अविनीत-उद्धत-अमर्यादित) **कुरूपः** = असुन्दरः (कुरुप) **मूर्खः** = मूढः (मूर्ख) **खलः** = दुष्टः (दुष्ट) **व्यसनी** = द्यूतमद्यादिहीनकर्मरतः, (द्युतादि निन्दित कर्म करनेवाला) **कुपुत्रोऽपि** = कुत्सितोऽपि पुत्रः (दुष्टपुत्र-गुणरहित-पुत्र भी) **पुंसां** = मनुष्याणां (लोगों के) **हृदयानन्दकारकः** = चित्ताह्लादजनकः (हृदय को आनन्दित करने वाला) **भवेत्** = भवति, (होता है।) ।।१८।।

हिन्दी– अपना पुत्र अत्यधिक दुर्विनीत, कुरूप, मूर्ख, व्यसनी, दुष्ट तथा अवगुणोंसे युक्त क्यों न हो, वह माता-पिता के हृदय को आनन्द देनेवाला ही होता हैं ।।१८।।

एवं च भाषते लोकश्चन्दनं किल शीतलम्।
पुत्रगात्रस्य संस्पर्शश्चन्दनादतिरिच्यते ।।१९।।

अन्वयः– लोकः एवं भाषते (यत्) चन्दनं किल शीतलं (भवति) (किन्तु) पुत्रगात्रस्य संस्पर्शः चन्दनादतिरिच्यते ।।१९।।

व्याख्या– एवमिति । लोकः- जनः, (लोग) **भाषते** = वदति, अर्थात् जनाः वदन्ति (कहते हैं) **चन्दनं** = मलयजं काष्ठविशेषः (चन्दन) **शीतलं** = शान्तिदायकं भवति (शीतल होता है) **पुत्रगात्रस्य** = पुत्रशरीरस्य (पुत्र के शरीर का) **संस्पर्शः** = स्पर्शः, (स्पर्श) **अतिरिच्यते** = अत्यधिक सुखकरो भवति, (अधिक सुखदायक होता है) ॥१९॥

हिन्दी– लोगों के विचार में 'चन्दन' सर्वाधिक शीतल होता है किन्तु कवि के विचार में-पुत्र के शरीर का स्पर्श (मात्र) चन्दन से भी अधिक शीतल एवं शान्तिप्रद होता है ॥१९॥

सौहृदस्य न वाच्छन्ति जनकस्य हितस्य च ।
लोकाः प्रपालकस्याऽपि, यथा पुत्रस्य बन्धनम् ।।२०।।

अन्वयः– लोकाः (तथा) सौहृदस्य, जनकस्य, हितस्य, प्रपालकस्य अपि बन्धनं न वाञ्छन्ति यथा पुत्रस्य बन्धनं वाञ्छन्ति ॥२०॥

व्याख्या– सौहृदस्येति । लोकाः = जनाः सांसारिकजनाः, (संसार के लोग) **सौहृदस्य** = मित्रतायाः (मित्रता का) **जनकस्य** = पितुः (पिता का) **हितस्य** = उपकारिणः (बन्धु-बान्धवादि उपकर्ताओं का) **प्रपालकस्य** = जीविका-प्रदस्यापि-(जीविका देनेवाले पालक का भी) **बन्धनम्** = स्नेहपाशम् (बन्धन) **न** = नैव **वाञ्छन्ति** = कामयन्ते (नहीं चाहते हैं) यथा (जैसा) **यद्वत् पुत्रस्य** = सुतस्य बन्धनं (पुत्र के बन्धन को) **वाञ्छन्ति** = अभिलषन्ति (चाहते हैं) ॥२० ॥

हिन्दी– सांसारिक लोग मित्रता, पिता, हितकारी एवं जीविकादाता के स्नेन-बन्धन का आदर नहीं करते हैं, जितना पुत्रके स्नेह-बन्धन का आदर करते हैं ॥२०॥

अर्थात् पुत्रस्नेह सभी स्नेहों से बढकर होता है । वेद में भी कहा गया है- **''आत्मा वै पुत्रनामासी''** ति । (कौषी.शा.) **पुत्रस्य स्वात्मरूपाऽभिन्नताम्** ॥ पुत्र अपनी आत्मा का ही रूप होने से वह आत्मासे अभिन्न होता है ॥२०॥

अथ सा कदाचिच्छय्यायां पुत्रं शाययित्वा जलकुम्भमादाय,

पतिमुवाच–''ब्राह्मण ! जलार्थमहं तडागे यास्यामि । त्वया पुत्रोऽयं नकुलाद्रक्षणीयः' ।।

अथ तस्यां गतायां, पृष्ठे ब्राह्मणोऽपि शून्यं गृहं मुक्त्वा भिक्षार्थं क्वचिन्निर्गतः । अत्रान्तरे दैववशात् कृष्णसर्पो बिलान्निष्क्रान्तः । नकुलोऽपि तं स्वभाववैरिणं मत्वा, भ्रातू रक्षणार्थं सर्पेण सह युद्ध्वा, सर्पं खण्डशः कृतवान् ।

ततो रुधिराप्लावितवदनः सानन्दं स्वव्यापारप्रकाशनार्थं मातुः संमुखो गतः । माताऽपि तं रुधिरक्लिन्नमुखमालोक्य शङ्कितचित्ता ''नूनमनेन दुरात्मना दारको भक्षितः'' इति विचिन्त्य कोपात्तस्योपरि तं जलकुम्भं चिक्षेप ।

व्याख्या– अथेति । अथ सा = विप्रपत्नी (ब्राह्मणी) **कदाचित्** = एकदा (एक या किसी समय) **शय्यायां** = पर्यङ्के = (चारपाई पर) **पुत्रं** = सुतम् (अपने पुत्र को) **शाययित्वा** = शयनं कारयित्वा (सुलाकर) **जलकुम्भं** = जलपात्रम् (घड़े को) **आदाय** = गृहीत्वा (लेकर) **पतिं** = स्वामिनम्, (अपने पतिको) **उवाच** = अवदत् (बोली) **जलार्थं** = जलानयनार्थम् (जल लेने के लिये) **तडागे** = सरोवरे (तालाब पर) **यास्यामि** = गच्छामि (जाती हूँ) **रक्षणीयः** = त्रातव्यः, पुत्रं रक्ष नकुलस्य भक्षणात् (इस पुत्र का नकुल से रक्षण करें) ।

अथेति । तस्यां = ब्राह्मण्यां (उस ब्राह्मणी के) **गतायां** = सरोवरं प्रति प्रस्थितायां (सरोवर की ओर चले जाने पर) **पृष्ठे** = पश्चात् (बादमें) **ब्राह्मणोऽपि** = विप्रोऽपि (ब्राह्मण भी) **शून्यं** = निर्जनम् (खाली) **गृहं** = भवनं (घरको) **मुक्त्वा** = विहाय (छोडकर) **भिक्षार्थम्** = भिक्षामानेतुम् (भिक्षा के लिये, लाने के लिये) **निर्गतः** = निष्क्रान्तः (निकल पड़ा, चला गया) **अत्रान्तरे** = एतस्मिन्नवसरे, (इसी बीच) **दैवशात्** = दुर्भाग्यवशात् = (दुर्भाग्यवश) **कृष्णसर्पः** = कृष्णवर्णीयः सर्पः (काला सर्प) **बिलात्** = विवरात् (बिल से) **निष्क्रान्तः** = निर्गतः (निकला) **स्वभाववैरिणम्** = सहजशत्रुम् (नैसर्गिक शत्रु) **मत्वा** = परिज्ञाय (समझकर) **रक्षणार्थम्** = पुत्रस्य परिरक्षणार्थम्, (पुत्र-भाई

की रक्षा के लिये) **युद्ध्वा** = युद्धं कृत्त्वा (युद्ध करके) **खण्डशः** = खण्डं खण्डं = (टुकड़े-टुकड़े) **कृतवान्** = अकरोत् (किये)।

तत इति। रुधिराप्लावितवदनः = रक्तार्द्रमुखः (रक्तरंजितमुख वाला) **स्वव्यापारप्रकाशनार्थम्** = स्वकृत्यप्रकाशनार्थं, स्वव्यापारस्य कृष्णसर्पं हत्वा निजभ्रातृ रक्षणकर्मणः (अत्र भ्रातूरक्षणार्थम् 'ढ्रलोपे' (७।३।१११) इत्यनेन संधिः) **प्रकाशनार्थम्** = बोधनार्थम् (अपने भाई की रक्षा के लिये स्वयं किये कृत्य को दिखाने के लिये) **मातुः** = ब्राह्मण्याः (ब्राह्मणी के) **संमुखो गतः** = अभिमुखोऽभवत् (ब्राह्मणी के सम्मुख गया) **रुधिरक्लिन्नमुखम्** = रक्तालिप्तमुखम् (खून से लिप्त मुख को) **आलोक्य** = दृष्ट्वा (देखकर) **शङ्कितचित्ता** = पुत्रवधस्य शङ्कया (पुत्र वध की शंकासे) **नूनम्** = निश्चयेन (निश्चय ही) **अनेन** = नकुलेन (इस नकुलने) **दुरात्मना** = दुष्टेन (दुष्ट ने) **दारकः** = पुत्रः (पुत्र को) **भक्षितः** = खादितः (खा लिया है) **विचिन्त्य** = विचार्य (सोचकर) **कुम्भं** = घटं (घडे को) **चिक्षेप** = पातयामास (गिरा दिया)।

हिन्दी– एक दिन उस ब्राह्मण की पत्नी ने अपने पुत्र को चारपाई पर सुलाकर तथा जल के घड़े को उठाकर, पति से कहा- "ब्राह्मण ! मैं जल लाने के लिये तालाब को जा रही हूँ। तुम नकुल से इस पुत्र की रक्षा करना"।

इसके पश्चात् पत्नी के चले जाने पर, ब्राह्मण भी घर को शून्य छोड़कर भिक्षा मांगने के लिये चला गया। इसी समय दुर्भाग्यवश एक काला सर्प बिल से निकला। नकुल ने उस सर्प को देखकर उसे अपना सहज शत्रु समझकर अपने भाई (पुत्र) की रक्षा करने के लिए उस सर्प के साथ युद्ध करके उसके खण्ड-खण्ड कर दिये।

तत्पश्चात् वह नकुल रक्तरंजित मुख से बडी प्रसन्नता से अपने किये हुए कार्य-पराक्रम-को दिखाने के लिये माँ (ब्राह्मणी) के सामने गया। माँ भी उसके रक्त से भरे मुख को देखकर शंकित हो उठी। "निश्चय ही इस दुष्ट ने मेरे पुत्र को मारकर खा डाला है," यह सोचकर क्रोध से उसके ऊपर जल का भरा घड़ा उसने पटक दिया।

एवं सा नकुलं व्यापाद्य यावत्प्रलपन्ती गृहे आगच्छति, तावत्सुतस्तथैव

सुप्तस्तिष्ठति । समीपे कृष्णसर्पं खण्डशः कृतमवलोक्य पुत्रवधशोकेनात्मशिरो वक्षःस्थलं च ताडितुमारब्धा ।

अत्रान्तरे ब्राह्मणो गृहीतनिर्वापः समायातो यावत्पश्यति, तावत्पुत्रशोकाऽभितप्ता ब्राह्मणी प्रलपति–"भो भो लोभात्मन् ! लोभाऽभिभूतेन त्वया न कृतं मद्वचः । तदनुभव साम्प्रतं पुत्रमृत्युदुः-खवृक्षफलम् ।" अथवा साध्विदमुच्यते–

अतिलोभो न कर्तव्यो लोभं नैव परित्यजेत् ।
अतिलोभाऽभिभूतस्य चक्रं भ्रमति मस्तके ।।२१।।

ब्राह्मण आह–"कथमेतत् ?" सा प्राह–

व्याख्या– एवमिति । एवम् = इत्थम्-अनेन प्रकारेण (इस प्रकार) **सा** = विप्रपत्नी (वह ब्राह्मणी) **नकुलं व्यापाद्य** = पुत्रवत् पालितं नकुलं हत्वा (नकुल को मारकर) **यावत्** = यदा (जब, जैसे ही) **प्रलपन्ती** = विलपन्ती (रोती हुई) **गृहे** = भवनाभ्यन्तरे, (घर के भीतर) **आगच्छति** = पदार्पणं करोति (पैर रखती है) **तावत्** = तदा (तब) **सुतः** = तस्याः ब्राह्मण्याः **पुत्रः** (उस ब्राह्मणी का पुत्र) **तथैव** = तेनैव प्रकारेण यथा सः पर्यंके स्थापितः (उसी प्रकार जैसा कि उसने उसे चारपाई पर सुलाया था) **तिष्ठति** = आस्ते, **समीपे** = पुत्रसन्निधौ, (पुत्र के समीप) **कृष्णसर्पं** = कृष्णवर्णीयसर्पं = (कालेसर्प को) **खण्डशः** = खण्डं खण्डं कृतम्, (टुकडों टुकडों में) **अवलोक्य** = दृष्ट्वा (देखकर) **पुत्रवधशो- केन** = पुत्रतुल्यस्य नकुलस्य यो वधो हत्या तच्छोकेन, (पुत्रवत् नकुल की हत्यासे उत्पन्न शोकसे) **आत्मशिरः** = स्वमस्तकम् (अपने मस्तक को) **वक्षःस्थलम्** = उरःप्रदेशं च (छाती को) **ताडितुमारब्धा** = हन्तुमारब्धा (मारना-पीटना प्रारम्भ कर दिया) ।

अत्रेति । अत्रान्तरे = एतस्मिन्नेव काले, (इसी समय-इसी बीच) **ब्राह्मणः** = विप्रः (ब्राह्मण) **गृहीतनिर्वापः** = **गृहीतः** प्राप्तो निर्वापो दानं येन सः गृहीतभिक्षः, भिक्षादानं प्राप्य (भिक्षा प्राप्त करके) **समायातः** = समागतः (आया) **पुत्रशोकाभितप्ता** = पुत्रमरणशोकसन्तप्तः = (पुत्र की मृत्यु से संतप्त) **प्रलपति** = विलपति (विलाप करने लगी) **लोभाभिभूतेन** = लोभग्रस्तेन (लोभसे ग्रस्त होकर) **मद्वचः** = मद्वचनं = (मेरा कहना) **न कृतम्** (नहीं किया)

अनुभव = भुङ्क्ष्व, **सांप्रतम्** = इदानीम् (अब) **पुत्रमृत्युदुःखवृक्षफलम्** = पुत्रवधशोकवृक्षस्य फलम् = (पुत्रमृत्यु से उत्पन्न शोकरूपी वृक्ष का फल) **साधु** = सुष्ठु (उचित) **इदमुच्यते** = इदं कथ्यते, **केनापि कथितम्** (किसी ने ठीक ही कहा है)-

अन्वयः- अतिलोभः, न कर्तव्यः, लोभं नैव परित्यजेत्, अतिलोभाभिभूतस्य (पुरुषस्य) मस्तके चक्रं भ्रमति ॥२२॥

व्याख्या– अतिलोभ इति । अतिलोभः = महान् लोभः लिप्सा न कर्त्तव्यः (अत्यधिक लोभ नहीं करना चाहिए) **लोभं नैव परित्यजेत्** = सर्वथाऽपि लोभो न त्याज्यः (किन्तु लोभ का बिलकूल त्याग भी नहीं करना चाहिए, क्योंकि परिवार का व्यवहार नहीं चल सकेगा)। **अतिलोभाभिभूतस्य** = अतिमात्रं लोभेन आक्रान्तस्य जनस्य, **मस्तके** = ललाटे (मस्तक पर) **चक्रं** = विपद्रूपं चक्रम् (विपत्तिरूपी चक्र) **भ्रमति** = परिवेषयति । अत्यधिकः लोभः परिणामे कष्टदायक एवेत्यर्थः ॥२१॥

हिन्दी– इस प्रकार वह विप्र-पत्नी उस (पुत्रवत् पाले हुए) नेवले को मारकर रोती हुई जब घर के भीतर प्रवष्टि हुई तो उसने अपने पुत्र को उसी प्रकार चारपाई पर सोते हुए देखा, जैसा उसने उसे सुलाया था । तत्पश्चात् चारपाई के निकट खण्ड-खण्ड किये हुए काले सर्प को देख कर नेवले के वध के दुःख से अपने मस्तक एवं छाती को पीटने लगी ।

इसी बीच वह ब्राह्मण भी भिक्षा प्राप्तकर जब आया तो उसने देखा कि नेवले के वध से दुःखी ब्राह्मणी रो रही है । ब्राह्मणी ने कहा 'लोभात्मन् ! तुमने लोभ के वश में होकर मेरा कथन नहीं माना । अतः अब पुत्र के मृत्यु से उत्पन्न दुःखरूपी वृक्ष के फल को भोगो' अथवा किसी ने यह उचित ही कहा है-

मनुष्य को अत्यधिक लोभ नहीं करना चाहिए, किन्तु उसका सर्वथा त्याग भी नहीं करना चाहिए । जो अधिक लोभ करते हैं, उनके मस्तक पर विपत्ति का चक्र घूमने लगता है ॥२१॥

ब्राह्मण ने कहा– 'यह कैसे ? तब ब्राह्मणी ने कहा-

—

(३) लोभाविष्ट-चक्रधर-कथा

कस्मिंश्चिदधिष्ठाने चत्वारो ब्राह्मणपुत्राः परस्परं मित्रतां गता वसन्ति स्म। ते चाऽपि दारिद्र्योपहताः परस्परं मन्त्रं चक्रुः—अहो; धिगियं दरिद्रता। उक्तं च-

व्याख्या— कस्मिंश्चिदिति। अधिष्ठाने = नगरे (नगर में) **ब्राह्मण-पुत्राः** = विप्र-कुमाराः (ब्राह्मणपुत्र) **परस्परं** = मिथः अन्योन्यं वा (आपस में) **मित्रतां** = सौहृदं, (मित्रता) **गताः** = प्राप्ताः (हुए) **वसन्तिस्म** = अवसन् (रहते थे) **ते** = चत्वारो ब्राह्मणपुत्राः (वे चारों ब्राह्मण कुमार) **दारिद्र्योपहताः** = दरिद्रतया-निर्धनावस्थया अत्यन्तं दुःखिताः (वे निर्धनता से नितान्त पीडित थे) **मन्त्रं चक्रुः** = अमन्त्रयन्-अविचारयन् (उन्होंने विचार किया) **अहो ! धिगियं दरिद्रता** इदं दारिद्र्यं न्यक्कारयोग्यमिति भावः। (इस दरिद्रता को धिक्कार है) **उक्तं च** = क्योंकि कहा भी है-

हिन्दीः— किसी स्थान में चार ब्राह्मण पुत्र परस्पर मित्रभाव से निवास करते थे। वे दरिद्रता से दुःखी होकर परस्पर विचार करने लगे-'ओह ! इस दरिद्रता को धिक्कार है—कहा भी है—

वरं वनं व्याघ्रगजादिसेवितं, जनेन हीनं बहुकण्टकावृतम्।
तृणानि शय्या परिधानवल्कलं, न बन्धुमध्ये धनहीनजीवितम्।।२२।।

अन्वयः— व्याघ्रगजादिसेवितं, बहुकण्टकावृतं जनेन हीनं वनं वरं, तृणानि शय्या, परिधानवल्कलं (वरं), किन्तु बन्धुमध्ये धनहीनजीवितं वरं न ॥२२॥

व्याख्या— वरमिति। व्याघ्रगजादिसेवितं = व्याघ्राश्च गजाश्च इति व्याघ्रगजाः। ते आदयः येषां ते इति व्याघ्रगजादयः, तैः सेवितम्, शार्दूल-हस्त्यादिपशुभिःआश्रितं (व्याघ्रगजादि पशुओं से युक्त या आश्रित) **बहुकण्टकावृतम्** = बहुभिर्नानाविधैः कण्टकैः आवृतम् कीर्णम् वनम् (अनेक प्रकार के काटों से युक्त) **जनेन हीनम्** = मनुष्यविवर्जितम्, निर्जनम् (जनहीन)

वनम् = अरण्यम्, **वरम्** = श्रेष्ठम्, मनाक् प्रियमित्यर्थः (अच्छा है) **तृणानि शय्या** = तृणनिर्मितं शयनीयम्, तृणानि = घासा एव शय्या = खट्वा (घास की शय्या पर सोना) **परिधानवल्कलम्** = परिधानार्थं वृक्षत्वगपि (वृक्ष की छाल को धारण करना) **वरं** = श्रेष्ठम् (उत्तम है) किन्तु **बन्धुमध्ये** = बन्धूनां स्वज्ञातीनां मध्ये (बन्धु-बान्धवों के बीच में) **धनहीनजीवनम्** = धनेन वित्तेन हीनं रहितं जीवितं जीवनं **न** = नैव वरम्। धनिनो बन्धूनां मध्ये निर्धनस्य जीवनमत्यन्तं कष्टदायकं भवतीति भावः ॥२२॥

हिन्दी– सिंह, हाथी आदि वन्य पशुओं से भरे हुए बहुकण्टकाकीर्ण निर्जन वन में निवास करना उत्तम है, तृणों की शय्या सुखकर है तथा वृक्षों की छाल आदि से शरीर को ढकलेना भी अच्छा है, किन्तु अपने (धनी) बंधुओं के बीच में निर्धन होकर जीवित रहना कदापि ठीक नहीं है ॥२२॥

तथा च–

स्वामी द्वेष्टि सुसेवितोऽपि, सहसा प्रोज्झन्ति सद्बान्धवाः;
राजन्ते न गुणास्त्यजन्ति तनुजाः, स्फारीभवन्त्यापदः।
भार्या साधु सुवंशजाऽपि भजते, नो यान्ति मित्राणि च
न्यायारोपितविक्रमाण्यपि नृणां, येषां न हि स्याद्धनम् ॥२३॥

अन्वयः– हि येषां नृणां धनं न स्यात्, (तैः) सुसेवितः अपि स्वामी द्वेष्टि, सद्बान्धवाः सहसा प्रोज्झन्ति, गुणाः न राजन्ते, तनुजाः त्यजन्ति, आपदःस्फारीभवन्ति, सुवंशजा अपि भार्या साधु नो भजते, न्यायारोपितविक्रमाणि मित्राणि अपि यान्ति ॥२३॥

व्याख्या– स्वामीति। हि = निश्चयेन, **येषां नृणां** = मनुष्याणां (जिनके पास) **धनं** = वित्तम् (सम्पत्ति) न स्यात्, **सुसेवितः** = सम्यक् रीत्या, सेवाधर्मेण कृतोपासनोऽपि, (भली प्रकार से सेवित) **स्वामी** = प्रभुः (मालिक) **द्वेष्टि** = वैरायते, द्वेषं करोति (द्वेष करता है) **सद्बान्धवाः** = सन्तोऽपि बान्धवाः ज्ञातयः (रिश्तेदार) **सहसा** = आकस्मिकं, कारणं विनैवेत्यर्थः (एकाएक, विना किसी कारण के) **प्रोज्झन्ति** = परित्यजन्ति (छोड़ देते हैं) **गुणाः** = दयादाक्षिण्यादया-लोकोपकारकाः

गुणाः (श्लाघनीय गुण भी) **न राजन्ते** = नैव प्रकाशन्ते-न शोभन्ते (शोभा नहीं देते) **तनुजाः** = पुत्राः (पुत्र) **त्यजन्ति** = मुञ्चन्ति, **आपदः** = विपत्तयः (आपत्तियाँ) **स्फारीभवन्ति** = वर्धन्ते, (बढती ही जाती हैं) **सुवंशजा** = सुकुलोत्पन्ना (सद्वंश में उत्पन्न हुई) **भार्या** = स्त्री अपि (पत्नी भी) **साधु** = सादरं = (आदरपूर्वक) **नो भजते** = सेवां नैव करोति, (सेवा नहीं करती है) **न्यायारोपितविक्रमाणि** = न्यायपराणि (न्याय प्रिय) **मित्राणि** = सुहृदोऽपि = (मित्र भी) **यान्ति** = परित्यज्य दूरीभवन्तीत्यर्थः (साथ छोडकर चले जाते हैं) सर्वासां विपत्तीनां निर्धनता मूलमन्त्र इतिभावः, **शार्दूलविक्रीडितं** वृत्तम् ॥२३॥

हिन्दी– अच्छी तरह से (सेवाभावपूर्वक) सेवा करते रहने पर भी निर्धन सेवक के प्रति उसका स्वामी उससे निरंतर द्वेष करता है, अच्छे, रिश्तेदार भी-ज्ञातिजन-निर्धन व्यक्ति का साथ छोड़ देते हैं, लोकोपकारक दयादि उसके गुण शोभा नहीं देते हैं, पुत्र भी निर्धन व्यक्ति को छोड़ देते हैं, आपत्तियाँ निरन्तर बढती ही जाती हैं, अच्छे कुलमें उत्पन्न उसकी पत्नी भी उसका आदरभाव नहीं करती, और न्यायपरायण मित्र भी समय आने पर उसका साथ छोड देते हैं। (तात्पर्य यह है कि निर्धनता ही सभी विपत्तियों का मूल कारण है।) ॥२३॥

शूरः सुरूपः सुभगश्च वाग्मी, शस्त्राणि शास्त्राणि विदांकरोतु ।
अर्थं विना नैव यशश्च मानं प्राप्नोति मर्त्योऽत्र मनुष्यलोके ।।२४।।

अन्वयः– शूरः सुरूपः सुभगः वाग्मी शस्त्राणि शास्त्राणि विदांकरोतु नाम (किन्तु) अत्र मनुष्यलोके मर्त्यः अर्थं विना यशः मानं च नैव आप्नोति ॥२४॥

व्याख्या– शूर इति । शूरः = पराक्रमी, शौर्योपेतो बलिष्ठ इतियावत्, **सुरूपः** = सुन्दरा मुखाकृतिः, **सुभगः** = सकललोके प्रियोऽपि (समाज-लोक में सब का प्रिय होने पर भी) **वाग्मी** = प्रशस्तवाक्, व्याख्यानकुशलः (बोलने में कुशल) **शस्त्राणि** = धनुरादीनि आयुधानि (अस्त्र विद्या का जानकार) **शास्त्राणि** = वेदादीनि (वेदादि को) **विदाङ्करोतु** = जानातु (जाने) **तथापि** (फिर भी) **अर्थं विना** = धनमन्तरेण (विना धनके) **यशः** = कीर्तिम् (कीर्ति को) **मानश्च** = सत्कारं च (सत्कार को) **न प्राप्नोति** = नैव लभते (प्राप्त नहीं करता

है) लोके धनवानेव यशोमानभागी भवतीतिसारः । **इन्द्रवज्रा** वृत्तम् ॥२४॥

हिन्दी– वीर, सुन्दर, सौभाग्यशाली, प्रवक्ता, शस्त्रों एवं शास्त्रों को जाननेवाला तथा वाग्चतुर मनुष्य भी इस लोक में दरिद्र होने पर कीर्ति-यश, एवं सम्मान को नहीं प्राप्त कर सकता ॥२४॥

तानीन्द्रियाण्यविकलानि, तदेव नाम,
सा बुद्धिरप्रतिहिता वचनं तदेव ।
अर्थोष्मणा विरहितः पुरुषः स एव
बाह्यःक्षणेन भवतीति विचित्रमेतत् ॥२५॥

अन्वयः– तानि एव अविकलानि इन्द्रियाणि, तेदव नाम, सा एव अप्रतिहता बुद्धिः, तदेव वचनम् (तथापि) अर्थोष्मणा विरहितः स एव पुरुषः क्षणेन बाह्यः भवति, इति एतद् विचित्रम् ॥२५॥

व्याख्या– तानीन्द्रियाणीति । तानि = ऐश्वर्यसमये यथा भवन्ति तादृशि एव (ऐश्वर्य काल में जैसी इन्द्रियाँ) **अविकलानि** = विकारमप्राप्तानि (विकार को न प्राप्त हुईं) **तदेव** = सर्वमिदं पूर्ववदेव (सभी पूर्व के समान) **नाम** = अभिधानमपि देवदत्तादिकं तदेव, (नाम भी) **सा एव अप्रतिहता** = अनवरुद्धा, अविकृता बुद्धिः = (कहीं न रुकने वाली बुद्धि) **वचनम्** = वाक्यमपि (वही वचन) **तथापि अर्थोष्मणा** = वित्तजन्यप्रतापेन विरहितः धनोष्णया रहितः (अर्थ की गर्मी से रहित) **स एव पुरुषः क्षणेन** = अल्पेनापि कालेन (थोडे ही समय में) **बाह्यः** = तुच्छः भवति (तुच्छ, उपेक्षणीय हो जाता है) **इति एतत् विचित्रम्** = अद्भुतम्, आश्चर्यम् (यही आश्चर्य है ।) सकलगुणसम्पन्नोऽपि पुरुषः धनहीनतया लोके तुच्छः भवतीति सारः, **वसन्ततिलकावृत्तम्** ॥२५॥

हिन्दी– कवि संसार के वैचित्र्य पर आश्चर्य करते हुए कहता है कि-मनुष्य की वही अविकल-स्वस्थ-इन्द्रियाँ होती हैं, उसका वही नाम होता है, उसकी वही अप्रतिहत-सर्वतोमुखी बुद्धि होती है, उसका वचन भी वही होता है, किन्तु (समय परिवर्तित होने पर) धन की गर्मी से रहित होने पर (अर्थात् उसके निर्धन हो जाने पर) वही पुरुष क्षणमात्र में अन्यका अन्य-कुछ का कुछ-हो जाता है । यही इस संसार की विचित्रता है ॥२५॥

"तद्गच्छामः कुत्रचिदर्थाय।" इति संमन्त्र्य स्वदेशं पुरं च स्वसुहृत्सहितं गृहं च परित्यज्य, प्रस्थिताः। अथवा साध्विदमुच्यते–

व्याख्या– तदिति। तद् = तस्मात् कारणात् (अतः) **गच्छामः** = बहिः, अस्मात् स्थानात् अन्यत्र, व्रजामः **कुत्रचित्** = अन्यत्र (इस स्थान से कहीं और जाते हैं) **अर्थाय** = धनोपार्जनार्थम् (धन कमाने के लिए) **इति** = अनेन प्रकारेण (इस प्रकार) **सम्मन्त्र्य** = विचारं कृत्वा, (विचार करके) **स्वदेशं** = निजनिवासपुरं (अपने प्रदेश को) **स्वसुहृत्सहितं** = मित्रैः सह (मित्रों के साथ) **परित्यज्य** = विहाय (छोडकर) **प्रस्थिताः** = निष्क्रान्ताः (चले गये) अथवा **साधु इदम् उच्यते** = सुष्ठु इदमुक्तम्-अथवा यह ठीक ही कहा है–

हिन्दी– अतः हमें धन कमाने के लिये कहीं जाना चाहिए, ऐसा विचार कर वे अपना देश, पुर और मित्रादि सहित अपने प्रदेश-घर-को छोड़कर चल दिये। अथवा यह ठीक ही कहा है–

सत्यं परित्यजति मुञ्चति बन्धुवर्गं,
शीघ्रं विहाय जननीमपि जन्मभूमिम्।
सन्त्यज्य, गच्छति विदेशमभीष्टलोकं,
चिन्ताकुलीकृतमतिः पुरुषोऽत्र लोके ।।२६।।

अन्वयः– अत्र लोके चिन्ताकुलीकृतमतिः पुरुषः सत्यं परित्यजति, बन्धुवर्गं मुञ्चति, जननीं जन्मभूमिं च अपि विहाय अभीष्टलोकं सन्त्यज्य शीघ्रं विदेशं गच्छति ।।२६।।

व्याख्या– सत्यमिति। अत्र लोके = इह संसारे (इस संसार में) **चिन्ताकुलीकृतमतिः** = चिन्तया धनवासनया, अनाकुला आकुला कृता इति आकुलीकृता, विह्वलीभूता मतिर्बुद्धिर्यस्य स तादृशः, चिन्ताव्याकुलचित्तः (चिन्ता से व्याकुल होकर) **पुरुषः** = नरः (मनुष्य) **सत्यं परित्यजति** = सत्यं त्यजति (सत्य का त्याग कर देता है) सत्यव्यवहारं जहाति, **बन्धुवर्गम्** = परिवारम्, कुटुम्बवर्गम् (कुलपरिवार को) **मुञ्चति** = पृथग्भवति, **जननीं** = मातरं (माँ को) **जन्मभूमिम्** = स्वदेशं, जन्मभुवम् (अपनी, जन्मभूमि को) **विहाय** = परित्यज्य (छोड़कर) **अभीष्टलोकम्** = स्वप्रियवर्गं च सन्त्यज्य, (अपने इष्टजनों को

छोड़कर) **शीघ्रं** = त्वरितम्, **विदेशम्** = परदेशं गच्छति (पर देश को चला जाता है) **वसन्ततिलकावृत्तम्** ॥२६॥

हिन्दी– कवि कहता है कि–इस संसार में विविध चिन्ताओं से ग्रस्त होकर मनुष्य सत्य का परित्याग कर देता है। वह अपने ज्ञातिजनों को छोड देता है, जननी और जन्मभूमि का भी परित्याग कर देता है और वह अपने प्रियजनों-स्थान-को छोडकर परदेश चला जाता है ॥२६॥

एवं क्रमेण गच्छन्तोऽवन्तीं प्राप्ताः। तत्र क्षिप्राजले कृतस्नानाः महाकालं प्रणम्य यावन्निर्गच्छन्ति, तावद् भैरवानन्दो नाम योगी संमुखो बभूव। ततस्तं ब्राह्मणोचितविधिना संभाव्य, तेनैव सह तस्य मठं जग्मुः। अथ तेन पृष्टाः– "कुतो भवन्तः समायाताः ? क्व यास्यथ ? किं प्रयोजनम् ?"

ततस्तैरभिहितम्–"वयं सिद्धियात्रिकाः, तत्र यास्यामो यत्र धनाप्तिर्मृत्युर्वा भविष्यतीत्येष निश्चयः।" उक्तञ्च–

व्याख्या– एवमिति। एवम् = इत्थं, (इस प्रकार) **क्रमेण** = क्रमशः, (क्रमसे) **गच्छन्तः** = परिभ्रमन्तः (भ्रमण करते हुए) **अवन्तीम्** = उज्जयिनीं-तदाख्यां नगरीम्- (उज्जयिनी नाम की नगरी में) **तत्र** = अवन्त्याम् (अवन्ती में) **शिप्राजले** = शिप्रानामकनद्या जले, (शिप्रा नदी में) **कृतस्नानाः** = स्नानं कृत्वा = (स्नान करके) **महाकालं** = महाकालाभिधियं शिवमूर्तिम् (भगवान् महाकाल को) **प्रणम्य** = नमस्कारं कृत्वा (नमस्कार करके) **यावत्** = यदैव (जैसे ही) **निर्गच्छन्ति** = निष्क्रामन्ति (बाहर निकलते हैं) **तावद्** = तदैव (उसी समय) **भैरवानन्दो नाम** = भैरवानन्दनामकः (भैरवानन्दनामका) **योगी** = गोरक्ष- मार्गानुयायी कश्चित् साधकः (गोरक्षमतानुयायी कोई साधक) **संमुखो** = प्रत्यक्षम् बभूव (सामने आया) **ततः तं** = दर्शनानन्तरं तं साधकं (तब उस साधक को) **ब्राह्मणोचितविधिना** = ब्राह्मणयोग्यशास्त्रोक्तविधानेन (ब्राह्मणोचित शास्त्रोक्त विधि से) **संभाव्य** = सम्पूज्य (उसका प्रणामादि से अभिनन्दन करके) **तेन** = भैरवानन्देन (उस साधक के साथ) **ते** = ब्राह्मणपुत्राः (वे ब्राह्मणपुत्र) **तस्य मठं** = आश्रमम् (उसके आश्रममें)।

तत इति । सिद्धियात्रिकाः = सिद्धये कार्यसाधनाय यात्रा सिद्धियात्रा सा प्रयोजनमेषां ते सिद्धियात्रिकाः । "प्रयोजनम्" (५।१।१०९) इति सूत्रेण ठक् प्रत्ययः । **धनाप्तिः** = धनप्राप्तिः (धन की प्राप्ति) । **मृत्युः** = मरणं (मृत्यु) **निश्चयः**निर्णयः (यही निश्चय किया है ।)

हिन्दी– इस प्रकार क्रमशः परिभ्रमण करते हुए वे चारों ब्राह्मण-कुमार उज्जयिनी पहुँचे । वहाँ शिप्रा नदी के जल मे स्नान कर एवं भगवान् महाकाल शिव को प्रणाम करके वे जैसे ही मन्दिर से बाहर निकल ही रहे थे, उन्हे भैरवानन्द नाम के एक योगी के दर्शन हुए । ब्राह्मणोचित विधि से भैरवानन्द को प्रणाम करने के पश्चात् वे चारों उन्हीं के साथ उनके आश्रम में गये । वहाँ पहुँचकर भैरवानन्द ने उनसे पूछा-"आप कहाँ से आ रहे हैं ? कहाँ जायेंगे ? आपका क्या प्रयोजन है ?

तत्पश्चात् उन कुमारों ने कहा-"हम धनोपार्जन के लिए निकले हुए हैं, वहीं जायेंगे जहाँ पहुँचकर या तो धन प्राप्त हो अथवा मृत्यु । यही हमारी प्रतिज्ञा है । कहा भी है–

दुष्प्राप्याणि बहूनि च लभ्यन्ते वाञ्छितानि द्रविणानि ।
अवसरतुलिताभिरलं तनुभिः साहसिकपुरुषाणाम् ।।२७।।

अन्वयः– साहसिकपुरुषाणाम् अलम् अवसरतुलिताभिः तनुभिः दुष्प्राप्याणि बहूनि वाञ्छितानि द्रविणानि च लभ्यन्ते ।।२७।।

व्याख्या– दुष्प्राप्याणीति । साहसिकपुरुषाणाम् = साहसयुक्तानां पुरुषाणाम् (साहसी पुरुषों को) अलम् = समर्थः **अवसरतुलिताभिः** = अवसरे = समये अर्थात् साहसोपयोगिनिकाले, **तुलिताभिः** = समीकृताभिः, प्राप्तावसरे परिश्रमं संपाद्य कार्यं कुर्वद्भिः, (समय आने पर तुला पर चढा-देने वाले,) **तनुभिः** = शरीरैः (शरीर से) **दुष्प्राप्याणि** = दुर्लभानि (कष्ट से प्राप्त करने योग्य दुर्लभ वस्तुएँ भी) **बहूनि** = प्रचुराणि (बहुत) **वाञ्छितानि** = मनोभिलषितानि (चाहे हुए) **द्रविणानि** = धनानि (धनको) **लभ्यन्ते** = प्राप्यन्ते (प्राप्त करते हैं)

शरीरोद्योगवतां व्यवसायिनाञ्च कृते इष्टधनप्राप्तिरसाध्या न भवतीति भाव: आर्यावृत्तम् ॥२७॥

हिन्दी– कवि कहता है कि–साहसीपुरुष समय आने पर अपने समर्थ शरीर की बाजी लगाकर उससे प्रभूत दुर्लभ वस्तुएँ तथा मनोभिलषित धन प्राप्त कर लेते हैं ॥२७॥

तथा च–

पतति कदाचिन्नभसः खाते, पातालतोऽपि जलमेति ।
दैवमचिन्त्यं बलवद्, बलवान्ननु पुरुषकारोऽपि ।।२८।।

अन्वयः– कदाचित् खाते नभसः जलं पतति, कदाचिच्च पातालतः अपि खाते जलम् एति, अचिन्त्यं दैवं बलवत् ननु पुरुषकारः अपि बलवान् (किम्) ॥२८॥

व्याख्या– पततीति । कदाचित् = कस्मिंश्चित् समये (कभी) **खाते** = जलाशयादौ (सरोवरादि में) **नभसः** = आकाशात् (आकाश से) **जलं** = सलिलं (जल) **पतति** = आगच्छति, (प्राप्त होता है) **कदाचित् च पातालतः** = पाताल से, (भूमि के गर्भ से) **अपि** = (भी) खाते जलम् **एति** = आगच्छति निःसरति (आ जाता है) अर्थात् उत्खननादिपुरुषकारेणेत्यर्थः, **अचिन्त्यम्** = चिन्तयितुमशक्यं, (सोचा नहीं जा सकता) **दैवं** = भाग्यम्, (भाग्य) **बलवत्** = प्रबलम् (समर्थ, शक्तिशाली), **पुरुषकारः अपि** = पुरुषार्थोऽपि (उद्योग भी) बलवान् **किं** = नूनं प्रबलम् ॥२९॥

हिन्दी– कवि कहता है कि- कभी दैववश पानी आकाश से जलाशयों में गिरता है, और कभी उद्योग-परिश्रमकर भूमि को खोदने से भूगर्भ से जलाशय में जल प्राप्त होता है । अतः ऐसा प्रतीत होता है कि यदि कहीं अचिन्त्य दैव बलवान् होता है तो कभी पुरुषार्थ भी दैवसे कम प्रबल नहीं कहा जा सकता ॥२८॥

अभिमतसिद्धिरशेषा भवति हि पुरुषस्य पुरुषकारेण ।
दैवमिति यदपि कथयसि पुरुषगुणः सोऽप्यदृष्टाख्यः ।।२९।।

अन्वयः– पुरुषकारेण पुरुषस्य अशेषा अभिमतसिद्धिः भवति, हि यदपि दैवमिति कथयसि, स अपि अदृष्टाख्यः पुरुषगुणः एव ॥२९॥

व्याख्या– अभिमतेति । पुरुषकारेण = उद्योगेन हि (उद्योग-पुरुषार्थ से) **पुरुषस्य** = साधकस्य जनस्य (प्रयत्नशील मनुष्य के) **अशेषा** = सकला अपि (सम्पूर्ण) **अभिमतसिद्धिः** = अभिमतस्येष्टस्य वस्तुनः सिद्धिः प्राप्तिरिष्टलाभ इत्यर्थः = (अभिलषित वस्तु की उपलब्धि) **दैवं** = भाग्यम् (भाग्य) **अदृष्टाख्यः** = अदृष्टनामा (अदृष्ट नामक) **पुरुषगुणः** = कर्तुरेव जीवात्मनः (मनुष्य का) **गुणः** = धर्मः । पूर्वजन्मनि कृतमेव शुभमशुभं वा कर्म "दैव" पदेनोच्यते । पुरुषार्थः कदापि न त्याज्य इति तु सारः ॥ 'आर्या वृत्तम्' ॥२९॥

हिन्दी– यहाँ पुरुषार्थ का महत्त्व बताते हुए कवि कहता है कि-पुरुषार्थ से ही मनुष्य की सम्पूर्ण अभिलाषा सिद्ध-पूर्ण होती हैं । (हे मनुष्य !) तुम भाग्य या दैव जिसे कहते हो वह भी अदृष्ट नामक पदार्थ पुरुष का (मनुष्य का) ही एक विशेष गुण है । तात्पर्य यह है कि पुरुषार्थ-प्रयत्न से अतिरिक्त दैव नामक वस्तु भी पुरुष के कर्म का ही निर्मित परिणाम है जो प्रयत्न या उद्योग से किसी प्रकार भिन्न नहीं है ।

द्वयमतुलं गुरुलोकात्तृणमिव तुलयन्ति साधु साहसिकाः ।
प्राणानद्भुतमेतच्चरितं चरितं ह्युदाराणाम् ।।३०।।

अन्वयः– साहिसकाः प्राणान् तृणमिव साधु तुलयन्ति, एतद् अद्भुतं चरितं हि उदाराणाम् चरितम् च द्वयं लोकात् गुरु अतुलं च भवति ॥३०॥

व्याख्या– द्वयमिति । साहसिकाः = उद्यमिनः, विशेषसाहससम्पन्नाः पुरुषार्थिनः, (साहसीपुरुष) **प्राणान्** = निजजीवितम् = (अपने प्राणों को) **तृणमिव** = घासमिव (तृण-घास के समान) **साधु** = समीचीनम् (निर्भर होकर, उचित रूप से) **तुलयन्ति** = समीकुर्वन्ति, कार्यतुलामारोपयन्ति (कार्य रूपी तुला पर चढ़ा देते हैं) । **अद्भुतम्** = अपूर्वम्, आश्चर्यजनकम् (आश्चर्यजनक, अपूर्व) **चरितम्** = आचरणम् (आचरण, चरित), **उदाराणाम्** = उदारपुरुषाणां दानशीलानामित्यर्थः (उदार पुरुषों का) **द्वयम्** = **एतद्द्वयमपि** = उभयमपि,

लोकात् = सर्वत: (समस्त वस्तुओं से अधिक) **गुरु** = महत् (श्रेष्ठ) **अतुलम्** = असाधारणम् भवति (असाधारण होता है) अस्मिन् श्लोके 'भयमतुलम्'-इति पाठस्वीकारे, **गुरुवर्गात्** = पूजनीयात् पित्रादे: भयम्-भीतिम् (पूजनीय गुरु वर्ग से) **अतुलं भयम्** = महदपि भयं (विशेष भयको भी) **तृणमिव** = नगण्यमिव मत्वा प्राणान् तुलयन्ति। सङ्कटे समुपस्थिते नन्निवारणाय सन्मार्गे प्रवृत्ता: साधव: उद्यमिन: प्राणादिकं सर्वं तुच्छं मन्वत इति भाव: ॥३०॥

हिन्दी– साहसी पुरुष सङ्कट प्राप्त होने पर अपने जीवन को तृण के समान तुच्छ-नगण्य समझकर तौलते हैं। साहसी पुरुषों का यह असाधारण चरित और उदार व्यक्तियों का जीवन चरित, दोनों ही इस संसार की इतर वस्तुओं से श्रेष्ठ एवं अनुपम-अतुलनीय होते हैं ॥३०॥

क्लेशस्याऽङ्गमदत्वा सुखमेव सुखानि नेह लभ्यन्ते।
मधुभिन्मथनायस्तैराश्लिष्यति बाहुभिर्लक्ष्मीम् ॥३१॥

अन्वय:– इह, क्लेशस्य अङ्गम् अदत्वा सुखमेव सुखानि च लभ्यन्ते, (यतो हि) मधुभित् मथनायस्तै: बाहुभि: लक्ष्मीम् आश्लिष्यति ॥३१॥

व्याख्या– क्लेशस्येति। इह = लोके, संसारे, (इस संसार में) **अङ्गम्** = हस्तपादादिकं (हाथ-पैर,-शरीर को) **क्लेशस्य** = कष्टस्य (कष्ट) **अदत्त्वा** = हस्त-पादादिकमङ्गं कर्मण्यव्यापार्येत्यर्थ: (कर्म में अपने शरीर को बिना दिये) **सुखमेव** = अनायासमेव, आयासं विना (विना कष्ट के अर्थात् अनायास ही) **न लभ्यन्ते** = नैव प्राप्यन्ते (नहीं प्राप्त किये जाते हैं) **मधुभित्** = मधुसूदनो हरि: (मधु नामक असुर को मारने वाले हरि-विष्णु) **मथनायस्तै:** = मथनश्रान्तै:-मन्दराचलद्वारा क्षीरसमुद्रमथनेन आयस्तै: आयासं प्राप्तै:, (समुद्र को मथने से श्रान्त) **बाहुभि:** = हस्तै:, भुजै:, (हाथों-भुजाओं से) **लक्ष्मीम्** = श्रियम् **आश्लिष्यति** = आलिङ्गति (आलिङ्गन करते हैं) यत्र त्रैलोक्यनाथो भगवान् विष्णुरपि हस्तपादादिसंचालनात्मकश्रममन्तरेण लक्ष्मीप्राप्तिसुखं नाशिश्रियत्, तत्रेतरेषां लोकानान्तु कैव कथा। सर्वथापि-"नहि सुखं दु;खैर्विना भाव्यते"- इतिभाव:। 'आर्यावृत्तम्' ॥३१॥

हिन्दी– इस संसार में शरीर को विना कष्ट दिये अनायास ही सुख प्राप्त नहीं होता है। मधुदैत्य को मारने वाले भगवान् विष्णु भी समुद्र-मन्थन-कार्य से श्रान्त (थकी) हुई भुजाओं से ही लक्ष्मी का आलिङ्गन करते हैं ॥३१॥

तस्य कथं न चला स्यात् पत्नी विष्णोर्नृसिंहकस्याऽपि ।
मासांश्चतुरो निद्रां यः सेवति जलगतः सततम् ।।३२।।

अन्वयः– यः जलगतः चतुरः मासान् सततं निद्रां सेवति, तस्य विष्णोः नृसिंहकस्य अपि पत्नी चला कथं न स्यात् ? ॥३२॥

व्याख्या– तस्येति । यः = यो विष्णुर्भगवान् (जो विष्णु) **जलगतः** = जलस्थितः सन् अर्थात् क्षीरसमुद्रशायी भूत्वा (क्षीरसागर में) **चतुरो मासान्** = आषाढादीन् (अभिव्याप्य) मासचतुष्टयं यावत् (चार महिनों तक) **सततम्** = निरन्तरम् (निरन्तर) **निद्रां सेवति** = शेते (सोते हैं) **तस्य नृसिंहकस्यापि** = पुरुषसिंहस्य (पुरुषश्रेष्ठ) **पत्नी** = लक्ष्मीः, भार्या, (पत्नी) **कथं चला** = चपला (चंचल) **न स्यात्** = कथं न भवेदिति, (क्यों न हो) लक्ष्म्या द्वितीयं नाम "चपले" ति। विष्णोः शयनम्-"शेते विष्णुः सदाषाढे कार्तिके च विबुध्यते" इति शास्त्रोक्तम्। उद्योगविहीनस्य सम्पत् स्थिरतां न भजत इत्यत्र तात्पर्यम्। वृत्तमार्या ॥३२॥

हिन्दी– जो निरंतर चार महिनों तक क्षीरसागर में शयन करते हैं, उस नर श्रेष्ठ विष्णु की पत्नी लक्ष्मी चञ्चल क्यों न हो ? अर्थात् आलस्यवश (या उद्योगविहीन) या श्रान्त होकर आराम को चाहने वाले पुरुष को लक्ष्मी छोड देती है ॥३२॥

दुरधिगमः परभागो यावत्पुरुषेण साहसं न कृतम् ।
जयति तुलामधिरूढो भास्वानिह जलदपटलानि ।।३३।।

अन्वयः– यावत् पुरुषेण साहसं न कृतम् (तावत्) परभागः दुरधिगमः, इह भास्वान् तुलामधिरूढः एव जलदपटलानि जयति ॥३३॥

व्याख्या– दुरधिगम इति । यावत् = यावत् कालपर्यन्तम् (जब तक) **पुरुषेण** = नरेण (मनुष्य) **साहसम्** = उद्योगं-पौरुषम् (प्रयत्न, पुरुषार्थ) **न कृतम्** = नैवानुष्ठितं (नहीं किया) तावत् **परभागः** = उत्कर्षः, (उन्नति, विजय)

दुरधिगमः = दुष्प्रापः, दुःसाध्यः (कठिन, दुर्लभ होता है) **तथाहि** = इह **तुलाम्** = तुलाख्यं राशिम्, (ग्रहराशि, तराजू) **अधिरूढः** = आरूढः, तुलाराशिंगतः (साहस करके प्रयत्न करता है) **भास्वान्** = रविः (सूर्य) **जलदपटलानि** = वारिवृन्दानि-मेघसमूहान् (बादलों को) **जयति** = मेघानां पराभवं करोति (मेघों पर विजय प्राप्त करता है) तुलामधिरुह्यैव सूर्योऽति तेजस्वी भूत्वा मेघैः कृतं प्रावरणं भिनत्ति स्वपौरुषेण, इतरेषां तु कैव कथा ? । आर्यावृत्तम् दृष्टान्तालङ्कारः ॥३३॥

हिन्दी– कवि कहता है कि-पुरुष जब तक साहसपूर्ण उद्योग नहीं करता है तब तक उसका उत्कर्ष नहीं होता। इस तथ्य को एक दृष्टान्त के द्वारा उपन्यस्त करते हए कवि कहता हैं कि भगवान् सूर्य तुला (राशि-तराजू) पर आरूढ होने के पश्चात् ही मेघ समूहों पर विजय प्राप्त करते हैं, तात्पर्य यह है कि साहस किये बिना कार्य की सिद्धि नहीं होती है ॥३३॥

तत्कथ्यतामस्माकं कश्चिद् धनोपायो विवरप्रवेशशाकिनीसाधन-श्मशानसेवनमहामांसविक्रयसाधकवर्तिप्रभृतीनामेकतम इति। अद्भुत-शक्तिर्भवान् श्रूयते। वयमप्यतिसाहसिकाः उक्तञ्च–

व्याख्या– तदिति। तत् = तस्मात् कारणात् (इसलिए) **कथ्यताम्** = उच्यताम् = (बताइये) **कश्चित् धनोपायो** = धनलाभोपायः, धनलाभप्राप्तिसाधनम् (धन प्राप्त करने का कोई उपाय) **विवरप्रवेशः** = भूगर्भप्रवेशः, मणिमन्त्रौषधादिभिः पाताललोकम्प्रतिगमनम्- (पाताल गमन) **शाकिनीसाधनम्** = यक्षिणीसाधनम्, शाकिनी तन्त्रशास्त्रसिद्धा काचित् योगिनी तस्याः साधनम्, (यक्षिणी साधन) **श्मशानसेवनम्** = श्मशानोपासनम्, श्मशाने प्रेतावासे स्थित्वा मन्त्रादिसिद्धिलाभः, (श्मशान साधन) **महामांसविक्रयः** = पुरुषामांसविक्रयः (नरमांसविक्रय) **साधकवर्तिः** = साधकगुटिका, भूगर्भस्थितनिधिप्रदर्शिका वर्तिका विशेषः (सिद्ध गुटिकादि) **एकतमः** = अन्यतमः (इनमें से कोई एक) **अद्भुतशक्तिः** = अद्भुत-शक्तिसम्पन्नः (सिद्धपुरुष, विशेषशक्तिसम्पन्न) तत् उक्तानामन्यतमं धनार्जनोपायं ब्रूहीत्याशयः।

हिन्दी– उन चारो ब्राह्मणकुमारों नें उस भैरवान्द योगी से कहा– अत: हम लोगों के योग्य धनलाभप्राप्ति का कोई उपाय कहिये, हम, भूगर्भ प्रवेश, शाकिनीसाधन, श्मशानसाधन, नरमांस विक्रय और सिद्धगुटिका निर्माण करने आदि के लिए तत्पर हैं। आप उक्त उपायों में से कोई भी एक उपाय बताइये। सुना जाता है कि आप एक अद्भुत शक्ति संपन्न सिद्ध पुरुष हैं। हम भी अत्यन्त साहसी हैं। कहा भी है–

महान्त एव महतामर्थं साधयितुं क्षमाः।
ऋते समुद्रादन्यः को बिभर्ति वडवाऽनलम्? ।।३४।।

अन्वयः– महान्त एव महताम् अर्थं साधयितुम् क्षमाः (भवन्ति) समुद्रात् ऋते अन्यः कः वडवानलम् बिभर्ति ।।३४।।

व्याख्या– महान्त इति। महान्तः = महापुरुषाः, (बड़े लोग) **महताम्** = महापुरुषाणाम् (बड़े लोगों के) **अर्थं** = प्रजोजनम् कार्यम् (कार्य को) **साधयितुम्** = सम्पादयितुम् (करने के लिये) **क्षमाः** = समर्थाः भवन्ति (समर्थ होते हैं) **तथा हि ऋते समुद्रात्** = सागरात् ऋते समुद्रं विहाय (समुद्र को छोडकर) **अन्यः अपरः** = (अन्य, दूसरा) **कः** = को जनः (कौन व्यक्ति) **वडवानलं** = वाडवाग्निम् (वडवा नामक अग्निको) **बिभर्ति** = धारयति (धारण कर सकता है) **विशेषेण** सामान्यसमर्थनरूपोऽर्थान्तरन्यासः ।।३४।।

हिन्दी– कवि कहता है कि-बड़े लोगों के कार्य को बडे लोग ही सम्पादित करने में समर्थ होते हैं। देखिए-समुद्र के अतिरिक्त, अन्य कौन बड़वानल (अग्नि) को धारण करने में समर्थ हो सकता है ।।३४।।

भैरवानन्दोऽपि तेषां सिद्ध्यर्थं बहूपायं सिद्धवर्तिचतुष्टयं कृत्वाऽर्पयत्। आह च–"गम्यतां हिमालयदिशि। तत्र संप्राप्तानां यत्र वर्तिः पतिष्यति, तत्र निधानमसन्दिग्धं प्राप्स्यथ। तत्र स्थानं खनित्वा निधिं गृहीत्वा व्याघुट्यताम्।"

व्याख्या– भैरवेति। तेषां = ब्राह्मणकुमाराणां (ब्राह्मण पुत्रों की) **सिद्ध्यर्थं** = कामना-अभिलाषां सम्पादनार्थम् (अभिलाषा की सिद्धि के लिए)

बहूपायं = विविधकार्यसम्पादनक्षमं (विविध कार्यों के सम्पादन में समर्थ) **सिद्धवर्ति-चतुष्टयं** = सिद्धा अमोघा चासौ वर्तिः वर्तिका तस्याः चतुष्टयम् (चार सिद्धवर्तिकाएँ) **कृत्वा** = निर्माय, **अर्पयत्** = सम्प्रददौ (दे दीं) **हिमालयदिशि** = उत्तरस्यां दिशि (उत्तर की ओर, हिमालय के क्षेत्र में) **सम्प्राप्तानां** = गतानां (पहुँचने पर) **निधानं** = धनम् (धन) **असन्दिग्धं** = निःसंशयं (निश्चित) **प्राप्स्यथ** = अवाप्स्यथ (प्राप्त करोगे) **व्याघुट्यताम्** = परावर्त्यताम् (लौट आना)।

हिन्दी– तत्पश्चात् उस भैरवानन्द नामक योगी ने भी विविध उपायों से चार सिद्ध गुटिकाओं का निर्माण करके उन ब्राह्मण कुमारों को देदीं, और कहा– आप उत्तर दिशा की ओर जाना, वहाँ पहुँचने पर जिस स्थान पर यह वर्तिका (बत्ती) गिरेगी वहाँ तुम्हें निश्चय ही धन प्राप्त होगा। उस स्थान को खोद कर धन लेकर लौट आना।

तथाऽनुष्ठिते तेषां गच्छतामेकतमस्य हस्ताद्वर्तिर्निपपात। अथाऽसौ यावत्तं प्रदेशं खनति, तावत्ताम्रमयी भूमिः। ततस्तेनाऽभिहितम्– "अहो, गृह्यतां स्वेच्छया ताम्रम्।" अन्ये प्रोचुः–"भो मूढ! किमनेन क्रियते यत् प्रभूतमपि दारिद्र्यं न नाशयिष्यति। तदुत्तिष्ठ, अग्रतो गच्छामः।"

सोऽब्रवीत्–"यान्तु भवन्तः। नाऽहमग्रे यास्यामि।" एवमभिधाय ताम्रं यथेच्छया गृहीत्वा प्रथमो निवृत्तः।

ते त्रयोऽपि अग्रे प्रस्थिताः। अथ किञ्चिन्मात्रं गतस्याऽग्रेसरस्य वर्तिर्निपपात। सोऽपि यावत् खनितुमारब्धस्तावद् रूप्यमयी क्षितिः। ततः प्रहर्षितः प्राह, यत्-"भो भो, गृह्यतां यथेच्छया रूप्यम्। नाऽग्रे गन्तव्यम्।"

तावूचतुः–"भोः, पृष्ठतस्ताम्रमयी भूमिः, अग्रतो रूप्यमयी। तन्नूनमग्रे सुवर्णमयी भविष्यति। किंचाऽनेन प्रभूतेनाऽपि दारिद्र्यनाशो न भवति। तदावामग्रे यास्यावः।" एवमुक्त्वा द्वावप्यग्रे प्रस्थितौ। सोऽपि स्वशक्त्या रूप्यमादाय निवृत्तः।

व्याख्या– तथेति । तथानुष्ठिते = भैरवानन्दकृतोपदेशानुसारेण (भैरवानन्द ने कहे हुए उपदेशानुसार) **अनुष्ठिते** = विहिते (करने पर) **तेषां** = ब्राह्मणपुत्राणाम् (उन ब्राह्मणकुमारों में से) **एकतमस्य** = एकस्य कुमारस्य (एक कुमार के) **ताम्रमयी** = ताम्रपूर्णा (ताम्बे से भरी हुई) **अनेन** = ताम्रेण (इस ताम्र से) **प्रभूतमपि** = अधिकमपि (अधिक होने पर भी) **दारिद्र्यं** = निर्धनत्वं (दरिद्रता को) **न नाशयिष्यति** = निवारयिष्यति (दूर नहीं करेगा) ।

अथेति । अग्रेसरस्य = अग्रगामिनः (आगे जानेवाले की) **रूप्यमयी** = रजतमयी (चाँदी की) **क्षितिः** = भूमिः (भूमि) **प्रहर्षितः** = प्रसन्नचित्तः (प्रसन्न) ।

स इति । स्वशक्त्या = निजसामर्थ्यानुसारेण (अपनीशक्ति के अनुसार) **रूप्यम्** = रजतम् (चाँदी को) **आदाय** = प्राप्य (प्राप्त करके) **निवृत्तः** = परावृत्तः (लौट गया) ।

हिन्दी– उस योगी भैरवानन्द के कथनानुसार वे चारों ब्राह्मण कुमार सिद्धवर्तिकाओं को लेकर उत्तर दिशा-हिमालय-की ओर चल पड़े । वहाँ पहुँचने पर आगे जाते हुए उनमें से एक के हाथ से वर्ति गिर पडी । तदनन्तर जैसे ही वह उस स्थान को खोदने लगा वैसे ही उसे ताम्रमयी भूमि दिखाई दी । तब उसने अपने साथियों से कहा–"अरे ! अपनी इच्छानुसार ताँबा प्राप्त कर लो"–तब उसकी बात सुनकर अन्य बोले-अरे मूर्ख ! इसे (ताँबे को) लेकर हम क्या करेंगे ? यह प्रभूत मात्रा में होने पर भी हमारी निर्धनता को दूर न कर सकेगा । तो उठो, आगे चलते हैं ।

तत्पश्चात् उसने कहा–'आप लोग जाइए, मैं आगे नहीं जाऊँगा"–यह कहकर ताँबे को अपनी इच्छानुसार लेकर प्रथम ब्राह्मणपुत्र लौट गया ।

तदनन्तर वे तीनों ब्राह्मणकुमार आगे गये । तत्पश्चात् वे थोडे ही आगे गये थे कि आगे जानेवाले साथी की वर्ति गिर पड़ी । उसने भी जैसे ही खोदना प्रारम्भ किया वैसे ही उसे चाँदी की भूमि दिखाई पड़ी । तब वह प्रसन्न होकर कहने लगा–अरे ! मित्रों ! अपनी इच्छानुसार चाँदी ले लो, आगे न बढो ।

तब उन दोनों ने कहा–पीछे ताँबे की भूमि मिली, तत्पश्चात् चाँदी की

मिली। तो निश्चय ही आगे सोने की भूमि मिलेगी। इसे अत्यधिक ग्रहण करने पर भी हमारी निर्धनता दूर न हो सकेगी। तो हम दोनों आगे जाते हैं। यह कहकर वे दोनों आगे गये। वह भी अपनी शक्ति के अनुसार चाँदी लेकर लौट गया।

अथ तयोरपि गच्छतोरेकस्याऽग्रे वर्तिः पपात। सोऽपि प्रहृष्टो यावत्खनति, तावत्सुवर्णभूमिं दृष्ट्वा द्वितीयं प्राह–"भोः, गृह्यतां स्वेच्छया सुवर्णम्। सुवर्णादन्यन्न किञ्चिदुत्तमं भविष्यति।"

स प्राह–"मूढ! न किञ्चिद् वेत्सि। प्राक्ताम्रं, ततो रूप्यं, ततः सुवर्णम्। तन्नूनमतः परं रत्नानि भविष्यन्ति, येषामेकतमेनाऽपि दारिद्र्यनाशो भवति। तदुत्तिष्ठ, अग्रे गच्छावः। किमनेन भारभूतेनाऽपि प्रभूतेन?"

स आह–"गच्छतु भवान्। अहमत्र स्थितस्त्वां प्रतिपालयिष्यामि।" तथाऽनुष्ठिते, सोऽपि गच्छन्नेकाकी, ग्रीष्माऽर्कप्रतापसन्तप्ततनुः पिपासाकुलितः सिद्धिमार्गच्युत इतश्चेतश्च बभ्राम।

अथ भ्राम्यन्, स्थलोपरि पुरुषमेकं रुधिरप्लावितगात्रं भ्रमच्चक्रमस्तकमपश्यत्। ततो द्रुततरं गत्वा तमवोचत्–"भोः, को भवान्? किमेवं चक्रेण भ्रमता शिरसि तिष्ठसि? तत्कथय मे यदि कुत्रचिज्जलमस्ति।"

व्याख्या– अथेति। अथ = तदनन्तरम् (दूसरे मित्र के चाँदी लेकर लौट जाने के पश्चात्) **पपात** = स्खलिता (गिरी) **प्रहृष्टः** = तृतीयकुमारः प्रसन्नचित्तः (तीसरा मित्र प्रसन्न होकर) **सुवर्णभूमिं** = सुवर्णमयीं भूमिम् (सोने की भूमिको)।

स इति। मूढ! = मूर्ख! **न किंचिद् वेत्सि** = न किमपि जानासि (तुम कुछ नहीं जानते हो) **प्राक्** = अस्मात् स्थानात् पूर्वम् (इस स्थान से पूर्व) **तत् नूनम्** = निश्चयेन (निश्चय ही) **एकतमेन** = एकेन (उनमें से एक ने) **भारभूतेन** = भारस्वरूपेण (भार स्वरूप) **प्रभूतेन** = पुष्कलेन (अत्यधिकसे)।

अहमिति। प्रतिपालयिष्यामि = प्रतीक्षिष्ये (प्रतीक्षा करुंगा) **एकाकी** =

असहाय: (अकेला) **ग्रीष्मार्कप्रतापसन्तप्ततनु:** = ग्रीष्मार्कस्य (निदाघ) घर्मकालीन-सूर्यस्य प्रतापेन सन्तापेन सन्तप्ता प्लुष्टा तुन: शरीरं यस्य तादृश: (ग्रीष्मकालीन सूर्य के प्रचण्ड ताप से सन्तप्त-शरीर) **पिपासाकुलित:** = पिपासया तृष्णया व्याकुलित: (प्यास से व्याकुल होकर) **सिद्धिमार्गच्युत:** = सिद्धिमार्गात् सिद्धिवर्त्मन: च्युत: परिभ्रष्ट:, स्खलित: (सिद्धिमार्ग से स्खलित होकर) **इतश्चेतश्च** = इतस्तत: (इधर उधर)।

अथेति। भ्राम्यन् = परिभ्रमन् (घूमता हुआ) **स्थलोपरि** = समतल भूमौ (समतल भूमि पर) **रुधिरप्लावितगात्रं** = रुधिरेण रक्तेन प्लावितं गात्रं शरीरं यस्य स: तं रक्ताभिषिक्तशरीरं (रक्त से लथपथ-भरा हुआ) **भ्रमच्चक्रमस्तकं** = भ्रमत् चक्रं यस्मिन् तादृशं मस्तकं ललाटं यस्य स तथाविध: (मस्तक पर घूमते हुए चक्र से युक्त पुरुष को) **द्रुततरं** = झटिति-शीघ्रातिशीघ्रम् (यथाशीघ्र) **अवोचत्** = अवदत् (कहा)।

हिन्दी– इसके पश्चात् उन दोनों मित्रों के आगे जाने पर उनमें से एक के हाथ से वर्तिका नीचे गिरी। पश्चात् जैसे ही वह प्रसन्नता से भूमि को खोदने लगा वैसे ही उसने सुवर्णमयी भूमि को देखकर अपने साथी से कहा–'अरे, इच्छानुसार सुवर्ण प्राप्त कर लो, सोने से बढकर अन्य कोई दूसरी उत्तम वस्तु नहीं मिलेगी।

तब दूसरे ने कहा–मूर्ख ! तुम कुछ नहीं जानते, देखो, प्रथम ताँबा, पश्चात् चाँदी और अब सुवर्ण की भूमि मिली है। इसके बाद निश्चय ही रत्नों की खान मिलेगी। जिसके एक के भी मिल जाने पर सारी निर्धनता दूर हो जायगी। अत: उठो और आगे चलो। इस बहुत भारस्वरूप सोने से क्या लाभ ?

अपने साथी मित्र की बात सुनकर उसने कहा–तुम जाओ, मैं यहाँ रहकर तुम्हारी प्रतीक्षा करूँगा। अन्त में विवश होकर चतुर्थ मित्रको अकेले ही जाना पड़ा। कुछ दूर जाने पर वह ग्रीष्मकालीन सूर्य के ताप से संतप्त एवं प्यास से व्याकुल होकर अपने लक्ष्यसे भ्रष्ट हो गया और इधर-उधर घूमने लगा।

इधर-उधर भ्रमण करते हुए उसने रक्तालिप्त शरीर वाले एक पुरुष को देखा–उसके मस्तक पर चक्र घूम रहा था। जल्दी से उसके पास पहुँचकर उसने

उसे पूछा–"आप कौन हैं ? आप मस्तक पर घूमते हुए चक्र के साथ कैसे बैठे हैं। मैं प्यासा हूँ। अत: पास में ही यदि कहीं जल हो तो कृपया बतलाइए।"

एवं तस्य प्रवदतस्तच्चक्रं तत्क्षणात्तस्य शिरसो ब्राह्मणमस्तके चटितम्।

स आह–"भद्र ! किमेतत् ?"

स आह–"ममाऽप्येवमेतच्छिरसि चटितम् ?"

स आह–"तत्कथय कदैतदुत्तरिष्यति ? महती मे वेदना वर्तते।"

स आह–"यदा त्वमिव कश्चिद्धृतसिद्धवर्तिरेवमागत्य, त्वामालापयिष्यति तदा तस्य मस्तकं चटिष्यति।"

स आह–"कियान्कालस्तवैवं स्थितस्य ?"

स आह–"साम्प्रतं को राजा धरणीतले ?"

स आह–"वीणावादनपटुः वत्सराजः।"

स आह–"अहं तावत्कालसङ्ख्यां न जानामि। परं यदा रामो राजाऽऽसीत्तदाऽहं दारिद्र्योपहतः सिद्धवर्तिमादायानेन पथा समायातः। ततो मयाऽन्यो नरो मस्तकधृतचक्रो दृष्टः, पृष्टश्च। ततश्चैतज्जातम्।"

स आह–"भद्र ! कथं तवैवं स्थितस्य भोजनजलप्राप्तिरासीत् ?"

स आह–"भद्र ! धनदेन निधानहरणभयात्सिद्धानामेतच्चक्रपतन-रूपं भयं दर्शितम्। तेन कश्चिदपि नागच्छति। यदि कश्चिदायाति, स क्षुत्पिपासानिद्रारहितो, जरामरणवर्जितः केवलमेवं वेदनामनुभवति इति। तदाज्ञापय मां स्वगृहाय।" इत्युक्त्वा गतः।

व्याख्या– एवमिति। एवं = इत्थम्, **प्रवदतः** = वार्तां कुर्वतः = (इस प्रकार (उससे वार्तालाप करते समय) **ब्राह्मणमस्तके** = ब्राह्मणकुमारस्य शिरसि (ब्राह्मण पुत्र के मस्तक पर) **चटितम्** = पतितम्-आरूढम् (वह चक्र चढ गया) **त्वमिव** = त्वत्सदृशः (तुम्हारी तरह से) **धृतसिद्धवर्तिः** = धृता सिद्धिवर्तिर्येन सः, गृहीतसिद्धिगुटिका (सिद्धिगुटिका लिया हुआ कोई जब) **आलापयिष्यति** = कथयिष्यति, त्वया सह वार्तां करिष्यति (तुम्हारे साथ वार्तालाप करेगा)

चटिष्यति = तदा त्वत् मस्तकात् वार्ताकारमस्तके एतत् चटिष्यति (तब तुम्हारे मस्तक से बोलने वाले के मस्तक पर यह चढेगा) (तदा एतद् उत्तरिष्यति) तब यह चक्र उतरेगा।

स इति। धरणीतले = पृथिव्याम् (पृथ्वी पर) **कालसंख्याम्** = समयगणनां (काल- गणना) **दारिद्र्योपहतः** = दारिद्र्यपीडितः (दरिद्रता से पीडित होकर) **मस्तक-धृतचक्रः** = मस्तके धृतं चक्रं येन सः-शिरसि निहितचक्रः (मस्तक पर चक्र को धारण किया हुआ व्यक्ति)।

स इति। धनदेन = यक्षाधिपतिना कुबेरेण (कुबरे ने) **निधान-हरणभयात्** = निधिस्तेयत्रासात् धनापहरणभयात् (धन की चोरी के भय से) **सिद्धानां** = सिद्ध्यर्थमागतानाम् (धन प्राप्ति के लिए आनेवाले पुरुषों को) **क्षुत्पिपासानिद्रारहितः** = बुभुक्षापिपासादिविरहितः, (भूख, प्यास-निद्रा से रहित होकर) **वेदनामनुभवति** = कष्टमनुभवति (कष्टानुभव करता है) **स्वगृहाय** = निजगेहगमनाय (अपने घर जाने के लिए)।

हिन्दी– इस प्रकार उससे वार्तालाप करते ही वह चक्र उसी समय उस पुरुष के मस्तक पर से उतरकर ब्राह्मणकुमार के मस्तक पर चढ गया अर्थात् घूमने लगा। यह देख ब्राह्मणकुमार ने विस्मित होकर उससे पूछा-भद्र ! यह क्या हो गया है ?

उसने कहा–इसी प्रकार यह चक्र मेरे मस्तक पर भी आरूढ हो गया था।

ब्राह्मण कुमार ने पूछा–यह तो बताओ यह कब उतेरगा, मुझे अत्यधिक पीडा हो रही है। उसने कहा–जब तुम्हारे ही सदृश अन्य कोई व्यक्ति इसी प्रकार सिद्धिवर्तिका लेकर आयगा और तुमसे इसी प्रकार वार्ता करेगा तब वह तुम्हारे मस्तक से उतर कर उसके मस्तक पर आरूढ हो जायगा।

उसने पूछा–तुमने इस प्रकार कितने दिनों तक इस वेदना का अनुभव किया ? उसने पूछा–इस समय पृथ्वी पर कौन राजा है ?

उसने उत्तर दिया–वीणा वादन में कुशल वत्सराज। तब उस व्यक्ति ने कहा–काल गणना तो मैं नहीं कर सकता, किन्तु जब राम राजा थे, तब मैं

दारिद्र्य से पीडित होकर इसी प्रकार सिद्धिगुटिका लेकर इस मार्ग से आया था, यहाँ आने पर मैंने मस्तक पर चक्र घूमते हुए एक अन्य मनुष्य को देखा। उससे कुछ पूछ ही रहा था कि मेरे ऊपर आकर वह चक्र घूमने लगा।

उस ब्राह्मण कुमार ने पूछा–इस प्रकार सिर पर चक्र के घूमते रहने पर आपको भोजन पानी किस प्रकार प्राप्त होता था।

उसने उत्तर दिया–मित्र ! कुबेर ने कोशों के लूट जाने के भय से अर्थ लोभ से सिद्धिगुटिका लेकर आनेवाले पुरुषों के लिए चक्र के घूमने का यह भय उपस्थित किया है। अत: प्राय: कोई इधर नहीं आता। यदि कोई लोभ से आता है तो वह इसी प्रकार भूख, प्यास, निद्रा, वृद्धावस्था एवं मृत्यु के भय से रहित होकर केवल चक्रभ्रमण जनित पीडा का ही अनुभव करता है। अब आप मुझे घर जाने की आज्ञा दें। ऐसा कहकर वह वहाँ से तत्काल चला गया।

तस्मिंश्चिरयति स सुवर्णसिद्धिस्तस्याऽन्वेषणपरस्तत्पदपङ्क्त्या यावत् किञ्चिद् वनान्तरमागच्छति, तावद्रुधिरप्लावितशरीरस्तीक्ष्ण-चक्रेण मस्तके भ्रमता सवेदनः क्वणन्नुपविष्टस्तिष्ठतीति ददर्श। ततः तत्समीपवर्तिना भूत्वा, सवाष्पं पृष्टः–"भद्र ! किमेतत् ?"

स आह–"विधिनियोगः।"

स आह–"कथं तत् ? कथय कारणमेतस्य।" सोऽपि तेन पृष्टः सर्वं चक्रवृत्तान्तमकथयत्।

तत् श्रुत्वाऽसौ तं विगर्हयन्निदमाह–"भोः ! निषिद्धस्त्वं मयाऽनेकशो न शृणोषि मे वाक्यम्। तत्किं क्रियते ! विद्यावानपि, कुलीनोऽपि, बुद्धिरहितः। अथवा साध्विदमुच्यते–

व्याख्या– तस्मिन्निति। तस्मिन् = चतुर्थब्राह्मणकुमारे (चौथे ब्राह्मणकुमार के) **चिरयति** = विलम्बिते सति (विलम्ब करने पर) **अन्वेषणतत्परः** = मित्रस्यान्वेषणकटिबद्धः गवेषणापरः, (अपने मित्र की खोज करने में दृढ-तत्पर) **तत्पदपङ्क्त्या** = चतुर्थब्राह्मणपुत्रस्य पदरेखामनुरुध्य (चतुर्थ-ब्रह्मणपुत्र के पदचिह्नों से) **वनान्तरं** = काननान्तरं (दूसरे वन में) **तीक्ष्णचक्रेण** = तीव्रफलकचक्रेण

(तीक्ष्णधार वाले चक्र से) **सवेदनः** = वेदनया पीड्या सह वर्त्तमानः, पीडायुक्तः (पीडितो) **क्वणन्** = शब्दायमानः (कराहते-शब्द करते हुए) **तत्समीपवर्तिना भूत्वा** = तस्य समीपं गत्वा (उसके पास जाकर) **सवाष्पं** = अश्रुयुक्तनेत्रम् (आँखों में आँसू भर कर) **स इति । विधिनियोगः** = दुर्दैवाज्ञा,-भाग्यचक्रम् (भाग्य का चक्कर) **विगर्हयन्** = निन्दयन् (निन्दा करते हुए) **निषिद्धः** = वारितः (रोके जाने पर भी) **नैवश्रृणोषि** = नैवाश्रृणोः (नहीं सुना था) **बुद्धिः** = मतिः ।

हिन्दी– उस ब्राह्मणपुत्र-चौथे साथी के अतिविलम्बित होने पर सुवर्णसिद्धि, उसका अन्वेषण करता हुआ उसके पदरेखा के अनुसार दूसरे वन में जा पहुँचा। तत्पश्चात् उसने देखा कि उसका वह मित्र रक्तालिप्त है, मस्तक पर तेज धार वाला चक्र घूम रहा है और वह पीडा से कराहता हुआ रो रहा है, तब उसके निकट पहुँचकर सभी वृत्त उससे पूछने लगा– मित्र ! यह क्या हुआ ?

तब उसने उत्तर दिया–मित्र ! दैव की विडम्बना है ।

सुवर्ण सिद्धि ने पूछा–यह कैसे हुआ ? इसका कारण बाताओ ।

उसके इस प्रकार पूछे जाने पर चक्रधर ने संपूर्ण वृत्तान्त सुनाया । चक्रधर की बातें सुनकर सुवर्ण सिद्धि ने उसकी निन्दा करते हुए कहा–मेरे द्वारा अनेक बार रोके जाने पर भी तुमने मेरी बात नहीं सुनी । तो अब क्या किया जा सकता है । तुम विद्वान् एवं कुलीन होने पर भी यथार्थ में मूर्ख हो । अथवा ठीक ही कहा है–

वरं बुद्धिर्न सा विद्या विद्याया बुद्धिरुत्तमा ।
बुद्धिहीना विनश्यन्ति, यथा ते सिंहकारकाः ।।३५।।

अन्वयः– बुद्धिः वरं (किन्तु) सा विद्या (वरं) न, (यतः) विद्याया बुद्धिः उत्तमा (भवति) बुद्धिहीनाः सिंहकारका यथा विनश्यन्ति ।।३५।।

व्याख्या– वरमिति । बुद्धिः = कार्यसाधनसमर्था, विवेकान्विता, (विवेकशीला), **वरं** = श्रेष्ठा, **सा** = मृतसंजीविनीयुक्तापि, **विद्यावरं** = उपकारकं न वरम् । **बुद्धिहीनाः** = मतिशून्या देशकालवस्तुविवेककरणे अदक्षाः पुरुषाः, **विनश्यन्ति** = नष्टा भवन्ति (देशकाल-वस्तु की विवेचना करने में अदक्ष पुरुष

नष्ट हो जाते हैं) **यथा ते सिंहकारकाः** = सिंहविधायकाः (सिंह को बनानेवाले) ॥३५॥

हिन्दी– कार्याकार्य का विवेचन करनेवाली बुद्धि, विद्या की अपेक्षा श्रेष्ठ है, देखिए, बुद्धि के अभाव में पुरुष विद्वान् होने पर भी इसी प्रकार नष्ट हो जाते हैं, जैसे बुद्धिहीन किन्तु मृतसंजीवनी विद्या के जानकार ब्राह्मण सिंह को बनाने के-जीवित करने के कारण-नष्ट हो गये ॥३५॥

चक्रधर आह–'कथमेतत् ? सुवर्णसिद्धिराह–

हिन्दी– चक्रधर ने पूछा–यह कैसे ? तब सुवर्णसिद्धि ने कहा–

(४) सिंहकारकमूर्खब्राह्मण-कथा

कस्मिंश्चिदधिष्ठाने चत्वारो ब्राह्मणपुत्राः परस्परं मित्रभावमुपगता वसन्ति स्म। तेषां त्रयः शास्त्रपारङ्गताः परन्तु बुद्धिरहिताः। एकस्तु बुद्धिमान् केवलं शास्त्रपराङ्मुखः। अथ तैः कदाचिन्मित्रैर्मन्त्रितं–"को गुणो विद्यायाः, येन देशान्तरं गत्वा भूपतीन् परितोष्याऽर्थोपार्जना न क्रियते। तत्पूर्वदेशं गच्छामः।

तथाऽनुष्ठिते किञ्चिन्मार्गं गत्वा, तेषां ज्येष्ठतरः प्राह–"अहो, अस्माकमेकश्चतुर्थो मूढः केवलं बुद्धिमान्। न च राजप्रतिग्रहो बुद्ध्या लभ्यते, विद्यां विना। तन्नास्मै स्वोपार्जितं दास्यामि। तद् गच्छतु गृहम्।" ततो द्वितीयेनाऽभिहितं–"भोः, सुबुद्धे! गच्छ त्वं स्वगृहं, यतस्ते विद्या नास्ति।" ततस्तृतीयेनाऽभिहितम्–"अहो, न युज्यते एवं कर्तुम्, यतो वयं बाल्यात्प्रभृत्येकत्र क्रीडिताः। तदागच्छतु महाऽनुभावोऽस्मदुपार्जितवित्तस्य समभागी भविष्यतीति। उक्तं च–

व्याख्या– कस्मिंश्चिदिति। अधिष्ठाने = नगरे, **ब्राह्मणपुत्राः** = ब्राह्मणस्य पुत्राः ब्राह्मणपुत्राः-विप्रकुमाराः, (किसी नगर में ब्राह्मण पुत्र) **मित्रभावं** = मैत्रीम्, **उपगताः** = प्राप्ताः-(परस्पर मित्र बने) **शास्त्रपारङ्गताः** = शास्त्रे पारङ्गताः शास्त्रपारङ्गताः-शास्त्रनिपुणाः विद्वांसः (शास्त्र में निपुण) **शास्त्रपराङ्मुखः** = शास्त्रविमुखः विद्याविहीनः (विद्या पढा नहीं था) **मन्त्रितम्** = विचारितम् (विचार किया) **भूपतीन्** = राज्ञः (राजाओं को) **परितोष्य** = स्वविद्यया सन्तोष्य (अपनी विद्यासे सन्तुष्ट कर) **अर्थोपार्जना** = धनप्राप्तिः (धनार्जन) **न क्रियते** = न विधीयते (नहीं किया जाता है)।

तथेति। तथानुष्ठिते = विचारानुसारेण तथा कृते सति, (परस्पर विचारानुसार यात्रा करने के पश्चात्) **मूढः** = मूर्खः, **राजप्रतिग्रहः** = नृपेण प्रदत्तं धनादिदानम् (राजा द्वारा दिया हुआ धनादिदान) **अस्मै** = मूर्खाय (इस मूर्ख को) **स्वोपार्जितं** = स्वलब्धं-प्राप्तधनात् (अपने कमाये हुए धन में से) **बाल्यात्**

प्रभृति = बाल्यकालादारभ्य, (बाल्यकाल से ही) **समभागी** = समानभागी भविष्यतीति (समान रूप से भाग प्राप्त करने वाला होगा)।

हिन्दी– किसी नगर में चार ब्राह्मण पुत्र परस्पर मित्रतापूर्वक रहते थे। उनमें से तीन शास्त्र में निपुण थे, किन्तु बुद्धिहीन थे। चौथा शास्त्र का जानकार नहीं था, किन्तु बुद्धिमान् था। किसी समय उन चारों कुमारों ने आपस में विचार विमर्श किया-कि उस विद्यासे क्या लाभ ? जिससे अन्य देश में जाकर राजाओं को सन्तुष्ट करके धनार्जन न किया जाय। अतः धन कमाने के लिए पूर्व देश में चलना चाहिए।

ऐसा विचार कर वे चारों धनोपार्जन के लिए चल पड़े। कुछ दूर यात्रा करने के बाद उनमें से ज्येष्ठतर-बड़े ने कहा–बन्धुओं, हममें से चौथा मूढ-मूर्ख है, किन्तु वह केवल बुद्धिमान् है, और राजाओं का दान विद्या के विना केवल बुद्धि से प्राप्त नहीं होता, अतः मैं अपने धन में से इसे कुछ नहीं दूँगा। तो, यह घर चला जाय। तब दूसरे ने कहा–भो सुबुद्धे ! तुम अपने घर को लौट जाओ, क्योंकि तुम विद्याविहीन हो-विद्वान् नहीं हो। तब तीसरे ने कहा–अरे, ऐसा करना उचित नहीं है। क्योंकि हम बाल्यकाल से ही एक साथ खेले हैं, अतः इसे भी चलने देना चाहिए। हमारी कमाई में से यह भी एक भाग प्राप्त करेगा। कहा भी है–

किं तया क्रियते लक्ष्म्या, या वधूरिव केवला।
या न वेश्येव सामान्या पथिकैरुपभुज्यते ।।३६।।

अन्वयः– या केवला वधूरिव (गृहे तिष्ठति) या सामान्या वेश्या इव पथिकैः न उपभुज्यते तथा लक्ष्म्या किं क्रियते ।।३६।।

व्याख्या– किमिति। या केवला वधूरिव = या केवला पुत्रस्त्री इव पुत्रमात्रभोग्या, (जो केवल पुत्र स्त्री की तरह पुत्र के द्वारा ही भोग्या हो) **या** = लक्ष्मीः (जो लक्ष्मी) **सामान्या** = साधारणी नायिका, **वेश्या** = पण्यस्त्री इव (जो सामान्य वेश्या-स्त्री की तरह) **पथिकैः** = सर्वैर्बन्धुभिरपि, **न भुज्यते** = न सेव्यते (जो सभी बन्धुवर्गों के द्वारा उपभुक्त नहीं होती) यया लक्ष्म्या सर्वस्यापि यथायोगमुपकारः शक्येत कर्त्तुं सैव श्रेष्ठेतिभावः ।।३६।।

हिन्दी– जो लक्ष्मी पुत्रवधू के समान केवल एक पुरुष के उपयोग-उपभोग में आती है और जो सबके उपयोग में आने वाली वेश्या के समान राह चलते लोगों द्वारा भोगी न जाती हो, उस लक्ष्मी से क्या लाभ ? ॥३६॥

तथा च–

अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम् ।
उदारचरितानान्तु वसुधैव कुटुम्बकम् ।।३७।।

'तदागच्छत्वेषोऽपि' इति–

अन्वयः– अयं निजः परो वा इति गणना लघुचेतसां (भवति) उदारचरितानां तु वसुधा एव कुटुम्बकम् (भवति) ॥३७॥

व्याख्या– अयमिति । अयं = जनो **निजः** = स्वीयः **परो वा** = अयमन्यः इति वा (यह मेरा है और यह दूसरे का) **गणना** = विचारः (इस प्रकार का, विचार) **लघुचेतसां** = लघु चेतः येषां ते लघुचेतसः तेषाम्, क्षुद्रहृदयानां जनानां भवति (छोटे हृदय के व्यक्तियों का है) **उदारचरितानाम्** = उदारचित्तानां, लोकोपकारिणाम् (उदार पुरुषो के लिए तो) **वसुधैव** = सकला भूमिरेव-(संपूर्ण पृथ्वी-विश्व ही) **कुटुम्बकम्** = परिवारः, आत्मीयं कुटुम्बकमिव (अपने परिवार सदृश होता है) **एषोऽपि** = अयमपि (यह भी) पण्डिता आत्मवदेव सर्वप्राणिमात्रेषु दृष्टिभाजो भवन्ति नेतर इतिभावः ॥३७॥

हिन्दी– और भी-

यह अपना है, यह दूसरे का है, इस प्रकार का विचार क्षुद्र विचारवाले जनों का होता है, किन्तु महान् लोगों के लिए समस्त विश्व अपने परिवार जैसा होता है ॥३७॥

अतः इसे भी चलने दो–

तथाऽनुष्ठिते तैर्मार्गाश्रितैरटव्यां कतिचिदस्थीनि दृष्टानि । ततश्चैकेनाऽभिहितम्–"अहो, अद्य विद्याप्रत्ययः क्रियते । किञ्चिदेतत्सत्त्वं मृतं तिष्ठति । तद् विद्याप्रभावेण जीवनसहितं कुर्मः । अहमस्थिसञ्चयं करोमि ।" ततश्च तेनौत्सुक्यादस्थिसञ्चयः कृतः । द्वितीयेन चर्ममांसरुधिरं संयोजितम् । तृतीयोऽपि यावज्जीवनं सञ्चारयति, तावत्सुबुद्धिना

निषिद्धः–"भोः तिष्ठतु भवान्। एष सिंहो निष्पाद्यते। यद्येनं सजीवं करिष्यसि ततः सर्वानपि व्यापादयिष्यति।"

व्याख्या– तथेति। तथानुष्ठिते = गन्तुमनुज्ञाते, (उसके साथ में चलने की अनुमति देने पर) **मार्गाश्रितैः** = पथि चलद्भिः (मार्ग में चलने वाले) **अटव्यां** = जङ्गले-कानने, (जंगल में) **अस्थीनि** = कीकसानि (हड्डियाँ) **विद्याप्रत्ययः** = अधीतस्य शास्त्रस्य ज्ञानपरीक्षा, (पढी हुई विद्या-ज्ञान-की परीक्षा) **सत्त्वं** = जीवः (प्राणी) **औत्सुक्यात्** = औत्कण्ठ्यात् (उत्सुकतापूर्वक) **अस्थिसञ्चयः** = अस्थीनां सञ्चयः अस्थिसञ्चयः (हड्डियों का संग्रह) **विद्याप्रभावेण** = अधीतविद्यासामर्थ्येन (अधीत विद्या की शक्ति से) **जीवनसहितं** = सजीवम् (प्राणों के साथ) **चर्ममांसरुधिरम्** = चर्म च मांसञ्च रुधिरञ्चेत्येषां द्वन्द्वे एकवद्भावः (चाम-मांस और रक्त का) **संयोजितम्** = समायोजितम् (जोडकर खड़ा किया) **जीवनं सञ्चारयति** = प्राणसंचारं करोति (प्राणों का संचार करने लगा) **निषिद्धः** = निवारितः (रोका) **निष्पाद्यते** = निर्मीयते (जीवित कर रहे हो) **व्यापादयिष्यति** = मारयिष्यति (मार डालेगा)॥

हिन्दी– तत्पश्चात् सुबुद्धि को साथ में चलने की अनुमति देने पर मार्ग में चलते हुए उन विद्वानों ने (लोगों ने) जंगल में कुछ हड्डियों को देखा। उन हड्डियों को देखकर उनमें से एक ने कहा–अरे ! आज अपनी विद्या की परीक्षा की जाय। यह कोई मृत जीव है। तो विद्या के प्रभाव से इसे जीवित करते हैं। मैं हड्डियों को एकत्र करता हूँ। इस प्रकार कहकर उसने बडी उत्सुकता से अस्थि संचय किया। दूसरे ने उन हड्डियों में चाम, मांस और रक्त का संयोजन किया। इसके पश्चात् जब तीसरे ने उसमें प्राणों का संचार करना प्रारम्भ किया तब सुबुद्धि ने उन्हें ऐसा करने से रोका, कहा– अरे ! थोडी देर रुक जाओ। तुम एक सिंह को जीवित कर रहे हो। यदि तुमने इसे जीवित किया तो यह हम सभी को मार डालेगा।

इति तेनाऽभिहितः स आह–"धिङ्मूर्ख! नाऽहं विद्याया विफलतां करोमि।" ततस्तेनाऽभिहितम्–"तर्हि प्रतीक्षस्व क्षणं, यावदहं वृक्षमारोहामि।"

तथाऽनुष्ठिते, यावत्सजीवः कृतस्तावत्ते त्रयोऽपि सिंहेनोत्थाय व्यापादिताः । स च पुनर्वृक्षादवतीर्य, गृहं गतः ।'' अतोऽहं ब्रवीमि–

वरं बुद्धिर्न सा विद्या विद्याया बुद्धिरुत्तमा ।
बुद्धिर्हीना विनश्यन्ति यथा ते सिंहकारकाः ।।३७।।

अतः परमुक्तं च सुवर्णसिद्धिना–

व्याख्या– इतीति । विफलतां = व्यर्थतां (अधीत विद्या की विफलता) **प्रतीक्षस्व** = प्रतिपालय, विलम्बं कुर्वित्यर्थः । (प्रतीक्षा करो) **सजीवः कृतः** = प्राणसंचारेण नियोजितः (जीवित कर दिया) **व्यापादितः** = हताः (मार डाला) ।।

हिन्दी– सुबुद्धि के द्वारा इस प्रकार प्राणी को जीवित करने से रोके जाने पर वह जीवित करने वाला विद्वान् बोला–अरे ! मूर्ख ! तुम्हें धिक्कार है । मैं अपनी विद्या को निष्फल नहीं कर सकता । तब सुबुद्धि ने कहा– तो थोडी देर प्रतीक्षा करो, जब तक मैं वृक्ष पर चढ जाऊँ ।

तदनंतर उस सुबुद्धि के वृक्ष पर चढ जाने के पश्चात् उसने जैसे ही सिंह में प्राणों का संचार किया, वैसे ही सिंह ने उठकर उन तीनो को मार डाला और वह सुबुद्धि भी वृक्ष से नीचे उतरकर अपने घर चला गया । अतः कहता हूँ कि विद्या से बुद्धि अच्छी होती है । बुद्धि के विना विद्या अच्छी नहीं होती । तब सुवर्णसिद्धि ने कहा–

अपि शास्त्रेषु कुशला लोकाचारविवर्जिताः ।
सर्वे ते हास्यतां यान्ति, यथा ते मूर्खपण्डिताः ।।३८।।

अन्वयाः– शास्त्रेषु कुशला अपि लोकाचारविवर्जिताः ते सर्वे हास्यतां यान्ति यथा ते मूर्खपण्डिताः ।।३८।।

व्याख्या– अपीति । ये = जनाः (जो लोग) **शास्त्रेषु** = आगमेषु, **कुशलाः** = निपुणाः अपि (शास्त्रों में निपुण होने पर भी) **लोकाचारविवर्जिताः** = लोकानामाचारे व्यवहारे विवर्जिताः शून्याः अज्ञातलोकव्यवहाराः (लोगों के व्यवहारों से अपरिचित) **ते** = सर्वे एवं विधाः मूढाः (वे सभी इस प्रकार के मूढ)

हास्यताम् = उपहासविषयतां **यान्ति** = प्राप्नुवन्ति (परिहास को प्राप्त होते है) **यथा ते मूर्खपण्डिताः** = मूर्खाश्च पण्डिताश्च मूर्खपण्डिताः शास्त्राण्यधीत्यपि मूर्खाः ॥३८॥

हिन्दी– शास्त्रज्ञान में निपुण मनुष्य लोकव्यवहारों से अपरिचित रहने पर उसी प्रकार उपहास को प्राप्त होते हैं, जिस प्रकार मूर्ख पण्डित लोकाचार न जानने के कारण उपहास को प्राप्त हुए थे ॥३८॥

चक्रधर आह–"कथमेतत् ।" सोऽब्रवीत्–

हिन्दी– चक्रधर ने पूछा–यह कैसे ? तब सुवर्णसिद्धि ने कहा–

(५) मूर्खपण्डित - कथा

कस्मिंश्चिदधिष्ठाने चत्वारो ब्राह्मणाः परस्परं मित्रत्वमापन्ना वसन्ति स्म। बालभावे तेषां मतिरजायत–"भोः! देशान्तरं गत्वा, विद्याया उपार्जनं क्रियते।

अथान्यस्मिन्दिवसे ते ब्राह्मणाः परस्परं निश्चयं कृत्वा विद्योपार्जनार्थं कान्यकुब्जे गताः। तत्र च विद्यामठे गत्वा पठन्ति। एवं द्वादशाब्दानि यावदेकचित्ततया पठित्वा, विद्याकुशलाऽस्ते सर्वे सञ्जाताः।

ततस्तैश्चतुर्भिर्मिलित्वोक्तम्–वयं सर्वविद्यापारङ्गताः। तदुपाध्यायमुत्कलापयित्वा स्वदेशे गच्छामः। तथैवाऽनुष्ठीयतामित्युक्त्वा ब्राह्मणा उपाध्यायमुत्कलापयित्वा, अनुज्ञां लब्ध्वा पुस्तकानि नीत्वा, प्रचलिताः। यावत्किञ्चिन्मार्गं यान्ति, तावद् द्वौ पन्थानौ समायातौ दृष्ट्वा उपविष्टाः सर्वे।

व्याख्या– कस्मिंश्चिदिति। अधिष्ठाने = नगरे (नगर में) **मित्रत्वमापन्नाः** = सौहार्द्रं मित्रभावं प्राप्ताः (मित्रता को प्राप्त) **बालभावे** = शैशवकाले (बचपन में) **मतिरजायत** = मतिरभूत् (मन में विचार आया) **देशान्तरं** = अन्यदेशं = (दूसरे देश को) **उपार्जनं** = पठनार्थं विद्या प्राप्तुम् (विद्याभ्यास के लिए)।

अथेति। विद्यामठे = विद्यालये (विद्यालय में) **द्वादशाब्दानि** = द्वादशवर्षाणि-(बारह वर्षों तक) **एकचित्ततया** = एकाग्रचित्तेन (एकाग्रचित्तसे) **विद्याकुशलाः** = विद्यायां कुशलाः निपुणाः, विद्वांसः (विद्वान्)।

तत इति। उपाध्यायं = स्वगुरुं (अपने गुरुको) **उत्कलापयित्वा** = स्वदेशं प्रति यातुं गुरोरग्रे प्रार्थनां कृत्वा, उपाध्यायाद् अनुमतिं गृहीत्वा, (अपने गुरु से घर जाने की आज्ञा प्राप्त करके) **द्वौ पन्थानौ** = द्वौ मार्गौ (दो रास्ते) **समायातौ** = समागतौ (मिले)।

हिन्दी– किसी नगर में चार ब्राह्मण परस्पर मित्रतापूर्वक रहते थे। बचपन

में उनके मन में विचार आया कि दूसरे प्रदेश में जाकर विद्याध्ययन करना चाहिए।

इसके पश्चात् दूसरे दिन ही वे निश्चय करके विद्याध्ययन के लिए कान्यकुब्ज 'कन्नोज' की ओर गये। वहाँ विद्यालय में जाकर अध्ययन करने लगे। इस प्रकार बारहवर्षों तक एकाग्रता से अध्ययन कर वे सभी विद्यामें निपुण हो गये।

तत्पश्चात् उन चारों ने मिलकर विचार किया कि हम सभी विद्या में कुशल हो चुके हैं। अत: गुरु से घर जाने की अनुमति प्राप्त करके अपने घर को चलना चाहिए। इस प्रकार निश्चय करके वे चारों ब्राह्मण अपने गुरु से आज्ञा प्राप्त करके अपनी पुस्तकों को साथ में लेकर घर की ओर निकल पड़े। कुछ मार्ग चलने के बाद उन्हें दो मार्ग मिले, तब किस मार्ग से चला जाय ? इसका निर्णय करने के लिये वे एक स्थान पर बैठ गये।

तत्रैकः प्रोवाच–''केन मार्गेण गच्छामः ?''

एतस्मिन्समये तस्मिन् पत्तने कश्चिद् वणिक्पुत्रो मृतः। तस्य दाहाय महाजनो गतोऽभूत्। ततश्चतुर्णां मध्यादेकेन पुस्तकमवलोकितं– ''महाजनो येन गतः स पन्थाः'' इति। तन्महाजनमार्गेण गच्छामः।

अथ ते पण्डिता यावन्महाजनमेलापकेन सह यान्ति, तावद्रासभः कश्चित्तत्र श्मशाने दृष्टः। अथ द्वितीयेन पुस्तकमुद्घाट्यावलोकितम्–

व्याख्या– एतस्मिन्निति। पत्तने = नगरे (नगर में) **वणिक्पुत्रः** = वणिक्सुत: (बनिये का पुत्र) **दाहार्थं** = दग्धुम्-अग्निसंस्काराय (दाहसंस्कार के लिये) **महाजनः** = श्रेष्ठजन:-महापण्डितसंघ: (बड़े लोग) **येन** = मार्गेण, यादृशेनाचार-व्यवहारेण, **गतः** = संसारे प्रचलितो भवति **स एव पन्थाः** = मार्ग: (श्रेष्ठजन जिस मार्ग से जाते हों, वही मार्ग)।

अथेति। रासभः = गर्दभ: (गदहा) **श्मशाने** = दाहभूमौ-(श्मशान में) **दृष्टः** = अवलोकित: = दिखाई दिया।

हिन्दी– उन चारों में से एक ने पूछा–अब हमें किस मार्ग से चलना चाहिए ?

उसी समय निकटस्थ नगर में एक बनिये का पुत्र मर गया था। उसे दाह संस्कार के लिए वणिक् जन ले जा रहे थे। उस शव-यात्रा को देखकर उन चारों में से एक ने अपने ग्रन्थ को खोल कर देखा और कहा 'महाजन जिस मार्ग से जाते हों, उसी मार्ग से चलना चाहिये। अतः हमें भी वणिक्-समूह के साथ चलना चाहिये।

उसके ऐसां कहने पर वे चारों ब्राह्मण कुमार उन वणिक्-जनों के पीछे-पीछे चले गये। अब जैसे ही उन महाजनों के साथ वे चले ही थे कि उन्हें वहाँ श्मशान में एक गदहा दिखाई दिया। तब दूसरे ने ग्रंथ खोलकर देखा और कहा–

उत्सवे व्यसने प्राप्ते दुर्भिक्षे शत्रुसङ्कटे।
राजद्वारे श्मशाने च यस्तिष्ठति स बान्धवः ।।३९।।

अन्वयाः– यः उत्सवे व्यसने दुर्भिक्षे, शत्रुसंकटे च प्राप्ते, राजद्वारे, श्मशाने च (यः) तिष्ठति स (एव) बान्धवः (भवति) ।।३९।।

व्याख्या– उत्सव इति। उत्सवे = विवाहादौ माङ्गलिके कर्मणि, (उत्सव के अवसर पर) **व्यसने** = दुःखे, आपदि (आपत्ति-दुःख में) **दुर्भिक्षे** = अन्नक्षय-संकटावसरे (अन्न के अभाव में) **शत्रुसंकटे** = शत्रुसंबाधे, शत्रुभ्यः आगते कलहादौ (शत्रु द्वारा घिर जाने पर) **राजद्वारे** = राजसभायां–न्यायाधिकरणे विवादे (राजा की सभा या न्यायालय में) **श्मशाने** = मृतबन्धोः शवदाहार्थं प्रेतावासे च (श्मशान में) **यः तिष्ठति** = सहैव विद्यमानो भवति, (जो उपस्थित रहता है) **स बान्धवः** = परिजनः, स एव बन्धुर्गण्यत इति शेषः, (स्वजन कहा गया है) ।।३९।।

हिन्दी– जो व्यक्ति विवाहादि-उत्सव, व्यसन, दुर्भिक्ष एवं शत्रुओं के आक्रमण के समय, राजसभा या न्यायालयादिकार्य के अवसर पर तथा श्मशानमें उपस्थित रहकर साथ देता है, वही यथार्थ में बन्धु होता है ।।३९।।

तदहो! अयमस्मदीयो बान्धवः। ततः कश्चित्तस्य ग्रीवायां लगति, पादौ प्रक्षालयति। अथ यावत्ते पण्डिताः दिशामवलोकनं

कुर्वन्ति, तावत्कश्चिदुष्ट्रो दृष्टः । तैश्चोक्तम् 'एतत् किम्' । तावत्तृतीयेन पुस्तकमुदघाट्योक्तम्–धर्मस्य त्वरिता गतिः । तन्नूनमेष धर्मस्तावत् ।' चतुर्थेनोक्तम्–''इष्टं धर्मेण योजयेत् ।''

अथ तैश्च रासभ उष्ट्रग्रीवायां बद्धः । तत्तु केनचित्तत्स्वामिनो रजकस्याग्रे कथितम् । यावद्रजकस्तेषां मूर्खपण्डितानां प्रहारकरणाय समायातस्तावत्ते प्रनष्टाः । ततो यावदग्रे किञ्चित्स्तोकं मार्गं यान्ति तावत्काचिन्नदी समासादिता । तस्य जलमध्ये पलाशपत्रमायातं दृष्ट्वा पण्डितेनैकेनोक्तम्–आगमिष्यति यत्पत्रं तदस्मांस्तारयिष्यति' एतत्कथयित्वा तत्पत्रस्योपरि पतितो यावन्नद्या नीयते तावत्तं नीयमानमवलोक्याऽन्येन पण्डितेन केशान्तं गृहीत्वोक्तम्–

व्याख्या– तदिति । अहो ! तत् = तस्मात् श्मशानेऽवस्थानात्, **अयं** = रासभः (गधा) **अस्मदीयः बान्धवः** = अस्माकं बन्धुः सुहृद् (यह हमारा बान्धव है) **ग्रीवायां** = कण्ठे, कन्धरायाम् (गले में) **लगति** = आलिङ्गति (आलिङ्गन करता है) । **त्वरिता** = सत्वरा (तीव्र-गतिशील) **गतिः** = गमनम् (चाल) **इष्टं** = सुहृद् मित्रं (मित्र को) **धर्मेण योजयेत्** = नियोजयेत् (धर्म से जोडना या लगाना चाहिये) ।

अथेति । बद्धः = निबद्धः (बांध दिया) **तत्तु** = तद्वृत्तान्तं (उस वार्ता को) **रजकस्य** = निर्णेजकस्य–**'निर्णेजकः स्याद्रजकः'–इत्यमरः** (धोबी के), **प्रहारकरणाय** = ताडनाय (मारने के लिये) **ते** = पण्डिताः (चारों ब्राह्मण पुत्र) **प्रनष्टा** = पलायिताः (चले गये) **स्तोकं** = स्वल्पम् (थोडी दूर) **समासादिता** = प्राप्ता (मिली) **पलाशपत्रम्** = पलाशवृक्षस्य पत्रम् (पालाशवृक्ष का पत्ता) **तारयिष्यति** = पारं करिष्यति (पार ले जायगा) **पतितः** = पपात (कूद पडा) **नद्या नीयते** = नद्या प्रवाहयते (नदी द्वारा बहाया जाने लगा) **केशाग्रम्** = केशाग्रभागम् = (चोटी) ।।

हिन्दी– अतः यह हमारा बान्धव है, उसके वचन को सुनकर कोई उस गधे के गले मिलने लगा और कोई उसके पैर धोने लगा । पश्चात् जब उन्होंने

अपनी दृष्टी इधर-उधर दौडायी तों उन्हें एक ऊँट दिखाई दिया। उसे देखते ही उन्होंने कहा-यह क्या है ?

तब तीसरे पण्डित ने अपना ग्रंथ खोलकर देखा–और कहा–'धर्म की गति तीव्र होती है' तो निश्चय ही यह धर्म होना चाहिए। तत्पश्चात् चौथे पंडित ने कहा-मित्र (इष्ट) को धर्म के साथ जोडना चाहिए।

ऐसा विचार कर उन पण्डितों ने उस गधे को ऊँट के गले में बाँध दिया। तब जब यह समाचार किसी ने गधे के मालिक धोबी को सूचित किया तब वह धोबी उन पण्डितों को मारने के लिए वहाँ पहुँचा, तब तक वे पण्डित वहाँ से चले गये थे। तत्पश्चात् वे थोडी दूर गये ही थे कि उन्हें एक नदी मिली, उसकी जल-धारा में प्रवाहित एक पलाश का पत्ता दिखाई दिया। उस पत्ते को देखकर एक पण्डित ने कहा–यह आने वाला पत्ता हमें पार कर देगा। ऐसा कहकर वह मूर्ख पण्डित नदी के जल में कूद पड़ा। जब वह नदी के प्रवाह में बहने लगा तो दूसरे पण्डित ने उसकी चोटी का अग्रभाग पकड़कर कहा–

सर्वनाशे समुत्पन्ने अर्धं त्यजति पण्डितः।
अर्धेन कुरुते कार्यं, सर्वनाशो हि दुःसहः ।।४०।।

अन्वयाः– पण्डितः सर्वनाशे समुत्पन्ने अर्धं त्यजति, अर्धेन कार्यं कुरुते, हि सर्वनाशः दुःसहः (भवति) ।।४०।।

व्याख्या– सर्वनाश इति। पंडितः = व्यवहारकुशलो जनः = (चतुर व्यक्ति) **सर्वनाशे** = सर्वस्य धनादेर्वस्तुनः नाशे समुपस्थिते = (संपूर्ण धनादि के नाश होने की स्थिति होने पर) **अर्धं त्यजति** = अर्धं धनं त्यजति, (आधे धन का त्याग कर देता है) **अर्धेन कार्यं कुरुते** = (शेष बचे आधे धन से ही अपना कार्य सम्पादित करता है) **हि** = यतः (क्योंकि) **सर्वनाशः दुःसहः** = सोढुमशक्य इति (संपूर्णनाश सहन नहीं किया जा सकता) ।।४०।।

हिन्दी– चतुर व्यक्ति सर्वनाश होने की स्थिति उत्पन्न होने पर उसके आधे भाग को छोड़ देते हैं, और आधे भाग से ही अपना काम साधते हैं। क्योंकि सर्वनाश हो जाने पर असहनीय दुःखानुभव होता है ।।४०।।

इत्युक्त्वा तस्य शिरश्छेदो विहितः।

हिन्दी– ऐसा कहकर उसने जलधारा में डूबते हुए उसका (पण्डित का) शिर काट डाला।

अथ तैश्च पश्चाद् गत्वा कश्चिद्ग्राम आसादितः। तेऽपि ग्रामीणैर्निमन्त्रिताः पृथग्-पृथग् गृहेषु नीताः। ततः, एकस्य सूत्रिका घृतखण्डसंयुक्ता भोजने दत्ता। ततो विचिन्त्य पण्डितेनोक्तं यत्– ''दीर्घसूत्री विनश्यति''। एवमुक्त्वा भोजनं त्यज्य गतः। तथा द्वितीयस्य मण्डका दत्ताः, तेनाऽप्युक्तम्–''अतिविस्तारविस्तीर्णं तद्भवेन्न चिरायुषम्''। स च भोजनं त्यक्त्वा गतः। अथ तृतीयस्य वटिका भोजने दत्ता। तत्राऽपि तेन पण्डितेनोक्तम्–''छिद्रेष्वनर्था बहुलीभवन्ति।'' एवं ते त्रयोपि पण्डिताः क्षुत्क्षामकण्ठाः, लोकैर्हास्यमानास्ततः स्थानात् स्वदेशं गताः।

व्याख्या– अथेति। तैः = हतशेषैः पण्डितैः (शेष पण्डित) **आसादितः** = प्राप्तः (मिला) **ग्रामीणैः** = ग्रामवासिभिः (ग्रामवासियों द्वारा) **निमन्त्रिताः** = भोजनार्थमामन्त्रिताः (भोजन के लिये बुलाया) **सूत्रिका** = सूत्राकृतिर्दीर्घाकारोऽपूपविशेषः (अपूपविशेष) **घृतखण्डसंयुक्ता** = घृतेन आज्येन खण्डेन शर्करया संयुक्ता मिश्रीकृता-(घी-चीनी से निर्मित) **दीर्घसूत्री** = दीर्घकालेन कार्यसम्पादकः (आलसी, छोटे कार्य को अधिक समय लगाने वाला व लम्बे सूत्रवाली वस्तु को खानेवाला) **विनश्यति** = विनाशं याति, (नष्ट हो जाता है) **अतिविस्तारविस्तीर्णं** = अतिविस्तारेण विस्तीर्णं विशालं बृहदाकारं यदन्नं भवेत् तत् चिरायुषं न भवेत् (जो वस्तु अत्यन्त विस्तृत हो, वह आयुष्य प्रदान नहीं करती) **वटिका** = पिष्टकपाचितोद्रव्यविशेषः (बड़ा, बारा) **छिद्रेषु** = छिद्रयुक्तेषु (दोषयुक्त या छिद्रयुक्त) **अनर्थाः** = आपत्तयः (आपत्तियाँ) **बहुलीभवन्ति** = प्रचुरायन्ते। **क्षुत्क्षामकण्ठाः** = क्षुधा क्षामः कण्ठः येषां ते, बुभुक्षिताः (भूखे) **हास्यमानाः** = उपहासंनीयमानाः (उपहास के पात्र बनकर) **गताः** = स्वनिवासभूमिम् गताः (अपने घर को गये)।

हिन्दी– इस प्रकार जाते हुए उन बचे हुए तीन पण्डितों को एक गाँव मिला। ग्रामवासियों ने उन पण्डितों को भोजन के लिए निमंत्रित किया, और उन्हें

पृथक्-पथक् अपने घरों में भोजन कराने के लिए ले गये। पश्चात् एक को घी और शर्करा से निर्मित सेवई भोजन में दी गई, उसे देखकर पण्डित ने विचार किया कि दीर्घसूत्री विनष्ट हो जाता है। ऐसा कहकर वह भोजन का त्यागकर चला गया। तत्पश्चात् दूसरे को भोजन में मण्ड दिया गया, तब उसने कहा जो वस्तु अत्यधिक विस्तृत हो वह आयुष्य प्रदान नहीं करती, ऐसा कहकर वह भी भोजन छोड़कर चला गया। तब तीसरे पण्डित को भोजन में बड़ा दिया गया, उसे देखकर उस पण्डित ने कहा छिद्र हो जाने पर विपत्तियाँ बढती हैं, ऐसा कहकर वह भी भोजन छोडकर चला गया। इस प्रकार वे तीनों मूर्ख पण्डित भूखे ही रह गये और लोगों के द्वारा उपहसित हुए (उपहास के पात्र हुए) अन्ततः वे विना भोजन के ही अपने देश को चले गये।

अथ सुवर्णसिद्धिराह–"यत्त्वं लोकव्यवहारमजानन्मया वार्यमाणोऽपि न स्थितः तत ईदृशीमवस्थामुपगतः। अतोऽहं ब्रवीमि–"अपि शास्त्रेषु कुशलाः" इति। तत् श्रुत्वा चक्रधर आह–अहो, अकारणमेतत् यतो हि–

व्याख्या– अथेति। लोकव्यवहारं = लौकिकव्यवहारम् लोके संसारे प्रसिद्धमाचारम्, (संसार में लोकप्रचलित व्यवहार) अत्यन्तलोभादिपरित्यागरूपमित्याशयः। (लोकव्यवहार) **वार्यमाणः** = निषिद्धः अपि (रोकेजाने पर भी) **ईदृशीं** = चक्रजन्यां पीडावस्थां-(ऐसे दुःख को) **उपगतः** = प्राप्तः।

हिन्दी– तब सुवर्णसिद्धि ने कहा–तुम लोकव्यवहार को न जानते हुए तथा मेरे द्वारा बार-बार रोके जाने पर भी नहीं रुके, इसलिए इस दशा को प्राप्त हुए। अतः मैं कहता हूँ 'अपि शास्त्रेषु कुशलाः'-इत्यादि। यह सुनकर चक्रधर ने कहा–अरे यह तो विना किसी कारण के ही मुझे प्राप्त हुआ है, क्योंकि–

सुबुद्धयो विनश्यन्ति दुष्टदैवेन नाशिताः।
स्वल्पधीरपि तस्मिंस्तु कुले नन्दति सन्ततम्।।४१।।

अन्वयः– दुष्टदेवेन नाशिताः सुबुद्धयः (अपि) विनश्यन्ति। तु तस्मिन् कुले स्वल्पधीः अपि सन्ततं नन्दति ।।४१।।

व्याख्या– सुबुद्धय इति। दुष्टदैवेन = दुर्भाग्येन (दुर्भाग्य के द्वारा)

नाशिताः = विनष्टाः (नष्ट किये हुए) **सुबुद्धयः** = धीमन्तः अपि (बुद्धिमान् विद्वान् भी) **विनश्यन्ति** = नाशं प्राप्नुवन्ति, **तु तस्मिन् कुले** = तत्रैव, (उसी कुल में) **स्वल्पधीः** = मन्दबुद्धिः (मन्दबुद्धि के व्यक्ति) **नन्दति** = मोदते (आनन्द करते हैं) ॥४१॥

हिन्दी– भाग्य प्रतिकूल होने पर बुद्धिमान् व्यक्ति भी दुःखी होते हैं, और अनुकूल भाग्य के कारण एक मूर्ख-व्यक्ति भी सदा आनन्द मनाता है ॥४१॥

उक्तं च–

अरक्षितं तिष्ठति दैवरक्षितं
सुरक्षितं दैवहतं विनश्यति ।
जीवत्यनाथोऽपि वने विसर्जितः,
कृतप्रयत्नोऽपि गृहे न जीवति ।।४२।।

अन्वयः– दैवरक्षितम् अरक्षितम् अपि तिष्ठति, (किन्तु) दैवहतं सुरक्षितं (अपि) नश्यति । वने विसर्जितः अनाथः अपि जीवति । कृतप्रयत्नः अपि गृहे न जीवित ॥४२॥

व्याख्या– अरक्षितमिति । दैवरक्षितं = दैवेन भागधेयेन पालितम् (भाग्य द्वारा रक्षित) (चेत् तदा) **तिष्ठति** = स्थितं भवति, जीवतीत्यर्थः (जीवित रहता है) **दैवहतं** = दैवेन दिष्टेन हतं नाशितं, (चेत् तदा) (भाग्य द्वारा नष्ट की हुई वस्तु) **सुरक्षितमपि** = सुष्ठु रक्षणं कृतमपि (सुरक्षित भी) **विनश्यति** = नाशं गच्छति (नष्ट हो जाती है) **वने** = अरण्ये (जंगल में) **विसर्जितः** = त्यक्तः (छोडा हुआ) **अनाथः** = सहायरहितः निराश्रयोऽपि (असहाय) **जीवति** = (जीवित रहता है) **कृतप्रयत्नोऽपि** = कृतः सम्पादितो रक्षायै प्रकृष्टो यत्नो यस्य सः- तथा विधोपि विनश्यति (अच्छी तरह प्रयत्न करने पर भी) **न जीवति** = विनश्यति । दैवं हि सर्वतोबलीय इति भावः । 'वंशस्थं वृत्तम्' ॥४२॥

हिन्दी– कवि कहता है कि–भाग्य से रक्षित होने पर कोई अरक्षित पदार्थ या प्राणी जीवित या सुरक्षित रहता है । किन्तु सम्यक् प्रकार से सुरक्षित रखने पर भी भाग्य के प्रतिकूल होने पर कोई प्राणी या पदार्थ विनष्ट हो ही जाता है ।

देखिए-घने जंगल में परित्यक्त मनुष्य भाग्य के अनुकूल रहने पर जीवित रहता है, किन्तु घर पर विविध प्रकार से सुरक्षित भी मनुष्य भाग्य के अनुकूल न होने पर जीवित नहीं रहता। अतः भाग्य ही प्रबल है ॥४२॥

तथा च–

शतबुद्धिः शिरस्थोऽयं लम्बते च सहस्रधीः।
एकबुद्धिरहं भद्रे! क्रीडामि विमले जले ॥४३॥

अन्वयः– भद्रे ! अयं शतबुद्धिः शिरस्थः, सहस्रबुद्धिः च लम्बते, (किन्तु) एक बुद्धिः अहं विमले जले क्रीडामि ॥४३॥

व्याख्या– शतबुद्धिरिति। हे! भद्रे! अयं = पुरोवर्तमानः **शतबुद्धिः** = एतन्नामा मत्स्यः (इस नाम का मत्स्य) **शिरस्थः** = शिरसि तिष्ठति (शिर पर है) **सहस्रधीः** = एतन्नामा मत्स्यश्च **लम्बते** = लम्बयित्वा नीयते मत्स्यव्याधैः (सहस्रबुद्धिनामक मछली मछुये के द्वारा लटकाकर खींची जा रही है)। **अहम्**- एकबुद्धिर्नाम मण्डूकः (एक ही बुद्धिवाला मैं) **विमले** = निर्मले **जले** = (शुद्ध जलमें) **क्रीडामि** = सानान्दं विहरामीत्यर्थः ॥४३॥

हिन्दी– हे प्रिये ! शतबुद्धि नाम का मत्स्य धीवर के शिर पर रखा है, और सहस्रबुद्धि नामक मत्स्य उसके हाथ में लटक रहा है, किन्तु एक बुद्धिवाला मैं इस निर्मल जल में विहार कर रहा हूँ। अर्थात् एक ही विचार पर दृढ रहनेवाला मैं निर्मल जल में आनन्द के साथ विहार कर रहा हूँ। (व्यक्ति को अपने सम्मुख एक ही लक्ष्य रखना चाहिए) ॥४३॥

सुवर्णसिद्धिराह–कथमेतत्! स आह–

हिन्दी– सुवर्णसिद्धि ने कहा– यह कैसे ? तब चक्रधर कहने लगा।

(६) मत्स्यमण्डूक-कथा

कस्मिंश्चिज्जलाशये शतबुद्धिः सहस्रबुद्धिश्च द्वौ मत्स्यौ निवसतः स्म। अथ तयोरेकबुद्धिर्नाम मण्डूको मित्रतां गतः। एवं ते त्रयोऽपि जलतीरे वेलायां सुभाषितगोष्ठीसुखमनुभूय, भूयोऽपि सलिलं प्रविशन्ति।

अथ कदाचित्तेषां गोष्ठीगतानां जालहस्ता धीवराः प्रभूतैर्मत्स्यैर्व्यापादितैर्मस्तके विधृतैरस्तमनवेलायां तस्मिञ्जलाशये समायाताः। ततः सलिलाशयं दृष्ट्वा मिथः प्रोचुः–"अहो! बहुमत्स्योऽयं ह्रदो दृश्यते, स्वल्पसलिलश्च। तत्प्रभातेऽत्रागमिष्यामः।" एवमुक्त्वा स्वगृहं गताः।

व्याख्या– कस्मिंश्चिदिति। जलाशये = तडागे, (सरोवर में) **शतबुद्धिः सहस्रबुद्धिश्च** = तन्नामकौ (शतबुद्धि और सहस्रबुद्धि नामके) **तयोः** = मत्सयोः (उन दोनों को) **मित्रतां गतः** = मित्रभावमुपगतः (मित्र हो गया था) **जलतीरे** = सरोवरस्य तटे (सरोवर के किनारे) **वेलायां** = समये समये, (समय-समय पर) **सुभाषितगोष्ठीसुखमनुभूय** = सुभाषितानां गोष्ठयः इति सुभाषितगोष्ठयः तासां सुखम्, सूक्तिकाव्यालापसभासुखमवाप्य (एकत्र होकर विविध सूक्ति-काव्यों की चर्चा से आनन्द प्राप्त कर लेने के पश्चात्) **भूयोऽपि** = पुनरपि (फिर से)।

अथेति। गोष्ठीगतानाम् = काव्यालापावसरे सभासु एकत्रोपविष्टानां (काव्यालाप के अवसर पर सभामें एक साथ बैठे रहने पर) **जालहस्ताः** = जालं हस्ते येषां ते जालहस्ताः, एवं भूताश्च ते धीवराः, जालपाणयः जालं हस्ते गृहीत्वा (हाथ में जाल को लेकर) **धीवराः** = निषादाः (केवट) **प्रभूतैः** = विपुलैः (बहुत सी) **व्यापादितैः** = निहतैः (मारी हुई) **मस्तके** = शिरसि (सिर पर) **विधृतैः** = न्यस्तैः (रखे हुए) **अस्तमनवेलायां** = सूर्यास्तावसरे (सूर्यास्त के समय) **जलाशये** = सरोवरे (सरोवर पर) **समायाताः** = आगताः (आये) **सलिलाशयं** = सरोवरं (सरोवर को) **दृष्ट्वा** = विलोक्य (देखकर) **प्रोचुः** =

मन्त्रयामासुः (परस्पर विचार किया) **ह्रदः** = सरोवरः (सरोवर) **स्वल्पसलिलः** = अत्यल्पजलः (बहुत थोड़ा जलवाला है) **प्रभाते** = प्रातःकाले (सुबह)।

हिन्दी– किसी सरोवर में शतबुद्धि और सहस्रबुद्धि नाम की दो मछलियाँ रहती थीं। कुछ समय के पश्चात् उन दोनों की एकबुद्धिनामक मण्डूक से मित्रता हो गई। इस प्रकार वे तीनों सरोवर के तट पर समय-समय पर गोष्ठी में सुभाषितों के आनन्द का अनुभव कर पुनः जल में चले जाते थे।

इसके पश्चात् एक दिन जब वे तीनों गोष्ठी में उपस्थित होकर काव्यालाप कर रहे थे, उसी समय सूर्यास्त के समय में मारी हुई बहुत सी मछलियों को अपने सिर पर रखे हुए कुछ धीवर उस सरोवर पर आ पहुँचे। तत्पश्चात् उस सरोवर को देखकर उन्होंने परस्पर यह मन्त्रणा की– "इस तालाब में बहुत सी मछलियाँ है और पानी भी कम है। अतः प्रातःकाल यहीं आया जायगा।" ऐसा निश्चय कर वे अपने-अपने घर चले गये॥

मत्स्याश्च विषण्णवदना मिथो मन्त्रं चक्रुः। ततो मण्डूक आह– "भोः, शतबुद्धे! श्रुतं धीवरोक्तं भवता? तत्किमत्र युज्यते कर्तुम्, पलायनमवष्टम्भो वा?

यत्कर्तुं युक्तं भवति तदादिश्यतामद्य।" तत् श्रुत्वा सहस्रबुद्धिः प्रहस्य आह–"भो मित्र! मा भैषीः, तयोः वचनश्रवणमात्रादेव भयं न कार्यम्?। न भेतव्यम्। उक्तं च–

व्याख्या– मत्स्या इति। विषण्णवदनाः = म्लानमुखाः, चिन्ताग्रस्ताः (उदास) **मिथः** = परस्परं (आपस में) **मन्त्रं** = विचारं (विचार) **चक्रुः** = विदधुः (किया) **धीवरोक्तं** = निषादकथितं (धीवरों ने कहा हुआ) **अवष्टम्भः** = अवस्थानं (ठहरना)।

यदिति। माभैषीः = भयं मा कुरु, नभेतव्यम् (डरो मत) **वचनश्रवण-मात्रादेव** = वचनस्य श्रवण एव इति वचनश्रवणमात्रम्, धीवराणां वार्तालापश्रवणेनैव (धीवरों की बातें मात्र सुनकर) **न भेतव्यम्** = (न डरो)।

हिन्दी– उन धीवरों के चले जाने पर मछलियों ने उदास होकर परस्पर

विचार करना प्रारम्भ किया। तब मेढक ने कहा–भाई शतबुद्धि ! तुमने धीवरों की बातें तो सुनी ही होगी। अब हमें इस स्थिति में क्या करना चाहिए। ऐसी स्थिति में हम अन्यत्र चलें या यहीं ठहरें।

इस परिस्थिति में जो कुछ भी उचित हो उसे शीघ्र निर्देशित करो। मेढक की बात सुनकर सहस्त्रबुद्धिने हसकर कहा–मित्र ! तुम डरो मत। उनकी बातें सुनने मात्र से ही भय-भीत नहीं होना चाहिए। कहा भी है–

सर्पाणां च खलानां च सर्वेषां दुष्टचेतसाम्।
अभिप्राया न सिध्यन्ति तेनेदं वर्तते जगत्।।४४।।

अन्वयः– सर्पाणां च खलानां च सर्वेषां दुष्टचेतसाम् अभिप्राया न सिध्यन्ति। तेन इदं जगद् वर्तते ।।४४।।

व्याख्या– सर्पाणामिति। सर्पाणां = भुजङ्गानां (सर्पों के) **खलानां** = दुष्टानां (दुष्टों के) **सर्वेषां** = समस्तानां (सभी के) **दुष्टचेतसां** = क्रूर हृदयानां-दयाहीनानां वा (दुष्टजनों के) **अभिप्रायाः** = मनोरथाः (मनोरथ) **न सिध्यन्ति** = सिद्धिं न प्राप्नुवन्ति, (सफल नहीं होते) **तेन** = हेतुना-अनेनकारणेन (उस कारण से) **जगत्** = अयं लोकः (यह विश्व) **वर्तते** = जीवति (चल रहा है) ।।४४।।

हिन्दी– सर्पों के, दुष्टों के तथा मलीन विचारों वाले मनुष्यों की अभिलाषाएँ इस संसार में सफल नहीं होती हैं, इसीलिए यह संसार आज चल रहा है ।।४४।।

तत्तावत्तेषामागमनमपि न संपत्स्यते। भविष्यति वा तर्हि त्वां बुद्धिप्रभावेणात्मसहितं रक्षयिष्यामि। यतोऽनेकां सलिलचर्यामहं जानामि। तदाकर्ण्य शतबुद्धिराह–"भोः युक्तमुक्तं भवता। सहस्त्रबुद्धिरेव भवान् अथवा साध्विदमुच्यते–

व्याख्या– तत्तावदिति। तेषां = धीवराणां (मच्छुआरों का) **न संपत्स्यते** = न भविष्यति (उसका आगमन नहीं होता) **बुद्धिप्रभावेण** = बुद्धिबलेनस्वबुद्ध्या (अपनी बुद्धि की शक्ति से) **आत्मसहितं** = स्वात्मसहितं-(अपने साथ) **सलिलगतिचर्याम्** = सलिले जले या गतिश्चलनं तस्याः चर्यां

प्रकार— मित्यर्थः (जल में चलने की कला) **जानामि** = अवगच्छामि (जानता हूँ)।

हिन्दी– मण्डूक के उक्त वचन को सुनकर सहस्रबुद्धि ने कहा– मेरे विचार में उन धीवरों का आगमन ही नहीं होगा। यदि हुआ भी तो मैं अपनी बुद्धि के प्रभाव से अपने साथ ही तुम्हारी भी रक्षा करुँगा। क्योंकि मैं जलमें संचरण करने की विविध कलाओं को जानता हूँ। उसके इस वचन को सुनकर शतबुद्धि ने कहा–अरे ! आपने ठीक ही कहा है–क्योंकि आप तो यथार्थ में सहस्रबुद्धि हैं। अथवा यह ठीक ही कहा गया है–

बुद्धेर्बुद्धिमतां लोके नाऽस्त्यगम्यं हि किञ्चन।
बुद्ध्या यतो हता नन्दाश्चाणक्येनासिपाणयः ।।४५।।

अन्वयः– लोके बुद्धिमतां बुद्धेः किञ्चन अगम्यं नास्ति। हि यतः चाणक्येन बुद्ध्या असिपाणयाः (अपि) नन्दाः हताः ।।४५।।

व्याख्या– बुद्धेर्बुद्धिमतामिति। लोके = संसारे (संसार में) **बुद्धिमताम्** = मतिमताम्, **बुद्धेः किञ्चन** = किञ्चिदपि वस्तुजातम्, **अगम्यम्** = असाध्यम्, **हि यतः** = निश्चयेन, यस्मात् कारणात् (निश्चय ही-क्योंकि) **चाणक्येन** = कौटिल्येन चन्द्रगुप्तस्य प्रधानामात्येन, (चन्द्रगुप्त के प्रधानमंत्री ने) **बुद्ध्या** = बुद्धिबलेनैव (अपनी बुद्धि के बल से ही) **असिपाणयः** = असिः पाणौ येषां ते खड्गहस्ताः (शस्त्रयुक्त) **नन्दाः हताः** = मारिताः (नंदवंशीय राजा मारे गये थे) नन्दवंशोत्पनाः नव राजानो महाबलिनोऽपि चाणक्येन कुटिलनीत्या हता इतीयमतिप्रसिद्धा कथा पुराणादिषु ।।४५।।

हिन्दी– इस संसार में बुद्धिमानों की बुद्धि के लिये कुछ भी असंभव नहीं है। उनके लिये कोई भी स्थान अगम्य नहीं है। क्योंकि चाणक्य ने अपनी बुद्धि के बल से खड्गधारी समस्त नन्दवंशीय राजाओं को मार दिया था ।।४५।।

तथा च–

न यत्राऽस्ति गतिर्वायो रश्मीनां च विवस्वतः।
तत्राऽपि प्रविशत्याशु बुद्धिर्बुद्धिमतां सदा ।।४६।।

अन्वयः– यत्र वायोः विवस्वतः रश्मीनां च गतिः नास्ति, तत्रापि बुद्धिमतां बुद्धिः सदा आशु प्रविशति ॥४६॥

व्याख्या– न यत्रेति । यत्र = यस्मिन् स्थाने (जहाँ पर) **वायोः** = वातस्य (वायु का) **विवस्वतः** = सूर्यस्य (सूर्य की) **रश्मीनां** = किरणानां (किरणों की) **गतिः** = सञ्चरणं-प्रवेशः वा **नास्ति** = न भवति (नहीं होता) **तत्रापि** = तस्मिन्नपि स्थाने (जगह पर) **बुद्धिमतां** = धीमतां (बुद्धिमानों की) **बुद्धिः** = मतिः (बुद्धि) **सदा** = नित्यं, **आशु** = शीघ्रम् (शीघ्र) **प्रविशति** = संचरति, (प्रवेश कर लेती है) ॥४६॥

हिन्दी– जिस स्थान पर वायु और सूर्य की किरणों का भी प्रवेश नहीं हो पाता है, वहाँ बुद्धिमानों की बुद्धि शीघ्र ही प्रविष्ट हो जाती है ॥४६॥

ततो वचनश्रवणमात्रादपि पितृपर्यायागतं जन्मस्थानं त्यक्तुं न शक्यते । उक्तं च–

व्याख्या– तत इति । ततः = अतः (इसलिए) **वचनश्रवण-मात्रात्** = कथनश्रवणमात्रेणैव (उनके कहने मात्रसे) **पितृपर्यायागतं** = कुलक्रमागतं (कुल क्रमागत) **जन्मस्थानं** = जन्मभूमिं (जन्मभूमि को) **त्यक्तुं** = परित्यक्तुं (छोडना) **न शक्यते** = न युज्यते (समुचित नहीं है) कहा भी है ।

हिन्दी– इसलिए केवल बात सुनकर बाप-दादों से चला आता हुआ जन्मस्थान छोडना ठीक नहीं है । कहा भी है–

न तत्स्वर्गेऽपि सौख्यं स्याद्दिव्यस्पर्शेन शोभने ।
कुस्थानेऽपि भवेत्पुंसां जन्मनो यत्र संभवः ।।४७।।

अन्वयः– शोभने स्वर्गेऽपि दिव्यस्पर्शेन तत्सौख्यं न स्यात्, यत्र जन्मनः संभवः कुस्थानेऽपि भवेत् ॥४७॥

व्याख्या– न तदिति । शोभने = रमणीये, (सुन्दर) **स्वर्गे** = देवलोके (स्वर्ग में) **दिव्यस्पर्शेन** = दिव्यानां रूपरसगन्धादिविषयाणां स्पर्शनेन भोगेन (दिव्य रूप-रस-गन्धादि संयुक्त विषयों के स्पर्श से तथा उनके उपभोग से) **तत्** = तादृशं **सौख्यं** = आनन्दो तत्र न भवति (वह सुखानन्द) **पुंसां** = नराणां

(मनुष्यों का) **जन्मनः सम्भवः** (जन्म स्थान) **तत्र-कुस्थानेऽपि** = नीचे घृणितेऽपि स्थाने (नीच या घृणित स्थान में) **भवेत्** = जायते (होता है) जन्मस्थाने हि दिव्यलोकापेक्षयाऽपि नितान्तं सौख्यं भवतीतिभावः ॥४७॥

हिन्दी– अत्यन्त रमणीय स्वर्गादि लोकों में देवांगनाओं के रूप-रस-गन्धादि संयुक्त स्पर्श से वह सुख नहीं प्राप्त होता है, जो मनुष्यको अपने जन्मस्थान में अनायास ही प्राप्त होता है, चाहे वह स्थान कष्टदायक ही क्यों न हो ? तात्पर्य यह है कि जन्मभूमि में जो आनन्द मिलता है, वह स्वर्ग में भी नहीं मिलता ॥४७॥

तन्न कदाचिदपि गन्तव्यम् । अहं त्वां बुद्धिप्रभावेण रक्षयिष्यामि ।

मण्डूक आह–"भद्रौ ! मम तावदेकैव बुद्धिः पलायनपरा । तदहमन्यं जलाशयमद्यैव सभार्यो यास्यामि ।" एवमुक्त्वा स मण्डूको रात्रावेवाऽन्यजलाशयं गतः ।

धीवरैरपि प्रभाते आगत्य, जघन्यमध्यमोत्तमजलचराः मत्स्यकूर्म-मण्डूककर्कटादयो गृहीताः । तावपि शतबुद्धिसहस्रबुद्धी सभार्यौ पलायमानौ चिरमात्मानं गतिविशेषविज्ञानैः कुटिलचारेण रक्षन्तौ जाले निपतितौ, व्यापादितौ च ।

व्याख्या– मण्डूक इति । मण्डूक आह = मण्डूकेन कथितम् (मण्डूक ने कहा) **भद्रौ !** महाशयौ ! **पलायनपरा** = पलायनं परं यस्याः सा, अन्यत्र गमनपरा, **सभार्यः** = भार्यया सहितः (पत्नी के साथ) **यास्यामि** = गमिष्यामि (जाऊँगा) ।

धीवरैरिति । धीवरैः = निषादैः (केवटों ने) **जघन्यमध्यमोत्तमजल-चराः** = चरन्ति इति चराः, जलस्य चराः जलचराः, जघन्याश्च मध्यमाश्च उत्तमाश्च इति जघन्यमध्यमोत्तमाः, लघुमध्यमोत्तमजलजीवाः (छोटे-बड़े तथा मध्यम समस्त जलचरों को) **सभार्यौ** = सपत्नीकौ (पत्नियों के साथ) **चिरं** = बहुसमयपर्यन्तम् (दीर्घ समय तक) **गतिविशेषविज्ञानैः** = जलतरण-विधिज्ञानविशेषैः (जल में संचरण करने की विविध तरीकों को जानने से)

कुटिलचारेण = वक्रगत्या (वक्र गति से) **रक्षन्तौ** = त्रायन्तौ (बचाते हुए) **जाले निपतितौ** = पतितौ (गिर गये और) **व्यापादितौ** = निहतौ (मारे गये)।

हिन्दी– अतः तुम्हें अपनी जन्मभूमि का त्याग करके कहीं अन्यत्र नहीं जाना चाहिए। मैं अपनी बुद्धि के प्रभाव से तुम्हारी रक्षा करुंगा। शतबुद्धिमत्स्य की बात सुनकर मण्डूक ने कहा–"मत्स्यद्वय- महाशयों ! मैं एक ही बुद्धिवाला हूँ अतः यहाँ से अन्यत्र चला जाना उचित समझता हूँ। मैंने तो निश्चय कर लिया है कि अपनी पत्नी के साथ आज ही किसी दूसरे जलाशय में चला जाऊँगा।" यह कहकर वह मण्डूक रात में ही दूसरे जलाशय में चला गया।

दूसरे दिन प्रातः वेला में उन धीवरों ने आकर छोटे-बड़े और मध्यम आकार के मत्स्यों कछुओं, मेढक तथा केकडों आदि समस्त जलचरों को पकड़ लिया। शतबुद्धि और सहस्त्रबुद्धि ने भी अपनी-अपनी पत्नियों के साथ इधर-उधर पलायन करते हुए जल में संचरण करने की विविध-कलाओं के अपने ज्ञान के कारण वक्रगमन के द्वारा स्वयं को बहुत देर तक सुरक्षित रखने का प्रयत्न किया, किन्तु अन्तमें वे दोनों जाल में बन्ध गये और मार दिये गये।

अथऽपराह्णसमये प्रहृष्टास्ते धीवराः स्वगृहं प्रति प्रस्थिताः। गुरुत्वाच्चैकेन शतबुद्धिः स्कन्धे कृतः। सहस्त्रबुद्धिः प्रलम्बमानो नीयते। ततश्च वापीकण्ठोपगतेन मण्डूकेन तौ तथा नीयमानौ दृष्ट्वा अभिहिता स्वपत्नी–"प्रिये ! पश्य पश्य–

शतबुद्धिः शिरस्थोऽयं, लम्बते च सहस्त्रधीः।
एकबुद्धिरहं भद्रे ! क्रीडामि विमले जले।'

अतश्च "वरं बुद्धिर्न सा विद्या" यद्भवतोक्तं तत्रेयं मे मतिर्यत् न एकान्तेन बुद्धिरपि प्रमाणम्।"

सुवर्णसिद्धिः प्राह–यद्यप्येतदस्ति, तथाऽपि मित्रवचनं न लंघनीयम्। परं किं क्रियते, निवारितोऽपि मया न स्थितोऽसि, अतिलौल्यात् विद्याहङ्काराच्च। अथवा साध्विदमुच्यते–

व्याख्या– अथेति। अपराह्णसमये = सायंकाले-दिवसस्य अन्तिमे प्रहरे-(दोपहर के बाद) **गुरुत्वात्** = भाराधिक्यात् (भारी होने से) **वापीकण्ठोप-**

गतेन = वापीतटोपविष्टेन, वापी दीर्घिका तस्याः कण्ठः सामीप्यं तदुपगतेन (वापी के तट पर बैठे हुए) **तौ** = शतबुद्धि-सहस्रबुद्धिनामकौ मत्स्यौ (उन दोनों मत्स्यों) **अभिहिता** = कथिता-(कहा) **स्वपत्नी** = स्वभार्या (अपनी पत्नी से)।

अत इति । नैकान्ते = एकान्तभावेन बुद्धिरपि न प्रमाणम्। कदाचित् प्रबले दैवे बुद्धिकुण्ठतादर्शनादित्यर्थः (केवल बुद्धि ही किसी कार्य की सिद्धि में प्रमाण नहीं है)।

सुवर्णसिद्धिरिति । प्रमाणम् = निर्णायकम् (निर्णायक) **न लङ्घनीयम्** = नोल्लङ्घनीयम् (उल्लंघन नहीं करना चाहिए) **निवारितोऽपि** = वर्जितोऽपि (मना करने पर भी) **अतिलौल्यात्** = अतिलोभात् (लोभवश) **विद्याहंकाराच्च** = विद्याभिमानात् (विद्या के अभिमान से)।

हिन्दी– इसके पश्चात् दिन के अन्तिम प्रहर में प्रसन्न हुए वे सभी धीवर अपने घर की ओर जाने लगे। तब एक धीवर ने भारी होने के कारण शतबुद्धि को अपने कन्धों पर रख लिया और सहस्रबुद्धि को लटका लिया। तब वापी के तट पर बैठे हुए मण्डूक ने उस धीवर के द्वारा ले जाते हुए उन दोनों को देखकर अपनी पत्नी से कहा–प्रिये ! देखो-देखो, यह शतबुद्धि शिर पर है और यह सहस्रबुद्धि लटक रहा है। और भद्रे ! देखो, मैं एक बुद्धि इस निर्मल जल में आनन्द से विहार कर रहा हूँ।

अतः मैं कहता हूँ–'बुद्धि अच्छी है, विद्या नहीं।''–यह जो आप कहते हैं, उस विषय में मेरा यह विचार है कि एकमात्र बुद्धि ही कार्य की सफलता में प्रमाण नहीं है।

तत्पश्चात् सुवर्णसिद्धि ने कहा–यद्यपि ऐसा है, तथापि मनुष्य को अपने मित्र का आग्रह नहीं टालना चाहिये। किन्तु क्या किया जाय, मेरे द्वारा रोके जाने पर भी, लोभवश तथा विद्याजनित अहंकार से मेरा कहना आपने नहीं माना। अथवा यह ठीक ही कहा गया है–

साधु मातुल ! गीतेन, मया प्रोक्तोऽपि न स्थितः।
अपूर्वोऽयं मणिर्बद्धः सम्प्राप्तं गीतलक्षणम्।।४८।।

अन्वयः– हे मातुल ! गीतेन साधु, मया प्रोक्तः अपि न स्थितः (अतः) अयम् अपूर्वः मणिः बद्धः (इदानीं भवता) गीतलक्षणं संप्राप्तम् ॥४८॥

व्याख्या– साध्विति । हे मातुल ! गीतेन = गानेन (गाना) **साधु** = अलम् = भद्रं कल्याणमस्तु, **मया प्रोक्तोऽपि** = संकेतेन बोधितोऽपि, (मेरे द्वारा संकेत देने पर भी) **त्वं न स्थितः** = नैव रुद्धः, मौनं नाश्रितवानसि, (मेरे द्वारा रोके जाने पर भी, गान बंद नहीं किया, मौन न हुए) **अयमपूर्वः** = अत्युद्भुतः-गलस्थः अपूर्वः मणिः रत्नम् (ओखलरूपीरत्न) **बद्धः** = धृतः, **त्वया गीतलक्षणं** = गीतस्य गानस्य लक्षणं चिह्नं पुरस्काररूपं सम्प्राप्तम् (गीत का पुरस्कार, तुमको मिल गया) ॥४८॥

हिन्दी– हे मातुल ! मैंने आपको गीत गाने से रोका था, किन्तु आपने मेरे द्वारा रोकेजाने पर भी गीत गाना बन्द नहीं किया, अब इस अपूर्व मणि को गले में बांध दिया गया है । वस्तुतः अब आपने गाने का यथार्थ रूप में पुरस्कार प्राप्त कर लिया है ॥४८॥

चक्रधर आह– कथमेतत् ? सोऽब्रवीत्–

हिन्दी– चक्रधर ने पूछा–यह कैसे ? तब सुवर्णसिद्धि ने कहा–

(७) रासभ-शृगाल-कथा

कस्मिंश्चिदधिष्ठाने उद्धतो नाम गर्दभः प्रतिवसति स्म । सः सदैव रजकगृहे भारोद्वहनं कृत्वा रात्रौ स्वेच्छया पर्यटति । ततः प्रत्यूषे बन्धनभयात्स्वयमेव रजकगृहमायाति । रजकोऽपि ततस्तं बन्धनेन नियुनक्ति ।

अथ तस्य रात्रौ क्षेत्राणि पर्यटतः, कदाचिच्छृगालेन सह मैत्री सञ्जाता । स च पीवरत्वाद् वृतिभङ्गं कृत्वा कर्कटिकाक्षेत्रे शृगालसहितः प्रविशति । एवं तौ यदृच्छया चिर्भटिका भक्षणं कृत्वा, प्रत्यहं प्रत्यूषे स्वस्वस्थानं व्रजतः ।

अथ कदाचित्तेन मदोद्धतेन रासभेन क्षेत्रमध्यस्थितेन शृगालोऽभिहितः—"भोः भगिनीसुत ! पश्य-पश्य, अतीव निर्मला रजनी, तदहं गीतं करिष्यामि तत्कथय कतमेन रागेण करोमि ?"

व्याख्या— कस्मिंश्चिदिति । रजकगृहे = निर्णेजकभवने (धोबी केघर में) **भारोद्वहनं** = वस्त्रादिभारानयनम् (कपडे का गट्ठर ढोना) **रात्रौ** = निशायाम् (रात्रि में) **स्वेच्छया** = यथेच्छम् (अपनी रुचि के अनुसार) **पर्यटति** = भ्रमति (घूमा करता था)। **प्रत्यूषे** = प्रातःकाले (सुबह होते ही) **बन्धनभयात्** = शृङ्खलादिबन्धनदण्डप्रहारादिभयात् (बांधे जाने या दण्डे से मारखाने के भय से) **आयाति** = स्वभवनमायाति, आगच्छति (घर लौट आता था) **नियुनक्ति** = बध्नाति (बाँध देता था)।

अथेति । तस्य = गर्दभस्य, **क्षेत्राणि पर्यटतः** = क्षेत्राणि परिभ्रमतः (खेतों में चरते-चरते, घूमते-घूमते) **शृगालेन सह** = जम्बुकेन साकम् (शृगाल के साथ) **पीवरत्वात्** = स्थूलत्वात् (स्थूल होने के कारण) **वृत्तिभंगम्** = क्षेत्रावरणभेदनम् (खेत के घेरों को तोड़कर) **कर्कटिका** = उर्वारुः (ककडी) **तौ** = रासभशृगालौ (वे दोनों गदहा और शृगाल) **चिर्भटिका** = कर्कटिका (ककडी) **व्रजतः** = गच्छतः (चले जाते थे)।

अथेति । मदोद्धतेन = मदोन्मत्तेन (मस्त-उद्धत) **क्षेत्रमध्यस्थितेन** = क्षेत्रान्तर्गतेन (खेत में स्थित होकर) **भगिनीसुत** = भागिनेय, **निर्मला** = धवला (प्रकाशयुक्त नितान्त स्वच्छ) **रजनी** = निशा (रात है) **गीतं** = गानम् (गीत) **करोमि** = गातुमिच्छामि (गाना चाहता हूँ) ।

हिन्दी– किसी स्थान में उद्धत नाम का एक गदहा रहता था । वह रोज धोबी के घर में पूरे दिन बोझा ढोने के पश्चात् रात्रि में स्वेच्छासे यत्र-तत्र घूमता रहता था । और प्रातः–काल होते ही बाँधे जाने के भय से धोबी के घर स्वयं ही लौट आता था, और धोबी भी उसे बाँध देता था ।

किसी दिन रात्रि के समय में जब वह गधा खेतों में घूम रहा था कि उसकी एक शृगाल के साथ मित्रता हो गई । शरीर से अत्यधिक स्थूल हो जाने के कारण वह गधा खेतों में निर्मित घेरों को तोड़कर शृगाल के साथ खेतों में प्रविष्ट हो जाता था । दोनों ही यथेष्ट ककडियों को खा लेने के पश्चात् प्रातःकाल होते ही अपने-अपने स्थानों पर लौट आते थे ।

किसी दिन उस उन्मत्त गन्धे ने ककडी के खेत में उस शृगाल से कहा– हे भाञ्जे ! देखो यह रात कैसी मनमोहक है, मैं गीत गाना चाहता हूँ, तो कहो, किस राग में गानागाऊँ ?

स आह–माम ! किमनेन वृथाऽनर्थप्रचालनेन ? यतश्चौरकर्म-प्रवृत्तावावाम् निभृतैश्च चौरजारैरत्र स्थातव्यम् । उक्तंच–

व्याख्या– स इति । माम ! मातुल (मामा) **वृथा** = व्यर्थम्, **अनर्थप्रचालनेन** = विपत्सङ्घटनेन (अनावश्यक विपत्ति को एकत्र करने से क्या लाभ ?) **चौरकर्मप्रवत्तौ** = स्तेय कर्मणि व्यापृतौ (चोरी के कर्म में लगे हुए हैं) **निभृतैः** = निगूढैः (चुपचाप) **चौरजारैः** = चौरैर्जारैश्च (चोर और परस्त्रीगामियों को) **स्थातव्यम्** = भवितव्यम् (रहना चाहिए) (जार = उपपति) ।

हिन्दी– गधे की बात सुनकर शृगाल ने कहा–मामा ! यह व्यर्थ की विपत्ति क्यों बुला रहे हो ? इस समय हम दोनों चौर्य-कर्म में लगे हुए हैं, चोर तथा व्यभिचारी को सदैव चुपचाप (शान्त) रहना चाहिए । कहा भी है–

कासयुक्तस्त्यजेच्चौर्यं निद्रालुश्चेत्स पुंश्चलीम् ।
जिह्वालौल्यं रुजाक्रान्तो जीवितं योऽत्र वाञ्छति ।।४९।।

अन्वयः– यः अत्र जीवितं वाञ्छति, कासयुक्तः चौर्यं त्यजेत्, निद्रालुः पुंश्चलीम् (त्यजेत्) रुजाक्रान्तः जिह्वालौल्यं त्यजेत् ।।४९।।

व्याख्या– कासयुक्त इति । यः = यो पुरुषः (जो पुरुष) **अत्र** = संसारे (संसार में) **जीवितं**= प्राणधारणं-जीवनं (जीवन) **वाञ्छति** = अभिलषति (चाहता है) **सः कासयुक्तः** = कासरोगेणाक्रान्तश्चेत् **चौर्यम्** = स्तेयकर्म (चोरी) **निद्रालुः** = निद्रया आतुरः (अधिक सोने वाला) **पुंश्चलीं** = व्यभिचारिणीं स्त्रीं (व्यभिचारिणी स्त्री को) **रुजाक्रान्तः** = रोगेण ज्वरादिना आक्रान्तः ग्रस्तः (रोगी) **जिह्वालौल्यम्** = रसनाचापल्यम्, अपथ्यकरम् (अपथ्य या जीभ की चंचलता को) **त्यजेत्** = परिहरेत् (त्याग दे) अन्यथैतेषां महाननर्थः सम्पद्यत इतिभावः ।।४९।।

हिन्दी– जो मनुष्य इस संसार में जीवित रहना चाहता है, वह यदि कास-(कफ-खाँसी) के रोग से ग्रस्त हो, तो उसे चोरी नहीं करनी चाहिए (क्योंकि खाँसी के शब्द से घरवाले जगजाने पर पकडे जाने का भय रहेगा) अधिक सोनेवाले पुरुष को परस्त्रीगमन नहीं करना चाहिए (क्योंकि सूर्योदय होने पर मानभंग होने का भय रहेगा) और रोगी को अपनी जिह्वा पर अंकुश रखना चाहिए (क्योंकि पथ्य न होने से मृत्यु का भय रहेगा) ।।४९।।

अपरं त्वदीयं गीतं न मधुरस्वरम् । शङ्खशब्दानुकारं दूरादपि श्रूयते । क्षेत्रे रक्षापुरुषाः सुप्ताः सन्ति । ते उत्थाय वधं बन्धनं वा करिष्यन्ति । तद्भक्षय तावदमृतमयीश्चिर्भटीः । मा त्वमत्र गीतव्यापार-परो भव । तच्छ्रुत्वा रासभ आह–भोः, वनाश्रयत्वात्त्वं गीतरसं न वेत्सि, तेनैतद् ब्रवीषि ।उक्तं च–

व्याख्या– अपरमिति । त्वदीयं गीतं न मधुरस्वरम् = न कर्णसुखकरम्, न मनोहरम् (मधुर-कर्णसुखद नहीं है) **शङ्खशब्दानुकारम्** = शङ्खस्य शब्दः इति शङ्खशब्दः तम् अनुकरोतीति, शङ्खध्वनिसदृशम् (शंखध्वनि की तरह) **रक्षापुरुषाः** = क्षेत्रपालाः (खेत के रखवाले) **अमृतमयीः** = अमृततुल्याः-

अमृततुल्यमधुरा: (अमृत की तरह मीठी) **गीतव्यापारपरः** = गानतत्पर: (गीतगाने में प्रवृत्त) **वनाश्रयत्वात्** = वने चरत्वात् (जंगली होने के कारण) **गीतरसम्** = सङ्गीतमाधुर्यम् = (संगीत के रस को) **नवेत्सि** = न जानासि (नहीं जानते हो, उससे अपरिचित हो)।

हिन्दी– शृगाल ने गधे से कहा–एक बात और है, तुम्हारा गीत मनमोहक नहीं होता। वह केवल शङ्ख की ध्वनि की तरह (कठोर) दूर से ही सुनाई देता है, और यहाँ पर इस खेत के रखवाले-रक्षा करने वाले, पुरुष सोये हुए हैं, वे उठकर शीघ्र ही मारना प्रारंभ कर देंगे अथवा बांधे देंगे। अत: शान्तरीति से अमृत की तरह रुचिकर-मधुर-ककडी को खाओ। यहाँ पर गाने के चक्कर में मत पड़ो। इस पर गधे ने कहा–तुम जंगली होने के कारण गाने की मिठास नहीं जानते हो। इसलिए यह बात कहते हो। देखो, कहा भी गया है–

शरज्ज्योत्स्नाहते दूरं तमसि प्रियसन्निधौ।
धन्यानां विशति श्रोत्रे गीतझङ्कारजा सुधा ।।५०।।

अन्वयः– तमसि दूरं शरज्ज्योत्स्नाहते, प्रियसन्निधौ धन्यानां श्रोत्रे गीतझङ्कारजा सुधा विशति ।।५०।।

व्याख्या– शरदिति। तमसि = अन्धकारे (अंधकार) **दूरम्** = अत्यर्थं, **शरज्ज्योत्स्नाहते** = शरदि या ज्योत्स्ना चन्द्रिका तया हते विनाशिते सति (शरद् ऋतु की चांदनी से अंधकार के मिट जाने पर) **प्रियसन्निधौ** = प्रियस्य कान्तादेर्जनस्य सन्निधौ समीपे, प्रियतमा समीपे (प्रिय जनों के सान्निध्य में) **गीतझंकारजा** = गीतस्य गानस्य यो झंकार: मधुरशब्द: तज्जा **सुधा** = पीयूषं (संगीतांमृत) **धन्यानाम्** = पुण्यकृतामेव (पुण्यवानों के) **श्रोत्रे** = कर्णे (कान में) **विशति** = प्रविशति ।।५०।।

हिन्दी– शरत्कालीन चाँदनी से जब रात्रि का अंधकार अत्यन्त दूर हो जाता है और अपना प्रेमी-प्रियतम अपने निकट रहता है, उस समय पुण्यवानों के ही कानों में संगीत की माधुरी का आनन्द प्रवेश करता है ।।५०।।

शृगाल आह–"माम ! अस्त्येतत्, परं न वेत्सि त्वं गीतम् । केवलमुन्नदसि । तत्किं तेन स्वार्थभ्रंशकेन ?"

रासभ आह–धिङ्मूर्ख ! किमहं न जानामि गीतम् ? तद्यथा तस्य भेदान् शृणु–

व्याख्या– शृगालइति । अस्त्येतत् = सत्यमेतत् (यह सत्य है) **न वेत्सि गीतम्** = गानस्य माधुर्यं न जानासि (तुम संगीतकला को नहीं जानते हो) **उन्नदसि** = उच्चस्वरेण शब्दं करोषि (केवल उच्चस्वर से चिल्लाते हो) **स्वार्थभ्रंशनेन** = स्वार्थविघातेन (स्वार्थ का विघात करने से) **भेदान्** = संगीतशास्त्रस्यावान्तरभेदान् (संगीतशास्त्र के अवान्तर भेद) ।

हिन्दी– गधे की बात सुनकर शृगाल ने कहा-मामा ! तुम सत्य कहते हो, परन्तु तुम संगीत-कला को नहीं जानते हो केवल उच्चस्वर से चिल्लाना जानते हो, अत: व्यर्थ ही अपने स्वार्थ को नष्ट न करो, स्वार्थ की हानि करने से क्या लाभ ?

यह सुनकर गधे ने कहा–मूर्ख ! तुम्हें धिक्कार है, क्या मैं संगीत की कला को नहीं जानता ? गीत के अवान्तर भेदों को मुझसे सुनो–

सप्तस्वरास्त्रयो ग्रामा मूर्च्छनाश्चैकविंशतिः ।
तानास्त्वेकोनपञ्चाशत्तिस्रो मात्रा लयास्त्रयः ।।५१।।

अन्वयः– सप्तस्वराः, त्रयःग्रामाः, एकविंशतिः मूर्च्छनाः एकोनपञ्चाशत् तानाः तिस्रः मात्राः त्रयः लयाः च ।।५१।।

व्याख्या– सप्तेति । सप्तस्वराः = स्वराः निषादर्षभगान्धारषड्जमध्यमधैवताख्याः सप्तस्वरभेदाः (षड्[1]ज, ऋ[2]षभ, गा[3]न्धार, म[4]ध्यम, प[5]ञ्चम, धै[6]वत, नि[7]षाद) ये स्वर के सात भेद हैं) **त्रयः** षड्जग्रामः मध्यमग्रामः, निषादग्राम इति नामानस्त्रय इत्यर्थः (ये स्वरों के समूह हैं) **मूर्च्छनाः** स्वराणामारोहावरोहक्रमरूपाः एकविंशतिः, (स्वरों के आरोहावरोहक्रमको मूर्च्छना कहते हैं) **तानाः** = तालाः, तालाः तु एकोनपञ्चाशत् (४९ तालों के भेद हैं) **मात्राः तिस्रः** = ह्रस्वदीर्घप्लुताख्याः (ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत-तीन मात्राएँ होती हैं) **लयाः त्रयः** भवन्ति (तीन लय होती हैं) ।।५१।।

हिन्दी– सङ्गीतशास्त्र के अनुसार सात स्वर, तीन ग्राम, इक्कीस मूर्छनाएँ, उनचास ताने, तीन मात्राएँ तथा तीन लय होती हैं ॥५१॥

स्थानत्रयं यतीनां च षडास्यानि रसा नव।
रागाः षट्त्रिंशतिर्भावाश्चत्वारिंशत्ततः स्मृताः ॥५२॥

अन्वयः– स्थानत्रयमिति । स्थानम् = स्वरनिर्गमस्थानम्, त्रयं स्थानत्रयम् उरः, कण्ठः शिरस्त्र्यः स्थानभेदाः, (उर, कण्ठ तथा शिर-तीन स्थानों के भेद हैं) **यतीनाम्** = विरामाणाम् स्थानत्रयम् (३-यती के भेद हैं) **आस्यानि** = मुखानि (मुख ये ६ हैं) **रसाः** = नवरसभेदाः (शृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, भयानक, वीर, वीभत्स, अद्भुत तथा शान्त-ये नव सर के भेद हैं) **रागाः** = रागिण्यः (रागिनियाँ) (३६ रागों के भेद हैं) **चत्वारिंशत्** = चत्वारिंशत्सङ्ख्याकाः भावाः (४० प्रकार के भावों के भेद हैं) ये रसानुद्भावयन्ति ते भावाः ॥५२॥

हिन्दी– स्वरों के उद्गमस्थान तीन होते हैं, यति तीन प्रकार की होती है, आस्य के ६ प्रकार हैं, रस नव प्रकार के हैं, रागों के भेद ३६ हैं, और भाव ४० प्रकार के हैं ॥५२॥

पञ्चाशीत्यधिकं ह्येतद्गीताङ्गानां शतं स्मृतम्।
स्वयमेवपुरा प्रोक्तं भरतेन श्रुतेः परम् ॥५३॥

अन्वयः– एतत् हि गीताङ्गानां पञ्चाशीत्यधिकं शतं स्मृतम् (एतच्च) श्रुतेः परं पुरा स्वयमेव भरतेन एव प्रोक्तम् ॥५३॥

व्याख्या– पञ्चाशीतीति । एतत् = पूर्वोक्तम् (पूर्व में कथित) **हि** = निश्चयेन, **गीताङ्गानां** = गीतभेदानां गीतस्य अङ्गानां पञ्चाशीत्यधिकं शतं (१८५) **स्मृतम्** = कथितम्, **श्रुतेः परं** = वेदस्य सारभूतं तत्त्वं, श्रवणसुखदं वा (मधुर) **प्रोक्तं** = कथितम् (कहा है।) **पुरा** = पूर्वस्मिन् काले (प्राचीनकाल में) **स्वयमेव** = निजमुखात्- **भरतेन** = नाट्यशास्त्रप्रणेत्रा (भरत नामके मुनिने) प्रोक्तं कथितम् ॥५३॥

हिन्दी– इस प्रकार संगीत शास्त्र के एक सौ पचासी भेद भरतमुनि के द्वारा अपने मुख से स्वयं ही कहे गये हैं, जो पंचम वेदस्वरूप तथा श्रवणसुखद संगीत शास्त्र के सारभूत तत्त्व हैं ॥५३॥

नान्यद्गीतात्प्रियं लोके देवानामपि दृश्यते ।
शुष्कस्नायुस्वराह्लादात् त्र्यक्षं जग्राह रावणः ।।५४।।

अन्वयः– लोके देवानाम् अपि गीतात् अन्यत् प्रियं न दृश्यते, (यतः) रावणः शुष्कस्नायुस्वराह्लादात् त्र्यक्षं जग्राह ।।५४।।

व्याख्या– नान्यदिति । लोके = संसारे (संसारे में) **देवानामपि** = अमराणामपि **गीतात् अन्यत्** = अपरं **प्रियम्** = आनन्दकारणं न दृश्यते । (इस लोक में देवों के लिए भी संगीत से बढकर अन्य कोई वस्तु आनन्दकर नहीं है) तथाहि, **रावणः** = दशास्यः (दस मुखवाला रावण) **शुष्कस्नायुस्वराह्लादात्** = शुष्का प्रचुरकठिनतरतपोऽनुष्ठानात् नीरसाः स्नायवः सूक्ष्मशिरा यस्य तस्य शरीरस्य यः स्वरः कण्ठध्वनिविशेषः तेन य आह्लादः आनन्दः तस्मात् (रावण ने कठोर तपानुष्ठान के क्लेश से शुष्क हुए अपने कण्ठ की नीरस ध्वनि द्वारा) **त्र्यक्षं** = महादेवं, त्रिनेत्रं शिवम् (शिव को) **जग्राह** = वशीचकार, प्रसादितवान् । संगीतविद्ययैव शंकरं तोषयाम्बभूव ।।५४।।

हिन्दी– इस लोक में देवताओं के लिए भी संगीत से बढकर अन्य कोई वस्तु आनन्द कर नहीं है । रावण ने तपानुष्ठान के क्लेश से शुष्क हुए अपने कण्ठ की नीरस स्वर-ध्वनि द्वारा स्तुति पाठ कर महादेव को प्रसन्न कर लिया था ।।५४।।

तत्कथं भगिनीसुत ! मामनभिज्ञं वदन्निवारयसि ? शृगाल आह– "माम ! यद्येवं तदहं तावद् वृतेर्द्वारस्थितः क्षेत्रपालमवलोकयामि, त्वं पुनः स्वेच्छया गीतं कुरु ।"

तथाऽनुष्ठिते रासभरटनमाकर्ण्य, क्षेत्रपः क्रोधात् दन्तान्घर्षयन् प्रधावितः । यावद्रासभो दृष्टस्तावल्लगुडप्रहारैस्तथा हतो, यथा प्रताडितो भूपृष्ठे पतितः । ततश्च सच्छिद्रमुलूखलं तस्य गले बद्ध्वा क्षेत्रपालः प्रसुप्तः । रासभोऽपि स्वजातिस्वभावाद् गतवेदनः क्षणेनाऽभ्युत्थितः । उक्तं च–

व्याख्या– तदिति । भगिनीसुत = भागिनेय ! (भाञ्जे !) **अनभिज्ञम्** =

अज्ञातारं (अपरिचित, मूर्ख) **निवारयसि** = निषेधयसि (रोकते हो) **वृत्तेः** = क्षेत्रावरणस्य वाटस्य (खेत के मेढ़ से)।

तथेति । रासभरटनं = गर्दभचीत्कारम् (गधे की चिल्लाहट) **आकर्ण्य** = श्रुत्वा (सुनकर) **क्षेत्रपः** = क्षेत्रपालः-क्षेत्रपतिः (खेत की रक्षा करने वाला स्वामी) **दन्तान् घर्षयन्** = पेषयन्। क्रुद्धस्य लक्षणमिदम् (दांतों को पीसता हुआ) **प्रताडितः** = आहतः (मारा) **भूपृष्ठे** = भूतले (पृथ्वी पर) **गतवेदनः** = विगतपीडः (दुःख को भूलकर) **स्वजातिस्वभावात्** = निजजातिप्रकृतेः निजजातिस्वभावात् (अपनी जातिगतस्वभाव से)।

हिन्दी– उपर्युक्त प्रकार से सङ्गीत के विभिन्न भेदों को बतलाने के पश्चात् गधे ने पुनः कहा–हे भाञ्जे ! इतना संगीत का ज्ञान रखने पर भी तुम मुझे संगीत से अपरिचित कहते हो और मुझे गीतगाने से रोकते हो। इस पर शृगाल ने कहा–मामा ! यदि ऐसी ही बात है तो मैं खेत की दीवार (मेढ) से बाहर बैठकर इस खेत के पालक किसान को देखता हूँ। आप निश्चिन्त होकर गाइये।

इस प्रकार शृगाल के खेत के बाहर चले जाने के पश्चात् गधे ने उच्च स्वरसे चिल्लाना प्रारम्भ किया। उसकी (कर्णकटु) आवाज को सुनकर किसान क्रोध से दाँतों को पीसता हुआ दौड़ा। खेत में आकर उसने जब गधे को देखा तो दण्डे से उसे इतना मारा कि वह उस मार के कारण भू-तल पर गिर पड़ा। तत्पश्चात् उसके गले में छेद युक्त उलूखल बाँध कर सो गया। बाद में गधा भी अपने जातिगत नैसर्गिक स्वभाव से उस मार के दुःख को भूलकर क्षणभर में उठकर खड़ा हो गया। कहा भी है–

सारमेयस्य चाऽश्वस्य रासभस्य विशेषतः।
मुहूर्तात्परतो न स्यात्प्रहारजनिता व्यथा ।।५५।।

अन्वयः– सारमेयस्य, अश्वस्य, च विशेषतः रासभस्य प्रहारजनिता व्यथा मुहूर्त्तात् परतः न स्यात् ।।५५।।

व्याख्या– सारमेयस्येति । सारमेयस्य = सरमाया अपत्यं सारमेयः तस्य, श्वानस्य, **अश्वस्य** = घोटकस्य, **विशेषतः** = विशेषेण, **रासभस्य** = गर्दभस्य

(गधे की) **प्रहारजनिता** = प्रहारेण- जनिता, प्रहारोत्पन्ना बाधा-पीड़ा (प्रहार से हुई पीडा) **मुहूर्त्तात्** अल्पसमयात् (थोड़े समय में) **परतः** = अनन्तरम् (पश्चात्) **न स्यात्** = न भवेत्, नैवभवति (नहीं होती) अत्यल्पसमयोत्तरमेवामीषां व्यथा विस्मरणं जायते ॥५५॥

हिन्दी– कुत्ते, घोडे, विशेषकर गधे को मारने से होनेवाली पीड़ा-व्यथा-एक मुहूर्त से-अल्पसमय से-अधिक नहीं होती। अल्पसमय के पश्चात् ही मार की पीडा को वे भूल जाते हैं ॥५५॥

ततस्तमेवोलूखलमादाय वृतिं चूर्णयित्वा पलायितुमारब्धः। अत्रान्तरे शृगालोऽपि दूरादेव तं दृष्ट्वा सस्मितमाह–

व्याख्या– तत इति। वृत्तिं = क्षेत्ररक्षणार्थं निर्मितमावरणं, (मेढ) **चूर्णयित्वा** = विदार्य (तोडकर) **सस्मितं** = हास्ययुक्तं वचनम् = उवाच।

हिन्दी– तत्पश्चात् उस गधे ने उस बंधे हुए उलूखल को लिये ही खेत की मेढ को तोड़कर भागना प्रारम्भ किया तब शृगाल ने दूर से ही इस प्रकार पलायन करते हुए गधे को देखकर हँसते हुए कहा–

साधु मातुल! गीतेन मया प्रोक्तोऽपि न स्थितः।
अपूर्वोऽयं मणिर्बद्धः सम्प्राप्तं गीतलक्षणम्॥५६॥

अन्वयः– मातुल! गीतेन साधु, मया प्रोक्तः अपि (भवान्) न स्थितः। अतएव साम्प्रतम् अयम् अपूर्वः मणिबद्धः गीतलक्षणः सम्प्रातः ॥५६॥

व्याख्या– साध्विति। मातुल! गीतेन = संगीतेन, **साधु** = अलम्, इत्येवं **मयाप्रोक्तः** = कथितः अपि त्वं न स्थितः त्वं गानात्र विरतः। **साम्प्रतम्** = अधुना, **अपूर्वः** = आश्चर्यजनकः **मणिर्बद्धः** = मणिः गले बद्धः, अतः **गीतलक्षणः** = गीतपुरस्कारः, **सम्प्रातः**लब्धः ॥५६॥

हिन्दी– शृगाल ने कहा–हेमामा! मेरे द्वारा रोकेजाने पर भी आपने गाना गाया ही। देखो, यह अपूर्व-सुन्दर-मणि तुम्हारे गले में बान्ध दिया गया है। यथार्थ में तुम्हें संगीत का उचित पुरस्कार प्राप्त हो गया है ॥५६॥

तद्भवानपि मया वार्यमाणोऽपि न स्थितः।

तत् श्रुत्वा चक्रधर आह–"भो मित्र सत्यमेतत्। अथवा साध्विदमुच्यते–

हिन्दी– इस कथा को सुनलेने के पश्चात् सुवर्णसिद्धि ने कहा–आप भी इसी प्रकार मेरे द्वारा रोकेजाने पर भी नहीं रुके थे।

यह सुनकर चक्रधर ने कहा– मित्र ! सत्य कहते हो, अथवा यह ठीक ही कहा गया है–

यस्य नास्ति स्वयं प्रज्ञा मित्रोक्तं न करोति यः।
स एव निधनं याति, यथा मन्थरकौलिकः ।।५७।।

अन्वयः– यस्य स्वयं प्रज्ञा नास्ति, यः मित्रोक्तं न करोति, सः मन्थरकौलिकः यथा निधनं याति ।।५७।।

व्याख्या– यस्येति। यस्य = जनस्य (मनुष्य की) स्वयं, **प्रज्ञा** = बुद्धिः **नास्ति** = न विद्यते (नहीं होती है) **यः जनः मित्रोक्तं** = मित्रेणाभिहितं (मित्र के द्वारा कही हुई बात को) **न करोति** = नैवमानयति, न शृणोति, **सः मन्थरकौलिकः** = मन्थरनामतन्तुवायः (मन्थर नामक जुलाहे की तरह) **निधनं** = विनाशम् (मृत्यु) **याति** = गच्छति (प्राप्त होता है) ।।५७।।

हिन्दी– जिस व्यक्ति के पास स्वयं की बुद्धि नहीं है और जो मित्र का कहना भी नहीं मानता, वह मन्थर नामक जुलाहे की तरह मृत्यु को प्राप्त होता है ।।५७।।

सुवर्णसिद्धिराह–'कथमेतत् ?' सोऽब्रवीत्–

हिन्दी– सुवर्णसिद्धि ने कहा– यह कैसे हुआ ? तब वह बोला–

(८) मन्थर-कौलिक-कथा

कस्मिंश्चिदधिष्ठाने मन्थरको नाम कौलिकः प्रतिवसति स्म। तस्य कदाचित् पटकर्माणि कुर्वतः सर्वपटकर्मकाष्ठानि भग्नानि। ततः स कुठारमादाय वने काष्ठार्थं गतः। स च समुद्रतटे यावद्भ्रमन् प्रयातः, तावत्तत्र शिंशपापादपस्तेन दृष्टः। ततश्चिन्तितवान्–"महानयं वृक्षो दृश्यते। तदनेन कर्तितेन प्रभूतानि पटकर्मोपकरणानि भविष्यन्ति।" इत्यवधार्य तस्योपरि कुठारमुत्क्षिप्तवान्।

व्याख्या– कस्मिंश्चिदिति। **अधिष्ठाने** = नगरे, (नगर में) **कौलिकः** = तन्तुवायः (जुलाहा) **पटकर्माणि** = वस्त्रवयनानि वस्त्रनिर्माणकार्याणि (कपडा बुनने का कार्य) **सर्वपटकर्मकाष्ठानि** = पटकर्मणः काष्ठानि इति पटकर्मकाष्ठानि, सर्वाणि च तानि पटकर्मकाष्ठानि इति सर्वपटकर्मकाष्ठानि, वस्त्रवयनयन्त्राणि, वस्त्रनिर्माणोपकरणानि (तुरी वेमा आदि) **भग्नानि** = त्रुटितानि (टूट गये) **कुठारं** = परशुम्, **आदाय** = गृहीत्वा (कुल्हाडी लेकर) **तत्र** = समुद्रतटे (समुद्र के किनारे पर) **शिंशपादपः** = (शीशम का वृक्ष) **कर्तितेन** = छिन्नेन-कुठारद्वाराखण्डितेन, (कुठारे से काटने से) **प्रभूतानि** = पुष्कलानि, बहूनि वा **पटकर्मोपकरणानि** = तुरीवेमादीनि, पटनिर्माणसाधनानि। **अवधार्य** = विचार्य (विचारकरके) **तस्योपरि** = पादपोपरि (वृक्ष पर) **उत्क्षिप्तवान्** = प्रक्षिप्तवान् (कुल्हाडी मारने लगा)।

हिन्दी– किसी नगर मे मन्थरक नाम का एक जुलाहा रहता था। एक दिन वस्त्र बनाते समय उसके सभी वस्त्र बुनने के उपकरण-तुरी-वेमा आदि-टूट गये। तब वह कुल्हाडी लेकर वन में लकडी काटने के लिए गया। इधर-इधर घूमता हुआ जब वह समुद्र के तट पर पहुँचा तो उसने वहाँ एक शीशम का वृक्ष देखा। यह सोचकर कि "यह वृक्ष बहुत बड़ा है। इसके काटने से बहुत से उपकरण बन सकते हैं" यह सोचकर वह उस वृक्ष पर कुल्हाडी मारने लगा।

अथ तत्र वृक्षे कश्चिद् व्यन्तरः समाश्रित आसीत्। अथ तेनाभि-

हितम्–"भोः मदाश्रयोऽयं पादपः सर्वथा रक्षणीयः। यतोऽहमत्र महासौख्येन तिष्ठामि समुद्रकल्लोलस्पर्शनाच्छीतवायुनाप्यायितः।"

कौलिक आह–"भोः किमहं करोमि, दारुसामग्रीं विना मे कुटुम्बं बुभुक्षया पीड्यते। तस्मादन्यत्र शीघ्रं गम्यताम्। अहमेनं कर्त्तयिष्यामि।"

व्यन्तर आह–"भोः! तुष्टस्तवाऽहम्। तत्प्रार्थ्यतामभीष्टं किञ्चित्। रक्षैनं पादपम्" इति।

कौलिक आह–"यद्येवं तदहं स्वगृहं गत्वा स्वमित्रं, स्वभार्यां च पृष्ट्वा आगमिष्यामि, ततस्त्वया देयम्।"

व्याख्या– अथेति। व्यन्तरः = यक्षः, कश्चिद् देवयोनिविशेषः, (यक्ष) **समाश्रितः** = स्थितः (रहता था) **तेन** = व्यन्तरेण (यक्षने) **मदाश्रयः** = ममावासभूतः, (मेरे रहने का स्थान) **सर्वथा** = सर्वोपायेन = येनकेन प्रकारेण (हर उपाय से) **सौख्येन** = सुखेन (सुख से) **समुद्रकल्लोलस्पर्शनात्** = समुद्रतरंगस्पर्शात् समुद्रस्य सागरस्य ये कल्लोलाः लहर्यः तेषां स्पर्शनात् संसर्गात् (समुद्र की तरंगों के स्पर्श से) **शीतवायुना** = शीतलपवनेन (ठंडी हवा से) **आप्यायितः** = आनन्दितः, सन्तुष्टः (शीतल वायुका आनन्द लेकर)।

कौलिक इति। दारुसामग्रीं विना = काष्ठोपकरणं विना (काष्ठोपकरण के अभाव में) **कुटुम्बं** = परिवारम्, कलत्रादिकम् (अपने परिवार को) **बभुक्षया** = क्षुधया (भूख से)।

व्यन्तर इति। तुष्टः = प्रसन्नः (प्रसन्न) **अभीष्टं** = मनोभिलषितं (इच्छित) **पादपम्** = वृक्षम् (वृक्षको) **देयम्** दातव्यम् (देना)।

हिन्दी– उस शीशन के वृक्ष पर एक यक्ष रहता था। वृक्ष को काटते हुए देखकर उस यक्ष ने कहा–अरे भाई! इस वृक्ष पर मेरा निवास स्थान है। तुम्हें सब प्रकार से इसकी रक्षा करनी चाहिए। क्योंकि मैं इस वृक्ष पर समुद्र की तरंगों के स्पर्श से शीतल हुई वायु का आनन्द लेते हुए रहता हूँ।

कौलिक ने कहा–"अरे भाई! मैं क्या करुँ? वस्त्र बनाने के लिये

आवश्यक रूप से लगने वाली लकडी के उपकरणों के अभाव में मेरा पूरा परिवार भूख से पीडित है। अतः आप शीघ्र अन्यत्र चले जाँय। मैं निश्चय ही इसे काटूंगा।

यक्ष ने कहा–अरे ! मैं तुम पर प्रसन्न हूँ, तो तुम अपनी इच्छानुसार कोई वरदान (वस्तु) मांगलो, किन्तु इस वृक्षको मत काटो।

कौलिक ने कहा–यदि ऐसी बात है, तो मैं घर जाकर अपने मित्र और अपनी पत्नी से पूछ लेता हूँ। तत्पश्चात् लौटने पर आप मेरी अभीष्ट वस्तुको दीजियेगा।''

अथ ''तथा'' इति व्यन्तरेण प्रतिज्ञाते, स कौलिकः प्रहृष्टः स्वगृहं प्रतिनिवृत्तो यावदग्रे गच्छति, तावद् ग्रामप्रवेशे निजसुहृदं नापितमपश्यत्। ततः तस्य व्यन्तरवाक्यं निवेदयामास यत्–''अहो मित्र ! मम कश्चिद् व्यन्तरः सिद्धः। तत्कथय किं प्रार्थये ? अहं त्वां प्रष्टुमागतः।''

नापित आह–''भद्र ! यद्येवं तद्राज्यं प्रार्थयस्व, येन त्वं राजा भवसि अहं त्वन्मन्त्री। द्वावपीह सुखमनुभूय, परलोकसुखमनुभवावः।

व्याख्या– अथेति। अथ = कौलिकस्य कथनानन्तरम् **तथा** = तथास्तु (जैसी तुम्हारी इच्छा हो वैसी ही) **प्रतिज्ञाते** = कथिते (प्रतिज्ञा करने पर) **प्रतिनिवृत्तः** = प्रत्यागतः, (लौटने लगा) **ग्रामप्रवेशे** = पुरप्रवेशे (ग्राम में प्रविष्ट होते ही) **निजसुहृदं** = स्वमित्रं (अपने मित्र) **सिद्धः** = सन्तुष्टः (प्रसन्न हो गया है)।

नापित इति। द्वौ = आवाम् (हम दोनों ही) **इह** = संसारे **सुखमनुभूय** = आनन्दमनुभूय (आनन्द का अनुभव करके) **परलोकसुखं** = देवलोकानन्दम् (स्वर्ग का आनन्द) **अनुभवावः** (प्राप्त करेंगे)।

हिन्दी– कौलिक की बात सुनलेने के पश्चात् यक्ष ने 'तथास्तु' कहकर उसे जाने की आज्ञा दे दी। इसके पश्चात् जब वह जुलाहा प्रसन्न होकर घर की ओर जा रहा था, उसी समय गाँव में प्रवेश करते ही उसने अपने मित्र नाई को

देखा, तब उसने यक्ष के प्रसन्न होने की संपूर्ण घटना नाई को बता दी और फिर कहा–मित्र ! वह यक्ष मुझ पर प्रसन्न है और उसने मुझे वरदान मांगने के लिये कहा है– तुम मुझे बताओ–मैं उस यक्ष से क्या माँगूँ। मैं यही पूछने के लिये तुम्हारे पास आया हूँ।

यह सुनकर नाई ने कहा–मित्र ! यदि ऐसी बात है तो उस यक्ष से राज्य माँग लो, जिससे तुम राजा हो जाओगे, और मैं तुम्हारा मंत्री बन जाऊँगा। इस प्रकार हम दोनों इस संसार में सुख का अनुभव करके देवलोक में भी सुख प्राप्त करेंगे।

राजा दानपरो नित्यमिह कीर्तिमवाप्य च।
तत्प्रभावात्पुनः स्वर्गे स्पर्धते त्रिदशैः सह ।।५८।।

अन्वयः– राजा नित्यं दानपरः इह कीर्तिम् अवाप्य तत्प्रभावात् पुनः स्वर्गे त्रिदशैःसह स्पर्धते ।।५८।।

व्याख्या– राजेति। राजा = नृपः, **नित्यम्** = निरन्तरम् (सदा) **दानपरः** = त्यागी, दानशीलः (दान देनेवाला) **इह** = संसारे (संसार में) **कीर्तिम्** = यशः (यश) **अवाप्य** = प्राप्य (प्राप्त कर) **तत्प्रभावात्** = तस्य दानस्य प्रभावात् सामर्थ्यात् (उस दान के प्रभाववश) पुनः असौ राजा, **स्वर्गे** = अमरलोके (स्वर्ग में) **त्रिदशैःसह** = अमरैः देवैः साकं (देवों के साथ) **स्पर्धते** = स्पर्धां करोति (सुख की स्पर्धा करता है)। देवानां प्रतियोगी भवति, तैःसह समेनैश्वर्येण मोदत इत्यर्थः ।।५८।।

हिन्दी– जो राजा इस संसार में निरंतर दान करता रहता है, वह यहाँ यश-कीर्ति को प्राप्त करके परलोक में देवताओं के साथ आनन्द-सुखानुभव करता है !।५८।।

कौलिक आह–"अस्त्येतत्परं तथापि गृहिणीं पृच्छामि।"

स आह–"भद्र ! शास्त्रविरुद्धमेतत् यत्स्त्रिया सह मन्त्रः। यतस्ताः स्वल्पमतयो भवन्ति। उक्तञ्च–

व्याख्या– कौलिक इति । अस्त्येतत् = समीचीनं भवद्वचनम् (आपका विचार उपयुक्त है) **गृहिणीं** = भार्यां (पत्नी को) ।

स इति । शास्त्रविरुद्धम् = शास्त्रनिषिद्धम् (शास्त्र में निषिद्ध) **मन्त्रः** = विचारः परामर्शः, **स्वप्लमतयः** = स्वल्पप्रज्ञाः, अल्पबुद्धयः (कम बुद्धि की होती हैं) ।

हिन्दी– तत्पश्चात् जुलाहे ने कहा–मित्र ! यद्यपि तुम युक्तियुक्त कहते हो, तथापि अपनी स्त्री से भी पूछ लेता हूँ । यह सुनकर नापित ने कहा-स्त्री से परामर्श करना शास्त्रविरुद्ध है, क्योंकि स्त्रियाँ निसर्गतः ही स्वल्प बुद्धि की होती हैं । कहा भी है–

भोजनाच्छादने दद्यादृतुकाले च सङ्गमम् ।
भूषाणाद्यं च नारीणां न ताभिर्मन्त्रयेत्सुधीः ।।५९।।

अन्वयः– सुधीः नारीणां भोजनाच्छादने भूषणाद्यं च दद्यात्, ऋतुकाले सङ्गमम् च दद्यात्, (किन्तु) ताभिः (सह) न मन्त्रयेत् ।।५९।।

व्याख्या– भोजनेति । सुधीः = बुद्धिमान् पुरुषः **नारीणाम्** = स्त्रीणाम् कृते, नारीभ्यः (स्त्रियों के लिये) **भोजनाच्छादने** = भोजनञ्चाच्छादनञ्च भोजनाच्छादने अन्नवस्त्रे (अन्नवस्त्र) **भूषणाद्यम्** = अलंकारादिकम् (अलंकारादि) **दद्यात्** = प्रयच्छेत् (प्रदान करे) **ऋतुकाले** = प्रतिमासमार्तववेलायां, ऋतौ प्राप्ते (ऋतुकाल में) **सङ्गमम्** = सहवासं, रमणं भोगं च दद्यात् (उनके साथ रमण करे) किन्तु **ताभिः** = नारीभिः सह **न मन्त्रयेत्** = कदापि मन्त्रणां न कुर्यात् (किन्तु उनके साथ गोपनीय विचार विमर्श न करें) ।।५९।।

हिन्दी– बुद्धिमान् पुरुष स्त्रियों को अन्नवस्त्र एवं अलंकारादि प्रदान करें, ऋतुकाल में उनके साथ रमण भी करें, किन्तु उनके साथ गुप्त मन्त्रणा-विचार-विमर्श न करें ।।५९।।

यत्र स्त्री, यत्र कितवो, बालो यत्र प्रशासिता ।
तद्गृहं क्षयमायाति, भार्गवो हीदमब्रवीत् ।।६०।।

अन्वयः– यत्र स्त्री यत्र कितवः यत्र बालः प्रशासिता (भवेत्) तद्गृहं क्षयम् आयाति, हि इदं भार्गवः अब्रवीत् ।।६०।।

व्याख्या– यत्रेति । यत्र = यस्मिन् गृहे (जिस घर में) **स्त्री** = योषित्-परामर्शदात्री (स्त्री प्रधान हो और जो परामर्श देनेवाली हो) **कितवः** = धूर्तः यथा-दुर्योधनस्य शकुन्यादयोऽभूवन् (धूर्त-जैसे दुर्योधन के यहाँ शकुनि आदि थे) **बालः** = बालकः **प्रशासिता** = मन्त्रणादायी भवति, (स्वामी-नियन्त्रक हो) **क्षयमायाति** = विनश्यति (नष्ट हो जाता है) **भार्गवः** = शुक्राचार्यः **इदम्** = इत्थम्-अनेन प्रकारेणाब्रवीत् (शुक्राचार्य ने इस प्रकार कहा है ।) ॥६०॥

हिन्दी– जिस घर में स्त्री का प्राधान्य हो, जहाँ स्त्री ही प्रशासक हो, और जहाँ धूर्त-(शकुनि जैसों का प्राधान्य) हो, अथवा, जहाँ बालक ही घर का स्वामी होता है, वह घर शीघ्र ही नष्ट हो जाता है, यह शुक्राचार्य ने कहा है ॥६०॥

तावत्स्यात्सुप्रसन्नास्यस्तावद् गुरुजने रतिः ।
पुरुषो योषितां यावन्न शृणोति वचो रहः ।।६१।।

अन्वयः– पुरुषः यावत् रहः योषितां वचः न शृणोति, तावत् सुप्रसन्नास्यः (तावत्) गुरुजने रतः स्यात् ॥६१॥

व्याख्या– तावदिति । पुरुषः यावत् = जनः यावत् कालपर्यन्तम् (व्यक्ति जब तक) **रहः** = एकान्ते (एकान्त में) **योषितां** = स्त्रीणां **वचः** = वचनं कथनम् (स्त्रियों का कहना, उनकी बातें) **न शृणोति** = न आकर्णयति, (नहीं सुनता है) **तावत्** = तावत् कालपर्यंतम् (तब तक) अर्थात् यावत् पुरुषः स्त्रीकृतेन गुप्तोपदेशेन न चलितो भवति (जब तक पुरुष स्त्री के कहे हुए के अनुसार नहीं चलता है) **तावदेव सुप्रसन्नास्यः** = प्रसन्नवदनः सुप्रसन्नमास्यं मुखं यस्य सः, (प्रसन्नमुखं) **गुरुजने** = मात्रादौ वृद्धजने (घर के वृद्धजनों में) **रतिः** = भावरूपा प्रीतिः **भवति**-अनुरक्तः (अनुरक्त रहता है) ॥६१॥

हिन्दी– पुरुष जब तक एकान्त में स्त्री की बात या उसका किया हुआ परामर्श नहीं सुनता है, तभी तक वह प्रसन्न चित्त और बडों में अनुरक्त रहता है ॥६१॥

एताः स्वार्थपरा नार्यः केवलं स्वसुखे रताः ।
न तासां वल्लभः कोऽपि सुतोऽपि स्वसुखं विना ।।६२।।

अन्वयः– एताः नार्यः स्वार्थपराः केवलं स्वसुखे रताः (भवन्ति) तासां कोऽपि वल्लभः न, स्वसुखं विना सुतोऽपि (वल्लभो न भवति) ॥६२॥

व्याख्या– एता इति । एताः नार्यः = योषाः (ये स्त्रियाँ) **केवलं स्वार्थपराः** = स्वप्रयोजनमात्रपरायणाः (केवल अपने ही सुख को चाहने वाली) **स्वसुखं** = विषयेन्द्रियजन्यभोगात्मके आनन्दे रताः संलग्ना सन्तीति शेषः, **तासां** = स्त्रीणां (स्त्रियों का) **वल्लभः** = प्रियः (प्रिय) **स्वसुखं विना** = निजास्वादमन्तरेण न कोऽपि वल्लभः प्रियः (अपने सुखानन्द के विना कोई भी प्रिय नहीं होता) **सुतोऽपि** = पुत्रोऽपि (पुत्र भी) प्रियः न भवति ॥६२॥

हिन्दी– ये स्त्रियाँ स्वभाव से ही (जन्म से ही) अत्यन्त स्वार्थी होती हैं, वे केवल अपने ही सुख-आनन्द को देखती हैं। इनका कोई भी प्रिय नहीं होता। अपना पुत्र भी उन्हें अपने सुख के अभाव में प्रिय नहीं होता है ॥६२॥

कौलिक आह–"तथाऽपि प्रष्टव्या सा मया, यतः पतिव्रता सा। अपरं, तामपृष्ट्वाहं न किञ्चित्करोमि।" एवं तमभिधाय सत्वरं गत्वा तामुवाच–"प्रिये! अद्याऽस्माकं कश्चिद् व्यन्तरः सिद्धः। स वाञ्छितं प्रयच्छति। तदहं त्वां प्रष्टुमागतः। तत्कथय किं प्रार्थये? एष तावन्मम मित्रो नापितो वदत्येवं यत्–"राज्यं प्रार्थयस्व"। साऽऽह–"आर्यपुत्र! का मतिर्नापितानाम्? तन्न कार्यं तद्वचः। उक्तञ्च–

व्याख्या– कौलिक इति। सा = मम भार्या (मेरी पत्नी) **पतिव्रता** = पतिपरायणा, **तम्** = नापितम् (नाई को) **अभिधाय** = उक्त्वा (कहकर) **सत्वरं** = शीघ्रं (शीघ्र) **तां** = भार्यां (पत्नी को) **वाञ्छितं** = मनोऽभिलषितम्-अभीष्टम् (अभीप्सित) **प्रयच्छति** = ददाति **का मतिः** = का बुद्धिः (नाई को क्या बुद्धि होती है) **तद्वचः** = तस्य वचः नापितोक्तम् (नाई ने कहा हुआ) ॥

हिन्दी– नापित की बात सुनकर जुलाहे ने कहा–"फिर भी मैं उससे (पत्नी से) अवश्य पूछूँगा, क्योंकि वह पतिपरायणा है। इसके अतिरिक्त एक दूसरी भी बात है कि मैं उसे विना कहे या उससे परामर्श किये विना कोई कार्य नहीं करता हूँ।" इस प्रकार कहकर, शीघ्र जाकर अपनी पत्नी से उस जुलाहे

ने कहा–प्रिये ! आज मुझ पर एक यक्ष प्रसन्न हो गया है । वह मुझे वरदान देना चाहता है । तो बताओ उससे क्या माँगूं । मेरा मित्र नाई कहता है कि राज्य माँग लो–इस पर उसकी पत्नी ने कहा–"आर्यपुत्र ! नाई को कितनी बुद्धि होती है ? उसका कहना किसी प्रकार न मानिएगा, कहा भी है–

चारणैर्वन्दिभिर्नीचैर्नापितैर्बालकैरपि ।
न मन्त्रं मतिमान्कुर्यात्सार्धं भिक्षुभिरेव च ।।६३।।

अन्वयः– मतिमान् चारणैः बन्दिभिः नीचैः नापितैः च बालकैः च भिक्षुभिः अपि सार्धं मन्त्रं न कुर्यात् ।।६३।।

व्याख्या– चारणैरिति । मतिमान् = बुद्धिमान्, (बुद्धिमान् व्यक्ति) **चारणैः** = नटैः, नट-राजप्रशंसकैः, (बन्दिजनों से) **नीचैः** = क्षुद्रहृदयैः पिशुनस्वभावैरिति यावत्, (निम्न कोटिके जनों से) **नापितैः** = क्षुरकृत्येन जीविकां कुर्वाणैः-क्षुरकर्मकारिभिः (नाइयों से) **बालकैः अपि** = शिशुभिः (बालकों से) **भिक्षुभिरेव च** = याचकगणैश्च सह-**सार्धं** = साकं (साथ) **मन्त्रं** = मन्त्रणां, रहस्यविषय-कविवेचनां, (रहस्य की बात-विचार विमर्श) **न कुर्यात्** = नैव विदध्यात् (न करे) ।।६३।।

हिन्दी– जुलाहे कि पत्नी ने कहा–चारण, बन्दीजन, नीच व्यक्ति, नापित (नाई) बालकों एवं भिक्षुकों के साथ चतुर व्यक्ति को विचार-परामर्श नहीं करना चाहिये ।।६३।।

अपरं महती क्लेशपरम्परैषा राज्यस्थितिः । सन्धिविग्रहयानासनसंश्रयद्वैधीभावादिभिः कदाचित्पुरुषस्य सुखं न प्रयच्छतीति । यतः–

व्याख्या– अपरमिति । अपरम् = अन्यच्च (इसके अतिरिक्त) **क्लेशपरम्परा** = दुःखसमुदायरूपा परिपाटी (अनेक कष्टों से राज्य भरा रहता है) **राज्यस्थितिः** = राज्यव्यवस्था, राज्यशासनव्यवस्था, **सन्धिः** = शत्रुभिः सन्धानम् (शत्रुओं के साथ सन्धि करना) **विग्रहः** = युद्धम्, (युद्ध करना) **यानम्** = युद्धाक्रमणम् (युद्ध के लिये प्रस्थान करना) **आसनम्** = युद्धार्थमवस्थानम् (युद्ध की प्रतिक्षा में, या उचित अवसर की प्रतीक्षा में एक स्थान पर बैठे रहना)

संश्रयः = अन्याश्रयः (दूसरे राजा का आश्रय ग्रहण करना) **द्वैधीभावः** = भेदः (शत्रु पक्ष में भेद उत्पन्न करना (फूट डालना) **न प्रयच्छति** = न ददाति (नहीं देता है)।

हिन्दी– पत्नी ने कहा– इसके अतिरिक्त राज्य अत्यधिक कष्टप्रद होता है। सन्धि, विग्रह, आक्रमण, शत्रु की प्रतीक्षा करते रुकना, उचित समय की प्रतीक्षा करना, अन्य राजाओं की सहायता ग्रहण करना, शत्रुवर्ग में भेद उत्पन्न करना आदि सभी राज्यव्यवस्था से सम्बन्धित कार्य कष्टप्रद होते हैं। अतः उनसे राजा को सुख प्राप्त नहीं होता।

यदैव राज्ये क्रियतेऽभिषेकस्तदैव याति व्यसनेषु बुद्धिः।
घटा नृपाणामभिषेककाले सहाऽम्भसैवापदमुद्गिरन्ति ।।६४।।

अन्वयः– यदा एव राज्ये अभिषेकः क्रियते तदैव व्यसनेषु बुद्धिः याति, नृपाणाम् अभिषेककाले एव घटा अम्भसा सह आपदम् उद्गिरन्ति ।।६४।।

व्याख्या– यदैवेति। यदा एव = यस्मिन्नेव काले (जिस समय) **राज्ये** = राज्यपदे, राज्यसिंहासने वा, **अभिषेकः** = राज्याभिषेचनं राज्यतिलकं क्रियते (राज्याभिषेक, राजा को तिलक) **तदा एव** = तस्मिन्नेवावसरे (उसी समय) **व्यसनेषु** = मृगयादिषु-आपत्सु वा, (शिकार आदि या आपत्तियों में) **याति** = गच्छति, **घटाः** = अभिषेकं कर्तुमनेकतीर्थजलपरिपूर्णाः कुम्भाः (अभिषेक करने के लिए अनेक तीर्थजलोसे परिपूर्ण घट) **अम्भसा** = जलेन सह (जल के साथ ही) **आपदम्** = विपत्तिम् (विपत्ति को) **उद्गिरन्ति** = वमन्ति, तेषामभिषिक्ते शिरसि पातयन्ती वेत्युत्प्रेक्षा (उडेलते हैं) ।।६४।।

हिन्दी– क्योंकि राज्याभिषेक के सम्पन्न होने के अवसर से ही व्यक्ति या राजा की बुद्धि राज्य की उलझी हुई समस्याओं की ओर (विपत्तियों में) चली जाती है और अनेक चिन्ताएँ (उसे) घेर लेती हैं। मानो राजाओं के अभिषके के लिए रखे घट अपने जल के साथ विविध आपत्तियों को भी उसके सिर पर उडेलते हैं ।।६४।।

रामस्य व्रजनं वने, निवसनं पाण्डोः सुतानां वने,
वृष्णीनां निधनं, नलस्य नृपते राज्यात्परिभ्रंशनम् ।
सौदासं तदवस्थमर्जुनवधं सञ्चिन्त्य लङ्केश्वरं,
दृष्ट्वा राज्यकृते विडम्बनगतं, तस्मान्न तद्वाञ्छयेत् ।।६५।।

अन्वयाः– रामस्य वने व्रजनं, पाण्डोः सुतानां वने निवसनं, वृष्णीनां निधनं, नृपतेः नलस्य राज्यात् परिभ्रंशनं, सौदासं तदवस्थम्, अर्जुनवधं सञ्चिन्त्य राज्यकृते विडंबनगतं लङ्केश्वरं दृष्ट्वा तस्मात् तत् न वाञ्छयेत् ।।६५।।

व्याख्या– रामस्येति । रामस्य = दाशरथेः, (दशरथ के पुत्र रामका) **वने** = दण्डकारण्ये **व्रजनम्** = पितुः दशरथस्याज्ञया वनवासः गमनम् (दण्डकारण्य में दशरथ की आज्ञा से वनवास) **पाण्डोः सुतानां** = पाण्डवानां, **वने निवसनम्** = निवासः (पाण्डवों का वन में निवास) **वृष्णीनां** = यादवानां (यादवों का) **निधनम्** = पारस्परिककलहेन विनशनम्, **नृपतेः नलस्य** = नलराजस्य (राजानल का) **राज्यात्** = राज्यपदात् (राज्य से) **परिभ्रंशनम्** = प्रच्युतिः (राजा नल का) **सौदासं** = सुदासपुत्रम्, **तदवस्थं** = चाण्डालत्वम्, (सौदास का राक्षसयोनि में जाना) **अर्जुनवधम्** = कार्तवीर्यार्जुनस्य नाशम् (कार्तवीर्यार्जुन का परशुराम द्वारा वध) **सञ्चिन्त्य** = विचार्य (सोचकर) **राज्यकृते** = राज्यार्थम् (राज्य के लिए) **विडंबनगतम्** = विडंबनां प्राप्तम्, कष्टस्य परां सीमां प्राप्तमित्यर्थः (अत्यधिक कष्ट प्राप्त करना) **लङ्केश्वरं** = रावणं (रावण को) **दृष्ट्वा** = विलोक्य (देखकर) **तस्मात्** = कारणात्, (उस कारण से) **तत्** = राज्यम्, **न वाञ्छयेत्** = नेच्छेत् (राज्य की इच्छा नहीं करनी चाहिए) ।।६५।।

हिन्दी– नापित की पत्नी ने कहा–देखो,

राज्य के लिए रामको वनवास स्वीकार करना पडा, पाण्डवों को वन में अज्ञातरूप में रहना पड़ा । यदुवंशियों का विनाश भी राज्य के लिए ही हुआ था, राजा नल राज्य से भ्रष्टहोकर अनेक कष्टों को झेलते रहे, सौदास को वसिष्ठ के शापवश राक्षस योनि में जाना पड़ा । राज्य के मद से कार्तवीर्यार्जुन परशुराम द्वारा मारा गया, इसके अतिरिक्त राज्य के कारण ही रावण भी मृत्यु को प्राप्त

हुआ। अतः चतुर व्यक्ति को कभी भी राज्य की अभिलाषा नहीं करनी चाहिए ॥६५॥

यदर्थं भ्रातरः पुत्रा अपि वाञ्छन्ति ये निजाः ।
वधं राज्यकृतां राज्ञां, तद्राज्यं दूरतस्त्यजेत् ।।६६।।

अन्वयः– ये निजाः भ्रातरः पुत्राः तेऽपि यदर्थं राज्यकृतां राज्ञां वधं वाञ्छन्ति, तद् राज्यं दूरतः त्यजेत् ॥६६॥

व्याख्या– यदर्थमिति । ये निजाः = स्वकीयाः भ्रातरः पुत्राः अपि (जो अपने सहोदर भाई एवं पुत्र भी) **यदर्थं** = राज्यप्राप्त्यर्थं (राज्य की प्राप्ति के लिये), **राज्यकृतां** = राज्यं कुर्वन्ति तेषां, न्यायेन राज्यं पालयतामपि, (राज्य करने वाले) **वधं** = मृत्युं (वध) **वाञ्छन्ति** = इच्छन्ति, (चाहते हैं) **त्यजेत्** = परिहरेदिति (छोड देना चाहिए) ॥६६॥

हिन्दी– जिस राज्य की प्राप्ति के लिए अपने सहोदर भाई एवं पुत्र भी राजा का वध करना चाहते हैं, उस राज्य का दूर से ही त्याग कर देना चाहिए ॥६६॥

कौलिक आह–"सत्यमुक्तं भवत्या । तत्कथय किं प्रार्थये ?"

साऽऽह–"त्वं तावदेकं पटं नित्यमेव निष्पादयसि । तेन सर्वा व्ययशुद्धिःसंपद्यते । इदानीं त्वमात्मनोऽन्यद् बाहुयुगलं द्वितीयं शिरश्च याचयस्व, येन पटद्वयं संपादयसि पुरतः पृष्ठतश्च । एकस्य मूल्येन गृहे यथापूर्वं व्ययं संपादयिष्यसि, द्वितीयस्य मूल्येन विशेषकृत्यानि करिष्यसि । एवं सौख्येन स्वजातिमध्ये श्लाघ्यमानस्य कालो यास्यति, लोकद्वयस्योपार्जना च भविष्यति ।"

व्याख्या– कौलिक इति । कौलिक आह-अवदत् (बोला) त्वया **यथार्थमुक्तम्** = (तुमने यथार्य ही कहा है) **प्रार्थये** = किं वरदानं-अभिष्टं याचे (तो बतलाओं, किस वरदान को उस यक्ष से माँगलूँ) ॥

सेति । नित्यमेव = प्रतिदिनम् (रोज) **निष्पादयसि** = विरचयसि (बनाते हो) **व्ययशुद्धिः** = व्ययस्य शुद्धिः निर्वाहः,-परिवारार्थं कृतव्ययस्य निर्वाहः (घर

का खर्च) **अन्यद्बाहुयुगलम्** = द्वितीयं बाहुद्वयम् (अन्य दो भुजाएँ) **याचयस्व** = प्रार्थयस्व (माँग लो) **पुरतः** = अग्रतः (आगे से) यथापूर्वम् पूर्वक्रमवत् (पहले के क्रमानुसार) **विशेषकृत्यानि** = अतिरिक्तधर्मार्थदानादिकार्याणि (धर्मार्थादि अन्य कार्यों को) **स्वजातिमध्ये** = निजजातौ (अपनी जाति में) **श्लाघ्यमानस्य** = श्लाघ्यते इति श्लाघ्यमानः तस्य, स्तूयमानस्य-प्रशस्यमानस्य वा (प्रतिष्ठापूर्वक) **कालः** = समयः-जीवनं (जीवनकाल) **यास्यति** = व्यतिष्यति (व्यतीत होगा) **लोकद्वयस्य** = इहलोकस्य परलोकस्य च, (इस लोक और परलोक की प्राप्ति) **उपार्जना** = प्राप्तिः ।

हिन्दी– उस जुलाहे ने अपनी पत्नी की बात सुनकर कहा–तुम ठीक-सत्य-कहती हो'' किन्तु यह तो कहो कि उस यक्षसे क्या वरदान माँगू ?

तत्पश्चात् स्त्री ने कहा–तुम प्रतिदिन एक कपड़ा बुनकर तैयार करते हो। उसी से परिवार का पूरा खर्चा चलता है। तुम जाकर अपने लिये दो हाथ एवं एक शिर माँग लो। इससे तुम रोज दो वस्त्र बुन सकोगे। एक आगे से और दूसरा पीछे से, एक के मूल्य से परिवार का व्यय-निर्वाह होगा और दूसरे के मूल्य से अन्य कार्य चलेगा। इस प्रकार, अपनी जातिमें प्रतिष्ठापूर्वक सुख से जीवन-काल कट जायगा। और परलोक भी बन जायगा।

सोऽपि तदाकर्ण्य प्रहृष्टः प्राह–''साधु पतिव्रते ! साधु । युक्तमुक्तं भवत्या । तदेवं करिष्यामि । एष मे निश्चयः ।''

ततोऽसौ गत्वा व्यन्तरं प्रार्थयाञ्चक्रे–''भो, यदि ममेप्सितं प्रयच्छसि तद्देहि मे द्वितीयं बाहुयुगलं शिरश्च ।''

एवमभिहिते, तत्क्षणादेव स द्विशिराश्चतुर्बाहुश्च सञ्जातः । ततो हृष्टमना यावद् गृहमागच्छति तावल्लोकैः राक्षसोऽयमिति मन्यमानैर्ल-गुडपाषाणप्रहारैस्ताडितो, मृतश्च । अतोऽहं ब्रवीमि–

यस्य नास्ति स्वयं प्रज्ञा मित्रोक्तं न करोति यः ।
स एव निधनं याति यथा मन्थरकौलिकः ।।

इति चक्रधर आह–भोः, सत्यमेतत्। सर्वोऽपि जनो श्रद्धेयामाशापिशाचिकां प्राप्य हास्यपदवीं याति। अथवा साध्विदमुच्यते केनाऽपि–

व्याख्या– स इति। तत् = भार्यया कथितं वचनम् (पत्नी के वचन को) **आकर्ण्य** = श्रुत्वा (सुनकर) **प्रहृष्टः** = सुप्रसन्नः भूत्वा (प्रसन्न होकर)॥

असाविति। असौ = कौलिकः **प्रार्थयाञ्चक्रे** = ययाचे (यक्ष से प्रार्थना की, माँगा) **ममेप्सितं** = मनोऽभिलषितं मे मनोरथम् (मेरी चाही हुई वस्तु को) **बाहुयुगलं** = बाह्वोःयुगलम्, बाहुद्वयम् (दो हाथ)॥

एवमिति। तत्क्षणादेव = शीघ्रं (तत्काल) **लोकैः** = जनैः (ग्रामीणजनोंने) **मन्यमानैः** = मन्यते इति मन्यमानाः तैः स्वीकुर्वद्भिः (समझकर) **ताडितः** = प्रताडितः व्यापादितः (मार डाला गया)॥

इतीति। आशापिशाचिकाम् = विषयभोगेच्छैव पिशाचिका राक्षसी तां, तृष्णाराक्षसीमित्यर्थः (आशारूपी पिशाची को) **प्राप्य** = आवाप्य-(प्राप्तकर) **हास्यपदवीम्** = परिहास्यतां याति (उपहास को प्राप्त होता है)॥

हिन्दी– अपनी पत्नी के परामर्श को सुनकर जुलाहे ने प्रसन्न होकर कहा–'प्रिये ! तुम ठीक कहती हो। मैं तुम्हारी बात मानूंगा, यह मेरा दृढ विचार है।''

तत्पश्चात् उस जुलाहे ने यक्ष के पास जाकर बड़ी प्रसन्नता से कहा–यदि आप मेरी चाही वस्तु को देना चाहते हैं तो मुझे दों हाथ और एक सिर दे दें।

इस प्रकार यक्ष से मांगते ही वह जुलाहा दो सिर और चार हाथों वाला हो गया। तदनन्तर वह प्रसन्न होकर जैसे ही घर आने लगा, उसी समय–'यह राक्षस है' ऐसा मानकर लोगों ने लाठी और पत्थरों से उसे इतना मारा कि वह वहीं मर गया। अतः कहता हूँ–'जिसकी स्वयं की बुद्धि नहीं है और जो मित्र के परामर्श को नहीं मानता है, वह कौलिक के समान मारा जाता है।

तब चक्रधर ने कहा–भाई ! तुम ठीक कहते हो, अविश्वसनीय दुराशा-

पिशाची के चक्कर (जाल) में ग्रसित होने वाला प्रत्येक व्यक्ति उपहास का पात्र बनता है, अथवा ठीक ही कहा गया है–

अनागतवतीं चिन्तामसम्भाव्यां करोति यः ।
स एव पाण्डुरः शेते सोमशर्मपिता यथा ।।६७।।

अन्वयः– यः अनागतवतीम् असम्भाव्यां चिन्तां करोति स एव सोमशर्मपिता यथा पाण्डुरः शेते ।।६७।।

व्याख्या– अनागतेति । यः = जनः (जो मनुष्य) **अनागतवतीं** =भविष्यन्तीम् (अनागत) **असंभाव्याम्** = असंभावनीयाम् (असंभव) **स एव** = स एव मनुष्यः (वही मनुष्य) **पाण्डुरः** = चिन्ताग्रस्तः, पीतो दुर्बलश्च (चिन्तासे पीलेवर्ण का) **शेते** = स्वपिति (सोता है) ।।६७।।

हिन्दी– जो असंभाव्य एवं भविष्य की चिन्ता करता है, वह सोमशर्मा के पिता की तरह पाण्डुरोग से ग्रस्त रोगी की तरह पिले वर्ण का होकर सोता है ।।६७।।

सुवर्णसिद्धिराह-कथमेतत् । सोऽब्रवीत् ।

हिन्दी– सुवर्णसिद्धि ने कहा–यह कैसे ? वह बोला–

(९) सोमशर्म-पितृकथा

कस्मिंश्चिन्नगरे कश्चित्स्वभावकृपणो नाम ब्राह्मणः प्रतिवसति स्म। तेन भिक्षाऽर्जितैः सक्तुभिर्भुक्तशेषैः कलशः संपूरितः। तं च घटं नागदन्तेऽवलम्ब्य तस्याऽधस्तात्खट्वां निधाय सततमेकदृष्ट्या तमवलोकयति।

अथ कदाचिद्रात्रौ सुप्तश्चिन्तयामास–यत् परिपूर्णोऽयं घटस्तावत्सक्तुभिर्वर्तते तद्यदि दुर्भिक्षं, भवति, तदनेन रुप्यकाणां शतमुत्पत्स्यते। ततस्तेन मयाऽजाद्वयं ग्रहीतव्यम्। ततः षाण्मासिकप्रसववशात्ताभ्यां यूथं भविष्यिति। ततोऽजाभिः प्रभूता गा ग्रहीष्यामि गोभिर्महिषीः। महिषीभिर्वडवाः वडवाप्रसवतः प्रभूता अश्वा भविष्यन्ति। तेषां विक्रयात्प्रभूतं सुवर्णं भविष्यति। सुवर्णेन चतुःशालं गृहं सम्पत्स्यते।

व्याख्या– कस्मिंश्चिदिति। स्वभावकृपणः = स्वभावेण कृपणः प्रकृत्याकदर्यः (कंजूस) **तेन** = ब्राह्मणेन (उस ब्राह्मणने) **भिक्षार्जितैः** = भिक्षया अर्जितैः भिक्षाप्राप्तैः (भिक्षा के द्वारा प्राप्त किये हुए) **सक्तुभिः** = पिष्टान्नविशेषैः (सत्तू से) **भुक्तशेषैः** = भोजनावशिष्टैः (भोजन में से बचे हुए) **कलशः** = घटः (घड़ा) **संपूरितः** = आपूरितः (भर गया था) **नागदन्ते** = गृहभित्तौ निविष्टं काष्ठविशेषे (खूँटी पर) **अवलम्ब्य** = समारोप्य (टाँगकर) **तस्याऽधस्तात्** = नागदन्तावलम्बितघटस्याधस्तात् (खूँटी पर लटके हुए घड़े के नीचे) **खट्वाँ** = मञ्चकं-(चारपाई) **निधाय** = निक्षिप्य (रखकर) **एकदृष्ट्या** = एकचक्षुषा, अचंचलनेत्रदृष्ट्या-(एकटक दृष्टि से) **तं** = अवलंबितं घटं (उस टंगे हुए घड़े को) **अवलोकयति** = पश्यति।

अथेति। परिपूर्णोऽयं घटः = भुक्तषशेषैः सक्तुभिः आपूरितं घटः (खाकर बचे हुए सत्तु से यह घड़ा भर गया है) **दुर्भिक्षं** = अनावृष्ट्यानुत्पन्नखाद्यान्नाभावात् = अकाल **अनेन** = घटस्थितसक्तुना (घड़े में रखे सत्तु से) **उत्पत्स्यते** = प्राप्स्यते (प्राप्त होगा) **अजा द्वयं** = छागमिथुनम् (दो बकरियाँ) **ग्रहीतव्यम्** = क्रेतव्यम् (खरी दूंगा) **षाण्मासिकप्रसववशात्** = षड्भिर्मासैर्निष्पन्नः षाण्मासिकः स चासौ

प्रसवः प्रसूतिः तद्वशात् तद्द्वारेत्यर्थः (छः मास में प्रसव होने के कारण) **ताभ्यां** = छागमिथुनाभ्यां (दोनों बकरियों से) **यूथं** = समूहम्, **अजाभिः** = छागैः (बकरियों से) **प्रभूताः** = विपुलाः (बहुत से) **वडवाप्रसवतः** = वडवानां प्रसवतः = वडवोत्पत्तेः, **प्रभूतं** = प्रचुरं (पर्याप्त) **चतुःशालम्** = चतुसृषु दिक्षु शाला गृहाणि यत्र तादृशम् (चौसाल) ॥

हिन्दी– किसी नगर में स्वभावकृपण नामक एक ब्राह्मण रहता था। उसने भिक्षा द्वारा प्राप्त किये हुए तथा भोजन से बचे हुए सत्तु से एक घडा भर दिया और उस घडे को खूँटी पर लटका कर उसके नीचे चारपाई बिछाकर सदा एकटक दृष्टिसे उसे देखा करता था।

एक दिन सोते-सोते वह अपने मन में विचार करने लगा कि यह घड़ा अब सत्तु से भर गया है। यदि अकाल पडा तो इसे बेचने से एक सौ रुपया मुझे प्राप्त होगा। उनसे मैं दो बकरियाँ खरीदूँगा, फिर उनसे छःछः महिनों से उनके प्रसव होने से मेरे पास अनेक बकरियाँ हो जायँगी। फिर उन बकरियों को बेचकर मैं गायें खरीदूँगा। इस प्रकार अनेक गायों के होने पर उनसे भैंस खरीदूँगा। और भैसों से क्रमशः घोडियाँ खरीदूँगा। शनैः शनैः क्रमशः घोडियों से अनेक बच्चे पैदा होने पर अनेक घोड़े हो जायँगे, तब उन घोड़ों को बेचकर पर्याप्त सुवर्ण एकत्र करुँगा। फिर उस सुवर्ण-राशि से एक सुन्दर चतुःशाल का निर्माण करूँगा।

ततः कश्चिद् ब्राह्मणो मम गृहमागत्य प्राप्तवयस्कां रूपाढ्यां कन्यां मह्यं दास्यति। तत्सकाशात्पुत्रो मे भविष्यति। तस्याऽहं "सोमशर्मा" इति नाम करिष्यामि। ततस्तस्मिञ्जानुचलनयोग्ये सञ्जातेऽहं पुस्तकं गृहीत्वाऽश्वशालायाः पृष्ठदेशे उपविष्टस्तदवधाररियष्यामि। अत्रान्तरे सोमशर्मा मां दृष्ट्वा; जनन्युत्संगाज्जानुचलनपरोऽश्वखुरासन्नवर्ती मत्समीपमागमिष्यति। ततोऽहं ब्राह्मणीं कोपाविष्टोऽभिधास्यामि– "गृहाण तावद् बालकम्।" सोऽपि गृहकर्म व्यग्रतयाऽस्मद्वचनं न श्रोष्यति। ततोऽहं समुत्थाय, तां पादप्रहारेण ताडयिष्यामि।

एवं तेन ध्यानस्थितेन तथैव पादप्रहारो दत्तो यथा स घटो भग्नः, स्वयञ्च सक्तुभिः पाण्डुरतां गतः । अतोऽहं ब्रवीमि–

अनागतवतीं चिन्तामसम्भाव्यां कोरति यः ।

स एव पाण्डुरः शेते सोमशर्मपिता यथा ।। इति ।।

सुवर्णसिद्धिराह–एवमेतत् । कस्ते दोषः । यतः सर्वोऽपि लोभेन विडम्बितो बाध्यते । उक्तञ्च–

व्याख्या– तत इति । कश्चिद्ब्राह्मणः = कोऽपि विप्रः (कोई ब्राह्मण) **प्राप्तवयस्कां** = विवाहयोग्यां **युवतीम्** (विवाहयोग्य हुई युवती) **रूपाढ्यां** = सुन्दरीम् लावण्यवतीम् (सुन्दरी) **दास्यति** = विवाहे प्रदास्यति (मेरे साथ शादी कर देगा) **तत्सकाशात्** = भार्यायाः सकाशत् (पत्नी से) **जानुचलनयोग्ये** = जानुद्वयेन रिङ्गणं कर्तुं समर्थे सति (घुटने से रेंगने में समर्थ) **पृष्ठदेशे** = पृष्ठभागे (पीछे) **अवधारयिष्यामि** = विचारयिष्यामि (सोचूंगा) **जनन्युत्सङ्गात्** = मातुः क्रोडात् (माँ की गोद से) **जानुचलनपरः** = जानुभ्यां चलन् इति जानुचलनम्, तस्मिन् परः (घुटने से चलकर) **अश्वखुरासन्नवर्ती** = घोटकखुर (शफ) समीपस्थः (घोडे के पैर के निकट से चलता हुआ) **कोपाविष्टः** = क्रुद्धः सन् (क्रोधपूर्वक) **अभिधास्यामि** = कथयिष्यामि (कहूँगा) **गृहकर्मव्यग्रतया** = गृहस्य कर्माणि इति गृहकर्माणि तेषु व्यग्रा इति गृहकर्मव्यग्रा तस्याः भावः, तया गृहव्यापारसंलग्नतया (घर के काम में व्यस्त होने से) **अस्मद्वचनम्** = ममाज्ञां (मेरी आज्ञा को) **समुत्थाय** = उत्थाय (उठकर) **पादप्रहारेण** = चरणाघातेन (पैर के प्रहार से) **ध्यानस्थितेन** = विचारमग्नेन (विचार में मग्न) **भग्नः** = त्रुटितः (फूट गया) पाण्डुरतां घटस्थसक्तुभिरासिक्तशरीरेण पाण्डुवर्णतां (घडे के सत्तुसे पीत शरीर वाला) **गतः** = प्राप्तः-बभूव (हो गया) ।।

हिन्दी– मेरा घर निर्मित होने पर कोई ब्राह्मण आकर अपनी विवाहयोग्य युवती-सुन्दरी कन्या मुझे प्रदान कर देगा । उससे मुझे एक पुत्र होगा । उसका नाम मैं सोमशर्मा रखूँगा, जब वह घुटनों से रेगने योग्य हो जायगा, तब मैं पुस्तके लेकर अश्वशाला के पीछे बैठकर पढूँगा । इसी समय सोमशर्मा मुझे

देखकर अपनी माँ की गोद से उतरकर घुटनों से चलता हुआ घोड़े के खुर के समीप होता हुआ मेरे पास आयगा। तब क्रोधपूर्वक ब्राह्मणी से कहूँगा अरे तू पुत्र को ले ले। किन्तु गृह कार्य में व्यस्त होने से वह मेरी नहीं सुनेगी तो मैं लात से मारुँगा। इस प्रकार विचार करते-करते तल्लीन होकर जैसे ही उसने पाद प्रहार किया कि उसके पाद प्रहार से उसका सत्तूसे भरा हुआ घड़ा फूट गया और वह ब्राह्मण सत्तु से पीतवर्ण का हो गया।

अतः मैं कहता हूँ कि अनावश्यक चिन्ता करने वाला व्यक्ति सोमशर्मा के पिता की तरह भग्नमनोरथ हो जाता है।

सुवर्णसिद्धि ने कहा–तुम्हारा इसमें क्या दोष है ? क्योंकि सभी लोग लोभ से आकृष्ट होने पर दुःख का अनुभव करते हैं, कहा भी है–

यो लौल्यात्कुरुते कर्म नैवोदर्कमवेक्षते।
विडंबनामवाप्नोति स यथा चन्द्रभूपतिः ।।६८।।

अन्वयः– यः लौल्यात् कर्म कुरुते, उदर्कं न अवेक्षते, स चन्द्रभूपतिः यथा विडंबनाम् अवाप्नोति ।।६८।।

व्याख्या– य इति। यः = जनः (जो मनुष्य) **लौल्यात्** = लोभादि-समुत्थचापल्यात्-(लोभाकृष्ट होकर) **कर्म** = कार्यं कुरुते करोति (कार्य करता है) **उदर्कम्** = उत्तर- कालभवं फलन्तु नैव **अवेक्षते** = पर्यालोचयते (कार्य के परिणाम का विचार नहीं करता हैं) सः पुरुषः तथा **विडंबनाम्** न्यक्काराणाम् अवाप्नोति श्रयते यथा चन्द्रभूपत्तिः चन्द्रनामा भूपालः। (वह पुरुष विडंबना को प्राप्त होता है।) ।।६८।।

हिन्दी– जो व्यक्ति लोभ से आकृष्ट होकर कार्य करता है और उस कार्य के परिणाम का विचार नहीं करता है वह अन्त में धोखा खा जाता है। चन्द्रभूपति भी इसी प्रकार लोभवश ही धोखा खा गया था।

चक्रधर आह–कथमेतत्, स आह–

हिन्दी– चक्रधर ने पूछा–यह कैसे ? सुवर्णसिद्धि ने कहा–

(१०) चन्द्रभूपति–कथा

कस्मिंश्चिन्नगरे चन्द्रो नाम भूपतिः प्रतिवसति स्म। तस्य पुत्रा वानरक्रीडारता वानरयूथं नित्यमेवाऽनेकभोजनभक्ष्यादिभिः पुष्टिं नयन्ति स्म। अथ वानरयूथाऽधिपो यः स औशनसबार्हस्पत्यचाणक्यमतवित्, तदनुष्ठाता च तत्सर्वानप्याध्यापयति स्म।

अथ तस्मिन् राजगृहे लघुकुमारवाहनयोग्यं मेषयूथमस्ति। तन्मध्यादेको जिह्वालौल्यादहर्निशं निःशङ्कं महानसे प्रविश्य यत्पश्यति, तत्सर्वं भक्षयति। ते च सूपकारा यत्किञ्चित्काष्ठं, मृन्मयं भाजनं, कांस्यपात्रं, ताम्रपात्रं वा पश्यन्ति, तेनाशु ताडयन्ति।

व्याख्या– कस्मिंश्चिदिति। भूपतिः = नृपः (राजा) **प्रतिवसतिस्म** = निवसतिस्म (रहता था) **वानरक्रीडारताः** = मर्कटैः सह क्रीडानुरक्ताः (बन्दरों के साथ खेला करते थे) **वानरयूथं** = मर्कटवृन्दम् (बन्दरों के समूह को) **अनेकभोजनभक्षादिभिः** = भोज्यन्ते इति भोजनानि, भक्ष्यन्ते इति भक्ष्याणि। भोजनानि च भक्ष्याणि च इति भोजनभक्ष्याणि। अनेकानि भोजनभक्ष्याणि आदीनि येषां तानि, तैः, विविधभोजनपदार्थैः (विविध प्रकार के भोजन पदार्थों से) **पुष्टिं** = स्वास्थ्यवृद्धिं, पालनं वा कुर्वन्तिस्म (पालन-पोषण करते थे) **वानरयूथाधिपः** = मर्कटवृन्दाधिपः (बन्दरों का नायक) **औशनसम्** = उशनसा प्रोक्तमौशनसम्, भार्गवमुनिप्रोक्तं, **बार्हस्पत्यं** = बृहस्पतिना प्रोक्तं चाणक्यम् तच्च तन्मतम्, तद्वेत्तीति विविधनीतिशास्त्रनिष्णातः (शुक्राचार्य, बृहस्पति तथा चाणक्य आदि आचार्यों के नीतिशास्त्रों के मतों का ज्ञाता) **तदनुष्ठाता** = औशनसादिमतदर्शितनीतिमार्गानुयायी (उक्त आचार्यों के मतों का पालन करने वाला) **सर्वान्** = मर्कटान् (समस्त बन्दरों को) **अध्यापयतिस्म** = पाठयन्तिस्म (पढ़ाया करता था)।

अथेति। लघुकुमारवाहनयोग्यम् = लघूनां क्षुद्राणां अत्यल्पवयस्कराजकुमाराणां वाहनयोग्यम् (छोटे-छोटे राजकुमारों के बैठने के लिये) **मेषयूथं** = मेषवृन्दम्

(भेडों के समूह को) **तन्मध्यात्** = यूथमध्यात् (उस यूथ में से) **जिह्वालौल्यात्** = रसनाचापल्यात् (जिह्वा की चपलता के कारण) **अहर्निशम्** = अहोरात्रम् (दिन रात) **निःशङ्कं** = निश्चिन्तम्-निर्भयम्, (भयरहित होकर) **महानसे** = भोजनगृहे (भोजन-पाकशाला में) **भक्षयति** = खादयति (खाया करता था) **सूपकाराः** = पाचकाः (भण्डारी) **यत्किञ्चित् काष्ठं** = दारु, **मृन्मयं** = मृत्तिकानिर्मितं, **भाजनं** = पात्रम्, **आशु** = शीघ्रम्, **ताडयतिस्म** = घ्नन्तिस्म (मार दिया करते थे)।

हिन्दी– किसी नगर में चन्द्र नाम का एक राजा रहता था। उसके पुत्र बन्दरों के साथ खेलने में विशेष रूचि रखते थे और नित्य विविध प्रकार की खाद्यसामग्रियों से उनका पोषण किया करते थे। बन्दरों का नायक उशनस्, बृहस्पति तथा चाणक्यादि आचार्यों द्वाग रचित नीतिशास्त्रों का ज्ञाता था। वह स्वयं भी नीतिशास्त्रों में कथित वचनों का पालन करता था और अन्य बन्दरों को भी नीतिशास्त्र पढ़ाया करता था।

उस राजघराने में अल्पवयस्क राजकुमारों को बैठाकर वहन करने में समर्थ भेडों के एक समूह को भी पाला गया था। उन भेड़ों में से एक भेड प्रतिदिन अपनी झीभ की चपलता के कारण दिन में या रात में किसी भी समय अवसर प्राप्त होने पर पाकशाला में निर्भयता से प्रविष्ट हो जाता था, और उसे जो कुछ भी मिलता था, उसे वह खा लेता था, भोजन बनाने वाले भी उसे देखते ही लकड़ी, मिट्टी का बर्तन, तांबे का बर्तन अथवा फूल (कांस्यपात्र) का बर्तन, जो भी उस समय उनके पास रहता था, उसी को चलाकर मार दिया करते थे।

सोऽपि वानरयूथपस्तद् दृष्ट्वा व्यचिन्तयत्–"अहो, मेषसूपकारकलहोऽयं वानराणां क्षयाय भविष्यति। यतोऽन्नरसास्वादलम्पटोऽयं मेषो, महाकोपाश्च सूपकारा यथासन्नवस्तुना प्रहरन्ति। तद्यदि वस्तुनोऽभावात्कदाचिदुल्मुकेन ताडयिष्यन्ति, तदूर्णाप्रचुरोऽयं मेषः स्वल्पेनाऽपि वह्निना प्रज्वलिष्यति। तद्दह्यमानः पुनरश्वकुट्यां समीपवर्तिन्यां प्रवेक्ष्यति। साऽपि तृणप्राचुर्याज्ज्वलिष्यति। ततोऽश्वा वह्निदाहमवाप्स्यन्ति।

शालिहोत्रेण पुनरेतदुक्तं यत–''वानरवसयाऽश्वानां वह्निदाहदोषः प्रशाम्यति,'' तन्नूनमेतेन भाव्यम्। एषोऽत्र निश्चयः एवं निश्चित्य सर्वान् वानरानाहूय रहसि प्रोवाच यत्–

व्याख्या– स इति। तद् दृष्ट्वा = मेषसूपकारयोर्विवादं विलोक्य (भेड़ और भण्डारियों की स्थिति को देखकर) **व्यचिन्तयत्** = चिन्तयामास (सोचने लगा) **कलहः** = विवादः-संघर्षः (झगड़ा) **क्षयाय** = विनाशाय (नाश का कारण) **अन्नरसास्वादलम्पटः** = पक्वान्नभक्षणलोलुपः = (भोजन का लोभी) **महाकोपाः** = शीघ्रकोपाः (शीघ्र क्रुद्ध होने वाले) **यथासन्नवस्तुना** = आसन्नम् अनतिक्रम्य इति यथासन्नम्, यथासन्नं च तद् वस्तु तेन, सन्निकटस्थपदार्थेन (समीप में ही रखी हुई वस्तु से) **उल्मुकेन** = ज्वलता काष्ठेन (जलती हुई लकडी से) **ऊर्णाप्रचुरः** = लोमबहुलः, बहुलोमोपेतः (अत्यधिक ऊर्णायुक्त, ऊन) **स्वल्पेन** = अत्यल्पेन (क्षीण चिनगारी से भी) **दह्यमानः** = प्रज्वलनशीलः (ज्वलनशील) **अश्वकुट्यां** = घोटकशालायां (अश्वशाला में) **सा** = अश्वशाला, **तृणप्राचुर्यात्** = घासबाहुल्यात् (अत्यधिक घास के होने से) **वह्निदाहम्** = अग्निदाहं (आग)।

शालिहोत्रेणेति। शालिहोत्रेण = अश्वचिकित्सकेन, अश्वचिकित्साविदा (शालिहोत्र ने) **वानरवसया** = मर्कटवपया 'मेदस्तु वपा वसे' **त्यमरः** (बन्दर की चर्बी से) **वह्निदाहदोषः** = अग्निदाहजन्यदोषः (अग्नि से जलने के कारण बना हुआ घाव) **एतेन भाव्यम्** = अवश्यमेवेयं घटना भविष्यति (यह घटना निश्चित ही होगी) **रहसि** = एकान्ते (एकान्त में) **प्रोवाच** = उवाच (कहा)।

हिन्दी– बन्दरों का नायक यह देखकर बहुत चिन्तित हुआ। उसने सोचा कि भेड़ और भण्डारियों के मध्य में होने वाला प्रतिदिन का कलह किसी दिन बन्दरों के विनाश का कारण होगा। क्योंकि यह भेड़ पक्वान्न को खाने का लोभी है और भण्डारी भी शीघ्र कोपी हैं, वे जोभी वस्तु पास में होती है, उससे मारा करते हैं। तो यदि वस्तु के न होने पर वे अवश्य ही जलती हुई लकड़ी से मारेंगे, और इस भेड़ के शरीर में पर्याप्त ऊन है, जो अत्यल्प लकड़ी की आग से कभी भी जल सकता है। फिर तो जलता हुआ यह भेड़ (मेष) कभी समीपस्थ

अश्वशाला में घुस जायगा और वहाँ घास पर्याप्त होने के कारण वह शाला जल उठेगी, और उस आग से निश्चय ही घोड़े जल जायँगे।

शालिहोत्र ने लिखा है–कि घोड़े अग्नि से जल जाने पर उनका दाह वानरों की चर्बी से ठीक होता है। निश्चय ही यह घटना एक दिन घटित होगी। ऐसा विचार कर उसने समस्त बन्दरों को एकान्त में बुलाकर कहा–

मेषेण सूपकाराणां कलहो योऽत्र जायते।
स भविष्यत्यसंदिग्धं वानराणां क्षयावहः ।।६९।।

अन्वयः– अत्र मेषेण सूपकाराणां यः कलहः जायते, स असन्दिग्धं वानराणां क्षयावहः भविष्यति ।।६९।।

व्याख्या– मेषेणेति। अत्र-राजप्रासादे (राज घर में) **मेषेण** = एडकेन सह, **सूपकाराणां** = सूदानां, **यः कलहः** = विवादः संघर्षः (विवाद) **जायते** = भवति, **असन्दिग्धम्** = निःसंशयम् **वानराणां** = मर्कटानां (बन्दरों का) **क्षयावहः** = क्षयमावहतीति विनाशकरः भविष्यति ।।६९।।

हिन्दी– मेष और सूपकारों-भोजनबनानेवालों का यह कलह किसी दिन निश्चित ही बन्दरों के विनाश का कारण बनेगा ।।६९।।

तस्मात् स्यात् कलहो यत्र गृहे नित्यमकारणः।
तद्गृहं जीवितं वाञ्छन् दूरतः परिवर्जयेत् ।।७०।।

अन्वयः– तस्मात् यत्र गृहे नित्यम् अकारणः कलहः स्यात् जीवितं वाञ्छन् तद्गृहं दूरतः परिवर्जयेत् ।।७०।।

व्याख्या– तस्मादिति। तस्मात् = अतः (इसलिये) **यत्र गृहे** = यस्मिन् गृहे अर्थात् यस्मिन् परिवारजने, (जिस घर के परिवार में) **नित्यम्** = अहर्निशम् (दिन-रात) **अकारणः** = बिना कारणेन (विनाकारण) **विवादः** = कलहः (कलह) **जीवितं वाञ्छन्** = स्वकुशलं स्वजीवनमिच्छन् नरः (अपना जीवन चाहने वाला मनुष्य) **परिवर्जयेत्** = त्यजेत् (त्याग दे) ।।७०।।

हिन्दी– जिस घर में या परिवार के जनों में अकारण कलह होता हो, उस घर को, जीवित रहने की इच्छा रखनेवाला व्यक्ति तत्काल छोड़ दे ।।७०।।

कलहान्तानि हर्म्याणि कुवाक्यान्तं च सौहृदम् ।
कुराजान्तानि राष्ट्राणि कुकर्मान्तं यशो नृणाम् ।।७१।।

अन्वयः– हर्म्याणि कलहान्तानि, सौहृदं कुवाक्यान्तं, राष्ट्राणि कुराजान्तानि नृणां यशः च कुकर्मान्तं (तिष्ठति) ।।७१।।

व्याख्या– कलहान्तानीति । हर्म्याणि = गृहाणि, धनिनां वासभवनानि, **कलहान्तानि** = विवादान्तानि, कलहेन विग्रहेण अन्तो अवसानो येषां तानि, (गृहकलह से नष्ट हो जाते हैं) । येषु गृहेषु कलहः समुत्थितो भवति तेषां सद्यो विनाशो जायत इत्यर्थः । **सौहृदं** = सख्यम् (मित्रता) मैत्रीतु **कुवाक्यान्तम्** = कुवाक्येन कटुवचनभाषणेनान्तोऽवसानं यस्य तत्तादृशम्, (कटुवचन से मित्रता नष्ट हो जाती है ।) कुवाक्य प्रयोगे सौहृदं विनश्यतीत्यर्थः । **राष्ट्राणि** = राज्यानि (राज्य) **कुराजान्तानि** = कुराजेन अन्तो नाशो येषां तानि, (दुष्टराजा के शासन से राष्ट्र नष्ट हो जाते हैं ।) यत्रराजा दोषवान् स्यात् तद्राज्यं राजदोषेण नष्टं भवति । **नृणाम्** = मनुष्याणां **यशः** कीर्तिः, **कुकर्मान्तं** = कुकर्मणा अन्तो यस्य तत् दुष्कर्मैव यशोविनाशकृदित्यर्थः । (कुकर्म से मनुष्य की कीर्ति-(यश)-नष्ट हो जाती है) ।।७१।।

हिन्दी– नित्य होनेवाले कलह से घर नष्ट हो जाते हैं, कटुवचनों के प्रयोग से मित्रता नष्ट हो जाती है, कुराजा के कारण राष्ट्र नष्ट हो जाते हैं, और व्यक्ति का यश दुष्कर्म करनेसे नष्ट हो जाता है ।।७१।।

तन्न यावत्सर्वेषां संक्षयो भवति, तावदेवैतद्राजगृहं संत्यज्य वनं गच्छामः । अथ तत्तस्य वचनमश्रद्धेयं श्रुत्वा मदोद्धता वानराः प्रहस्य प्रोचुः–"भो ! भवतो वृद्धभावाद् बुद्धिवैकल्यं सञ्जातं, येनैतद् ब्रवीषि । उक्तञ्च–

व्याख्या– तदिति । राजगृहं = राजप्रासादं, (राजभवन) **सन्त्यज्य** = त्यक्त्वा (छोडकर) **अश्रद्धेयम्** = अविश्वसनीयम् (अविश्वस्त) **मदोद्धताः** = प्रमत्ताः-मदेन उद्धताः मदोद्धताः (मद से रे हुए) **वृद्धभावात्** = वृद्धावस्थया (वृद्धावस्था के कारण) **बुद्धिवैकल्यं** = विकलस्य भावः वैकल्यम्, बुद्धेः वैकल्यम्, मतिह्रासः (बुद्धि की कमी) **ब्रवीषि** = कथयसि ।

हिन्दी– अतः जब तक समस्त बन्दरों का विनाश-काल नहीं आता उसके पूर्व ही हम सभी को इस राजभवन का त्याग कर किसी वन में जाना चाहिए। बन्दरों के नायक द्वारा कहे गये इस अविश्वसनीय बात को सुनकर मदोन्मत्त बन्दरों ने हँसते हुए कहा–वृद्धावस्था के कारण आपकी बुद्धि का ह्रास हो गया है। इसलिए आप इस प्रकार कह रहे हैं–कहा भी है–

वदनं दशनैर्हीनं, लाला स्रवति नित्यशः।
न मतिः स्फुरति क्वापि बाले वृद्धे विशेषतः ।।७२।।

अन्वयः– (वृद्धत्वे) दशनैः हीनं वदनं नित्यशः लाला स्रवति बाले वृद्धे विशेषतः क्वापि मतिः न स्फुरति ।।७२।।

व्याख्या– वदनमिति । दशनैः = दन्तैः (दाँतों से) **हीनं** = रहितं (रहित) **वदनं** = मुखम्, **नित्यशः** प्रतिदिनं, सर्वदा (सदा) **लाला** = सृणिका 'सृणिका स्यन्दिनी लाला' **इत्यमरः** (लाल-लार) **स्रवति** = निःसरति (टपकती है) बाले = शैशवावस्थायां (बाल्यकालमें) **वृद्धत्वे** = वृद्धावस्थायां (बुढापे में) **विशेषतः** = विशेषेण **क्वापि** = कस्मिन्नपि विषये (किसी भी विषय में) **मतिः** = बुद्धिः, **न स्फुरति** = न प्रसरति (स्फुरित नहीं होती, काम नहीं करती) ।।७२।।

हिन्दी– वृद्धावस्था में मुख में दाँत न रहने के कारण लार टपकती रहती है और शैशवावस्था में और विशेषकर वृद्धावस्था में किसी भी विषय में बुद्धि काम नहीं करती है ।।७२।।

न वयं स्वर्गसमानोपभोगान्नानाविधान्भक्ष्यविशेषान् राजपुत्रैः स्वहस्तदत्तानमृतकल्पान् परित्यज्य तत्राऽटव्यां कषायकटुतिक्तक्षार-रूक्षफलानि भक्षयिष्यामः।'' तच्छ्रुत्वाऽश्रुकलुषां दृष्टिं कृत्वा स प्रोवाच–

''रे रे मूर्खाः ! यूयमेतस्य सुखस्य परिणामं न जानीथ। किम्पा-करसास्वादनप्रायमेतत्सुखं परिणामे विषवद् भविष्यति। तदहं कुलक्षयं स्वयं नावलोकयिष्यामि। साम्प्रतं वनं यास्यामि। उक्तञ्च–

व्याख्या– नवयमिति । स्वर्गसमानोपभोगान् = दिव्यभोगतुल्यानित्यर्थः स्वर्गतुल्यसुखप्रदविषयान्, (स्वर्ग के समान दिव्य उपभोगों को) **नानाविधान्** = बहुविधान्, अनेकप्रकारान् (विविध प्रकार के) **स्वहस्तदत्तान्** = स्वहस्तसमर्पितान् (अपने हाथों से दिये हुए) **अमृतकल्पान्** = अमृतात् ईषत् ऊनाः इति अमृतकल्पाः तान् सुधासदृशान् (अमृत जैसे) **परित्यज्य** = विहाय (छोडकर) **तत्राटव्यां** = वने (जंगलमें) **कषायकटुतिक्तक्षार-रूक्षफलानि** = विविधस्वादयुक्तानि-(कषाय, कटु, तिक्त, नमकीन तथा नीरस फलों को) रहितानि च । **अश्रुकलुषाम्** = अश्रुपूर्णां (आँसुओं से भरी) **दृष्टिं** = नेत्रम् ।

रे रे मूर्खा इति । परिणामं = फलम्, **किम्पाकरसास्वादप्रायं** = किम्पाकः फलविशेषः आदौ स्वादुः परिणामे दुःखप्रदः तस्य यो रसः तदास्वादनम् उपभोगः तत्प्रायं तत्सदृशं क्षुद्रम् (विष वृक्ष के फल की तरह) **साम्प्रतम्** = इदानीम् (इस समय) **यास्यामि** = गमिष्यामि (जाऊँगा) (जाता हूँ ।) ॥

हिन्दी– बन्दरों ने अपने नायक से कहा–हम सभी बन्दर स्वर्गतुल्य दिव्य उपभोगों को तथा राजपुत्रों के द्वारा स्वयं अपने हाथों से स्नेहपूर्वक प्रदत्त अमृत के समान विविध प्रकार के सुरुचिपूर्ण भोज्य-पदार्थों को छोड़कर वन में कषाय, कटु, तिक्त, क्षार, एवं विरस फलों को खाने के लिये नहीं जायँगे । उन बन्दरों की बातों को सुनकर नायक-बन्दर ने अश्रुपूर्ण दृष्टि से कहा–

अरे मूर्खो ! तुम सभी इस सुख के परिणाम को नहीं जानते हो, यह राजभवन का सुख स्वादिष्ट विषवृक्ष के फल के समान परिणाम में विष की तरह ही होगा । अतः मैं अपने नेत्रों से अपने कुल का विनाश होते नहीं देखूँगा । अतः मैं अभी वन में चला जाता हूँ । क्योंकि–

मित्रं व्यसनसम्प्राप्तं स्वस्थानं परपीडितम् ।
धन्यास्ते ये न पश्यन्ति देशभङ्गं कुलक्षयम् ।।७३।।

अन्वयः– ये व्यसनसम्प्राप्तं मित्रं परपीडितं स्वस्थानम् देशभङ्गं कुलक्षयं च न पश्यन्ति ते धन्यः ।।७३।।

व्याख्या– मित्रमिति । ये = जनाः, **व्यसनसम्प्राप्तं** = विपद्ग्रस्तं मित्रम्

(जो अपने मित्र को आपद्ग्रस्त) **परपीडितं** = परैः शत्रुभिः पीडितमाक्रान्तम् (शत्रुओं से आक्रान्त) **स्वस्थानम्** = स्वजन्मभूमिं (अपनी जन्मभूमिको) स्वगृहं वा तथा **देशभङ्गम्** = राजविग्रहे सति उपद्रुतं (देश के विभाजन, छिन्नावस्था) (देश के विनाश को) **कुलक्षयं** = वंशक्षयञ्च (कुल का नाश) **ते धन्याः** = पुण्यात्मानः सन्ति, श्रेष्ठ, (धन्य है) ॥७३॥

हिन्दी– जो लोग विपत्ति में ग्रस्त अपने मित्र को, शत्रुओं से आक्रान्त अपनी जन्मभूमि को एवं अपने राष्ट्र तथा कुल के विनाश को अपनी आँखों से नहीं देखते हैं, वे पुरुष धन्य, (पुण्यात्मा-श्रेष्ठ) हैं ॥७३॥

एवमभिधाय सर्वांस्तान् परित्यज्य स यूथाधिपोऽटव्यां गतः। अथ तस्मिन्यातेऽन्यस्मिन्नहनि स मेषो महानसे प्रविष्टो, यावत्सूपकारेण नान्यत्किञ्चित्समासादितं तावदर्धज्वलितकाष्ठेन ताड्यमानो जाज्वल्यमानशरीरः शब्दायमानोऽश्वकुट्यां प्रत्यासन्नवर्तिन्यां प्रविष्टः।

तत्र तृणप्राचुर्ययुक्तायां क्षितौ तस्य प्रलुठतः सर्वत्राऽपि वह्निज्वालास्तथा समुत्थिता, यथा केचिदश्वाः स्फुटितलोचनाः पञ्चत्वं गताः। केचिद् बन्धनानि त्रोटयित्वा अर्धदग्धशरीरा इतश्चेतश्च ह्रेषायमाणा धावमानाः, सर्वमपि जनसमूहमाकुलीचक्रुः।

व्याख्या– एवमिति। एवमभिधाय = उपर्युक्तं वचनमुक्त्वा (ऊपर कहे हुए वचनों को कहकर) **तान्** = मर्कटान् (बन्दरों को) **परित्यज्य** = त्यक्त्वा (छोडकर) **अटव्यां** = वने (जंगल में) **अन्यस्मिन्नहनि** = अन्यदिने (दूसरे दिन) **महानसे** = पाकशालायां (रसोई घर में) **समासादितम्** = सम्प्राप्तम् (अन्य कोई चीज मारने के लिये नहीं मिली) **अर्धज्वलितकाष्ठेन** = अर्धदग्धकाष्ठेन (आधी जली लकड़ी से) **ताड्यमानः** = हन्यमानः (मारा जाता हुआ) **जाज्वल्यमानशरीरः** = पुनः पुनः ज्वलति इति जाज्वल्यते, जाज्वल्यते इति जाज्वल्यमानम्, जाज्वल्यमानं शरीरं यस्य सः प्रज्वलितशरीरः (जलते हुए शरीर से) **शब्दायमानः** = शब्दं करोतीति शब्दायते। शब्दायते इति शब्दायमानः शब्दं कुर्वन् (चिल्लाता हुआ) **प्रत्यासन्नवर्तिन्यां** = निकटवर्तिन्यां, समीपस्थितायां

(निकटस्थ) **तत्र** = अश्वशालायां (घोड़ों के गृहमें) **तृणप्राचुर्ययुक्तायां** = घासबहुलायां (घास के आधिक्य से) **स्फुटितलोचनाः** = स्फुटिते लोचने येषां ते, भग्ननेत्राः (आँखें फूट जाने से) **पञ्चत्वं** = निधनं (मृत्यु) **त्रोटयित्वा** = खण्डयित्वा (तोडकर) **अर्धदग्धशरीराः** = ज्वविलतार्धशरीराः (आधे जले हुए शरीर से) **ह्रेषायमाणाः** = शब्दायमानाः (हिन हिनाते हुए) **जनसमूहं** = मनुष्यसमुदायं (जन समूह को) **आकुलीचक्रुः** = व्याकुलं कृतवन्तः ।

हिन्दी– ऐसा कहकर वह बन्दरों का नायक उन सभी बन्दरों को वहीं छोड़कर वन में चला गया । इस प्रकार उसके चले जाने के पश्चात् एक दिन उस भेड़ ने पाकशाला में प्रवेश किया, भण्डारियों ने अन्य किसी वस्तु को अपने पास में न पाकर जलती हुई लकडी से ही उसे मारा, जिससे उसका शरीर प्रज्वलित हो गया । वह चिल्लाता हुआ निकटस्थ घुड़शाला में प्रविष्ट हो गया ।

घास के प्राचुर्य युक्त उस अश्वशाला में अपने शरीर की आग बुझाने के लिए लोटते हुए उस भेड़ के द्वारा पूरी अश्वशाला में आग लग गयी, और अल्पकाल में ऐसी भयानक अग्नि की ज्वालाएँ उठीं कि कुछ घोड़ों के नेत्र फूट गये जिससे वे तत्काल मर गये और कुछ घोडे अपने बन्धनों को तोड़कर अग्नि से आधे जलाये गये शरीर से इधर-उधर शब्द करते हुए भागने लगे । उन घोड़ों की इस प्रकार की भाग-दौड़ से समस्त जनसमूह व्याकुल हो गया ।

अत्रान्तरे राजा सविषादः शालिहोत्रज्ञान् वैद्यानाहूय, प्रोवाच– "भोः ! प्रोच्यतामेषामश्वानां कश्चिद्दाहोपशमनोपायः ।" तेऽपि शास्त्राणि विलोक्य प्रोचुः–"देव ! प्रोक्तमत्र विषये भवता शालिहोत्रेण, यत्–

व्याख्या– अत्रेति । अत्रान्तरे = अस्मिन्नेवावसरे (इसी समय) **सविषाद** = विषादेन सहितः सविषादः-दुःखितः (घोड़ो के जलजाने की घटना को देखकर अत्यधिक दुःखी होकर) **शीलहोत्रज्ञान्** = घोटकचिकित्सकान् = (घोडों की चिकित्सा करने वाले आचार्यों को) **प्रोच्यताम्** = सूच्यताम् (सूचित करो) **दाहोपशमनोपायः** = अग्निदग्धशमनोपायः (अग्नि के जलने से उत्पन्न दाह

को शमित करने के उपायों को) **तेऽपि** = चिकित्सका: वैद्या: (वैद्यों ने)- **शास्त्राणि** = घोटकचिकित्साविषयकशास्त्राणि (घोड़ों की चिकित्सा से सम्बन्धित शास्त्रो को) **प्रोचुः** = अवोचन् (कहा) **प्रोक्तम्** = कथितम् (कहा है) **अत्र विषये** = अश्वानामग्निदग्धावसरे (घोड़ों के जल जाने पर) **शालिहोत्रेण** = तन्त्राम्नाचार्येण।

हिन्दी– घोड़ों के जलजाने से दु:खी राजा ने अश्वचिकित्सक वैद्यों को बुलाकर पूछा–आप बताइये कि इन अग्निदग्ध घोड़ों के दाह की शन्ति किसी प्रकार हो सकती है ? तब उन चिकित्सकों ने अश्वचिकित्साशास्त्र को देखकर कहा–महाराज, इस विषय में आचार्यशालिहोत्र ने कहा है–

कपीनां मेदसा दोषो वह्निदाहसमुद्भवः।
अश्वानां नाशमभ्येति तमः सूर्योदये यथा।।७४।।

अन्वयः– अश्वानां वह्निदाहसमुद्भव: दोष: कपीनां मेदसा सूर्योदयं तप: यथा नाशम् अभ्येति ।।७४।।

व्याख्या– कपीनामिति। वह्निदाहसमुद्भवः = अग्निदाहोत्पन्न:, (अग्निदाह से उत्पन्न होने वाला) **अश्वानां** = वाजिनां **दोषः** = व्रणादिरोग: (घोडों के घाव आदि दोष) **कपीनाम्** = वानराणां (बन्दरों के) **मेदसा** = वपया (मेद से) **नाशं** = विनाशम्, **अभ्येति** = शाम्यति (शान्त हो जाता है) अत्रार्थे उपमा-यथा सूर्योदये तमोऽन्धकारो नश्यतीत्यर्थ: ।।७४।।

हिन्दी– घोड़ों का अग्नि से दग्ध होने पर उत्पन्न दाह वानरों की चर्बी से, सूर्योदय होने पर स्थित अन्धकार की तरह दूर हो जाता है ।।७४।।

तत्क्रियतामेतच्चिकित्सितं द्राक्, यावदेतेन दाहदोषेण विनश्यन्ति। सोऽपि तदाकर्ण्य समस्तवानरवधमादिष्टवान्। किं बहुना– सर्वेऽपि ते वानरा विविधायुधलगुडपाषाणादिभिर्व्यापादिता इति।

अथ सोऽपि वानरयूथपस्तं पुत्रपौत्रभ्रातृसुतभागिनेयादिसंक्षयं ज्ञात्वा विषादमुपगतः, सन्त्यक्ताहारक्रियो वनाद्वनं पर्यटति। अचिन्तयच्च–"कथमहं तस्य नृपापसदस्यानृणताकृत्येनाऽपकृत्यं करिष्यामि। उक्तञ्च–

व्याख्या– तदिति । एतत् = वानरवपारूपं (बन्दरों की चर्बी की) **चिकित्सतम्** = उपचारः, **भैषज्यम्** (दवा) **द्राक्** = शीघ्रम् (तुरंत, शीघ्र) **सोऽपि** = नृपोऽपि, **तदाकर्ण्य** = तेषां आचार्याणां वचनं श्रुत्वा (वैद्यों की बात सुनकर) **वानरवधं** = मर्कटानां विनाशाय, तेषां मारणाय (उनको मारने के लिये) **आदिष्टवान्** = आज्ञापयामास (आदेश दिया) **व्यापादिताः** = हताः (मार डाले गये)।

अथेति । पुत्रपौत्रभ्रातृसुतभागिनेयादिसंक्षयं = स्वकुलक्षयम्निज-परिवारविनाशं = (अपनेकुल-परिवार का नाश) **ज्ञात्वा** = अवगम्य (जानकर) **परम्** = नितान्तम् (अत्यन्त) **विषादमुपगतः** = शोकमग्नः (शोकाकुल) **संत्यक्ताहारक्रियः** = आहारस्य क्रिया इति आहारक्रिया, संत्यक्ता आहारक्रिया येन, भोजनं त्यक्त्वा (भोजन छोडकर) **पर्यटति** = भ्रमति (घूमता) **नृपापसदस्य** = नृपेषु अपसदः इति नृपापसदः, तस्य दुष्टस्य-नीचराज्ञः, **अनृणताकृत्येन** = नास्ति ऋणं यस्मिन् सः अनृणः तस्य भावः अनृणता, तस्याः कृत्यम् तेन, आनृण्यसम्पादनेन वैरसाधनेनानृण्यं, स्ववैरभावपरिशोधार्थमित्यर्थः = अपकारं कृत्वा, **करिष्यामि** = विधास्यामि।

हिन्दी– राजा ने उन चिकित्सकों को कहा–आप शीघ्र ही इस चिकित्सा को कीजिये, जिससे ये अश्व अग्निदाह के दोष से होनेवाली मृत्यु से बच जाँय। तत्पश्चात् राजा ने समस्त बन्दरों के वध की आज्ञा दे दी। तत्काल ही वे गरीब बन्दर विविध प्रकार के शस्त्र लाठी और पत्थरों से मार दिये गये।

उन बन्दरों का नायक (यूथप) अपने पुत्र, पौत्र, भतीजे तथा भागिनेय आदि सभी सगे-संबन्धियों की मृत्यु का समाचार सुनकर अत्यन्त दुःखी हुआ और भोजन आदि का त्याग कर इधर-उधर एक वन से दूसरे वन में भ्रमण करने लगा और विचार करने लगा कि मैं इस नीच राजा से अपने बैर का बदला कौन से कार्य के द्वारा इसका अपकार करके चुकाऊँ। कहा भी है–

मर्षयेद्धर्षणां योऽत्र वंशजां परनिर्मिताम्।
भयाद्वा यदि वा कामात् स ज्ञेयः पुरुषाऽधमः ।।७५।।

अन्वयः– यः अत्र भयात् यदि वा कामात् परनिर्मितां वंशजां धर्षणां मर्षयेत् स पुरुषाधमः ज्ञेयः ॥७५॥

व्याख्या– मर्षयेदिति । यः = पुरुषः (जो व्यक्ति) **अत्र** = अस्मिन् संसारे (इस संसार में)-**भयात्** = भयवशात्-भीतिकारणात् वा, **यदि वा** = अथवा, **कामात्** = निजेच्छया, (अपनी इच्छा से) **परनिर्मितां** = शत्रुकृताम्, **धर्षणां** = पराभवं-पराजयम्, अवमानम्, **मर्षयेत्** = क्षमेत, सहेत (शत्रु द्वारा किये गये पराभव को क्षमा करे, सहन कर ले,) **स पुरुषाधमः** = नीचपुरुषः (नीच व्यक्ति है) **ज्ञेयः** = ज्ञातव्यः (समझ लेना चाहिये) पुरुषेषु अधमो नीचः ज्ञेयो नीतिकुशलैरिति ॥७५॥

हिन्दी– जो व्यक्ति इस संसार में भय से अथवा स्वेच्छा से शत्रु के द्वारा की गयी अपने कुल-वंश की अवमानना को सहन कर लेता है, उसे अत्यन्त नीच-अधम पुरुष समझना चाहिए ॥७५॥

अथ तेन वृद्धवानरेण कुत्रचित्पिपासाकुलेन भ्रमता पद्मिनी-खण्डमण्डितं सरः समासादितम् । तद्यावत्सूक्ष्मेक्षिकयाऽवलोकयति तावद् वनचरमनुष्याणां पदपङ्क्तिप्रवेशोऽस्ति न निष्क्रमणम् । ततश्चिन्तितम् ''नूनमत्र जलान्ते दुष्टग्राहेण भाव्यम् । तत्पद्मिनीनालमादाय दूरस्थोऽपि जलं पिबामि ।''

तथाऽनुष्ठिते तन्मध्याद्राक्षसो निष्क्रम्य, रत्नमालाविभूषितकण्ठ-स्तमुवाच–''भोः ! अत्र यः सलिले प्रवेशं करोति स मे भक्ष्यः इति । तत्राऽस्ति धूर्ततरस्त्वत्समोऽन्यो यः पानीयमनेन विधिना पिबति । ततस्तुष्टोऽहं, प्रार्थयस्व हृदयवाञ्छितम् ।''

कपिराह–''भोः ! कियती ते भक्षणशक्तिः ?''

स आह–''शतसहस्रायुतलक्षाण्यपि जलप्रविष्टानि भक्षयामि । बाह्यतः शृगालोऽपि मां धर्षयति ।''

वानर आह–अस्ति मे केनचिद् भूपतिना सहाऽत्यन्तं वैरम् । यद्येनां रत्नमालां मे प्रयच्छसि, तत्सपरिवारमपि तं भूपतिं वाक्यप्रपञ्चेन लोभयित्वाऽत्र सरसि प्रवेशयामि ।

सोऽपि श्रद्धेयं वचस्तस्य श्रुत्वा रत्नमालां दत्वा प्राह–"भो मित्र ! यत्समुचितं भवति तत्कर्त्तव्यम्" इति ।

व्याख्या– अथेति । अथ = अनन्तरं (इसके पश्चात्) **पिपासाकुलेन** = पिपासया आकुलेन, तृषार्तेन (तृष्णा-प्यास से व्याकुल) **पद्मिनीखण्डमण्डितं** = कमलिनीवृन्दसज्जितम् (कमलिनी से सुशोभित) **सरः** = तडागः (सरोवर) **समासादितम्** = अवाप्तम् (मिला) **सूक्ष्मेक्षिकया** = सूक्ष्मदृष्ट्या (सूक्ष्म दृष्टि से) **वनचरमनुष्याणां** = वने चरन्तीति वनचराः वनवासिनां नराणाम् (वनवासी प्राणियों की) **पदपङ्क्तिः** = चरणचिह्नावलिः **प्रवेशः** = अभ्यन्तरगमनम् (तालाब में प्रवेश करने वालों की) **न निष्क्रमणम्** = प्रत्यावर्तनम् (बाहर लौटने की) **जलान्ते** = जलमध्ये (जल में) **दुष्टग्राहेण** = जलचरजन्तुविशेषेण नक्रादिना, (दुष्ट मगर आदि से) **भाव्यम्** = भवितव्यम् (रहता होगा) **पद्मिनीनालं** = कमलिनी-दण्डम् (कमलिनी के नाल को) **दूरस्थोऽपि** = बहिःस्थितः सन् (बाहर रहकर ही) ॥

तथेति । तथानुष्ठिते = पद्मिनीनालद्वाराजले पीते सति, (कमलिनी के नाल से पानी पीने पर) **निष्क्रम्य** = बहिर्भूत्वा (बाहर आकर) **रत्नमालाविभूषित-कण्ठः** = रत्नानां मणीनां मालाभिर्विभूषितो मण्डितः कण्ठो गलो यस्य स तथाविधः (गले में रत्नों की माला धारण किया हुआ) **धूर्ततरः** = प्रवञ्चकः, अतिशयेन धूर्ततरः (महाठग, धूर्त) **हृदयवाञ्छितम्** = अभीष्टम् (मनोवाञ्छित वस्तु) **भक्षणशक्तिः** = भोजनसामर्थ्यम् (भोजन करने की शक्ति) **अयुतं** = दशसहस्रं (१० हजार) **जलप्रविष्टानि** = जलान्तर्गतानि (जल के भीतर आये हुए) **बाह्यतः** = बहिः स्थितः सन् = (बाहर स्थित होने पर) **धर्षयति** = पराभवति, (पराजित करता है) ॥

वानर इति । भूपतिना = राज्ञा (राजा के साथ) **वैरम्** = द्वेषः, विरोधः (शत्रुता) **वाक्यप्रपञ्चेन** = वाग्जालेन (वाग्जालसे, बातों की कुशलता से) **प्रवेशयामि** = निवेशयामि (प्रविष्ट करा दूँगा) **श्रद्धेयं** = विश्वासार्हम् (विश्वास करने योग्य) **समुचितं** = युक्तं, **तत् कर्त्तव्यम्** = तद्विधेयम् (करना) ।

हिन्दी– इसके पश्चात् प्यास से व्याकुल होकर उस वृद्ध बन्दर ने पानी

की खोज में भ्रमण करते हुए कमलिनी समूह से सुशोभित एक सरोवर देखा। जब उसने सूक्ष्मदृष्टि से देखा तो उसे उस सरोवर में प्रवेश करनेवाले वनवासी मनुष्यों के पदचिह्न तो दिखाई दिये, किन्तु उनके सरोवर से बाहर निकलने के कोई चिह्न दिखाई नहीं दिये। यह देखकर उसने अपने मन में विचार किया कि इस सरोवर में कोई दुष्ट मगर निश्चय ही रहता है। अतः मैं दूर रहकर कमलिनी-नाल के सहारे जल पीता हूँ।

इस प्रकार जब वह कमलिनी के नाल से पानी पी रहा था, तब उस सरोवर से एक राक्षस बाहर निकल कर आया। उसके गले में अत्यन्त सुन्दर रत्न-माला दिखाई दे रही थी। उसने उस बन्दर को देखकर कहा–अरे मर्कट ! इस सरोवर में जो प्रवेश करता है, वह मेरा भक्ष्य हो जाता है, किन्तु तुम्हारे सदृश अन्य कोई धूर्त नहीं है, क्योंकि तुम जल में प्रविष्ट हुए विना बाहर से ही कमल-नाल द्वारा पानी पी रहे हो। मैं तुम पर प्रसन्न हूँ, अतः तुम अपनी मनोवाञ्छित वस्तु मुझ से माँग लो।

इस पर उस बन्दर ने उसे (राक्षस को) पूछा–तुम्हारे खाने की शक्ति कितनी है ? राक्षस ने कहा–पानी में प्रवेश करने पर सौ,हजार, दस हजार और लाख व्यक्तियों को मैं खा सकता हूँ। किन्तु पानी से बाहर होने पर मुझे एक सियार भी पराजित कर सकता है।

यह सुनकर उस वानर ने कहा–एक राजा के साथ मेरी अत्यधिक शत्रुता है। यदि तुम अपनी रत्न-माला को मुझे दे दो तो मैं उसके संपूर्ण परिवार सहित उस राजा को लोभाकृष्ट कर इस सरोवर में प्रवेश करा सकता हूँ। तब उस राक्षस ने उस बन्दर की विश्वास करने योग्य बातों को सुनकर उसे रत्न-माला देते हुए कहा–'मित्र ! जो तुम्हें उचित प्रतीत हो, वह करना।

वानरोऽपि रत्नमालाविभूषितकण्ठो वृक्षप्रासादेषु परिभ्रमञ्जनैर्दृष्टः, पृष्टश्च–'भो यूथप ! भवानियन्तं कालं कुत्र स्थितः ? भवता ईदृग्रत्नमाला कुत्र लब्धा, या दीप्त्या सूर्यमपि तिरस्करोति।'

वानरः प्राह–'अस्ति कुत्रचिदरण्ये गुप्ततरं महत्सरो धनदनि-

र्मितम्। तत्र सूर्येऽर्धोदिते रविवासरे यः कश्चिन्निमज्जति, स धनदप्रसादा-दीदृग्रत्नमालाविभूषितकण्ठो निःसरति।''

अथ भूभुजा तदाकर्ण्य, स वानरः समाहूतः, पृष्टश्च—भो यूथाऽधिप! किं सत्यमेतत्, रत्नमालासनाथं सरोऽस्ति क्वाऽपि?

कपिराह—''स्वामिन्! एष प्रत्यक्षतया मत्कण्ठस्थितया रत्नमालया प्रत्ययस्ते। तद्यदि रत्नमालया प्रयोजनं तन्मया सह कमपि प्रेषय, येन दर्शयामि।' तच्छ्रुत्वा नृपतिराह—यद्येवं, तदहं सपरिजनः स्वयमेष्यामि, येन प्रभूता रत्नमालाः उत्पद्यन्ते। वानर आह—स्वामिन् एवं क्रियताम्।

व्याख्या— वानर इति। रत्नमालाविभूषितकण्ठः = रत्नानां मणीनां मालया विभूषितः मण्डितः कण्ठो यस्य स, रत्नमालाविभूषितकण्ठः = रत्नमालऽलङ्कृतकण्ठः (रत्नमाला से समलङ्कृत कण्ठ होकर) **वृक्षप्रासादेषु** = वृक्षेषु प्रासादेषु च (क्रमशः वृक्षों और प्रासादों पर) **इयन्तं कालम्** = एतत्कालपर्यन्तम् (इतने दिनों तक) **लब्धा** = प्राप्ता (प्राप्त हुई) **दीप्त्या** = प्रभया, कान्त्या- (अपनी कान्ति से) **तिरस्करोति** = परिभवति (पराभूतं कर रही है)।

वानर इति। गुप्ततरं = सुगोप्यं (अत्यन्तगुप्त) **धनदनिर्मितं** = कुबेरनिर्मितं (कुबेर द्वारा बनाया हुआ) **सूर्येऽर्धोदिते** = अर्धोदिते रवौ (अर्धोदित सूर्य के समय) **निमज्जति** = स्नाति (स्नान करता है) **धनदप्रासादात्** = कुबेरभवनात् (कुबेर के भवनसे) **ईदृक्** = एतादृक् (इसी प्रकार प्रभापूर्ण) **निःसरित** = तडागात् बहिर्प्रत्यागच्छति (सरोवर से बाहर आता है)।

अथेति। भूभुजा = नृपेण (राजा ने) **समाहूतः** = आहूतः (बुलाया) **रत्नमालासनाथम्** = रत्नमालाविभूषितम् (रत्न-माला से भूषित) **क्वापि** = कुत्रापि (कहीं पर स्थित है ?)।

कपिरिति। प्रत्यक्षतया = प्रत्यक्षरूपेण (प्रत्यक्षरूपसे) **प्रत्ययः** = विश्वासः (विश्वास) **सपरिजनः** = परिवारेण सहितः सपरिवारः सानुचरश्च (पूरे परिवारजनों के साथ) **एष्यामि** = गमिष्यामि (चलूंगा) **प्रभूताः** = विपुलाः (अनेक) **उत्पद्यन्ते** = सम्प्राप्यन्ते (प्राप्त होंगी)।

हिन्दी– राक्षस द्वारा दी हुई रत्न-माला को कण्ठ में धारण करके वह वानर-यूथप वृक्षों और भवनों पर क्रमशः भ्रमण करता (कूदता) हुआ पुरवासियो के सामने आया। नगरवासियों ने उसे पूछा–अरे भाई यूथपति ! इतने दिनों तक कहाँ थे ? और आपने इतनी सुन्दर माला कहाँ से प्राप्त की जो अपनी प्रभाकान्ति से सूर्य को भी तिरस्कृत कर रही है।

वानर ने उत्तर दिया–"वन में कुबेर द्वारा निर्मित एक अत्यन्त गुप्त सरोवर है। उस सरोवर में, अर्धसूर्योदय काल में जो स्नान करता है, वह कुबेर के प्रसाद से ऐसी ही रत्नमालासे अलंकृत कण्ठ होकर सरोवर से बाहर निकलता है।"

राजा ने जब इस प्रकार सुना तो उस यूथप को बुलवाकर पूछा–"यूथाधिप ! क्या यह सत्य है ? क्या कहीं पर रत्नामालाओं से युक्त सरोवर है ?"

बन्दरों के स्वामी ने कहा–"स्वामिन् ! इतना तो मेरे कण्ठ में स्थित इस रत्नामाला को देखकर ही विश्वास किया जा सकता है। यदि आपको रत्नमालाओं की आवश्यकता है, तो मेरे साथ किसी को भेज दें। मैं उसे भी वह सरोवर दिखा दूँगा। यह सुनकर राजा ने कहा–"यदि यह बात सत्य है, तो मैं स्वयं अपने संपूर्ण परिवार के साथ वहाँ चलूँगा। चलने से मेरे पास रत्नामालाओं की विपुलता हो जायेगी।" वानर ने कहा–ठीक है, मालिक आप स्वयं चल सकते हैं। आप ऐसा ही कीजिए।

तथाऽनुष्ठिते, भूपतिना सह रत्नमालालोभेन सर्वे कलत्रभृत्याः प्रस्थिताः। वानरोऽपि राज्ञा दोलाऽधिरूढेन स्वोत्सङ्गे आरोपितः सुखेन प्रीतिपूर्वमानीयते। अथवा साध्विदमुच्यते–

तृष्णे ! देवि नमस्तुभ्यं यया वित्ताऽन्विता अपि।
अकृत्येषु नियोज्यन्ते, भ्राम्यन्ते दुर्गमेष्वपि ।।७६।।

व्याख्या– तथेति। तथा = तत्पश्चात्, तेन प्रकारेण (उस प्रकार) **अनुष्ठिते** = प्रतिज्ञाते (कहे जाने पर) **भूपतिना** = नृपेण, **कलत्रभृत्याः** = कलत्राणि = भार्याः, भृत्याः = सेवकाः (राजा की रानियाँ तथा सेवक) **दोलाधिरूढेन** = दोलामधिष्ठितेन (डोली में बैठे हुए) **स्वोत्सङ्गे** = स्वीये क्रोडे

(अपनी गोद में) **आरोपितः** = स्थापितः (बैठाकर) **आनीयते** = नीयते (ले जाने लगा)।

अन्वयः– देवि ! तृष्णे ! तुभ्यं नमः (यतो हि) यया वित्तान्विता अपि अकृत्येषु नियोज्यन्ते दुर्गमेषु अपि भ्राम्यन्ते ।।७६।।

व्याख्या– तृष्ण इति । हे ! तृष्णे = आशे ! देवि ! **तुभ्यं नमः** = तृष्णायै नमः (तृष्णा को नमस्कार) **यया** = तृष्णया-भवत्या (जिस तृष्णा के द्वारा) **वित्तान्विताः** = धनाढ्या अपि (धनी जन) **अकृत्येषु** = अनुचिताचरणेषु करणानर्हेषु कर्मसु (अनुचित, न करने योग्य कार्य में) **नियोज्यन्ते** = प्रेर्यन्ते (प्रेरित किये जाते हैं) **दुर्गमेषु** = अगम्येष्वपि स्थानेषु (अगम्यस्थानों में) **भ्राम्यन्ते** = परिभ्राम्यन्ते पर्याट्यन्ते (भटकाये जाते हैं) ।।७६।।

हिन्दी– वानर के द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर राजा के साथ उनकी रानियाँ, आदि सभी रत्नमाला के लोभ से राजा के साथ रवाना हो गये। वानर को भी पालकी में बैठ हुए राजा ने अपनी गोद में ले लिया और प्यार के साथ सुखपूर्वक ले आने लगा। अथवा यह ठीक ही कहा जाता है-

हिन्दी– हे देवि, तृष्णे ! तुम्हें प्रणाम है, (क्योंकि) तृष्णा से आकर्षित होकर या उसके वशीभूत होकर धनी जन भी अनुचित कार्यों में प्रवृत्त हो जाते हैं और दुर्गम स्थानों पर भटकते फिरते हैं।

इच्छति शती सहस्रं, सहस्री लक्षमीहते।
लक्षाऽधिपस्तथा राज्यं राज्यस्थः स्वर्गमीहते ।।७७।।

अन्वयः– शती सहस्रम् इच्छति, सहस्री लक्षम् ईहते, लक्षाधिपः राज्यं तथा राज्यस्थः स्वर्गम् ईहते ।।७७।।

व्याख्या– इच्छतीति । **शती** = शतसङ्ख्यामुद्रावान्, **सहस्रं** = सहस्रसङ्ख्यं धनम् इच्छन्ति, **सहस्री लक्षमीहते** = लक्षधनस्यार्जनाय यतते, तथा **लक्षाधिपः** = लक्षस्वामी राज्यम् ईहते, **राज्यस्थः** = सम्राट् सन् स्वर्गं नाकमीहते ।।७७।।

हिन्दी– सौ रुपयों का स्वामी सहस्राधिप बनना चाहता है। सहस्राधिप

लक्षाधिप बनने के लिये प्रयत्नशील रहता है, लक्षाधिप व्यक्ति राज्य की इच्छा करता है और राजा स्वर्ग को प्राप्त करना चाहता है। तात्पर्य यह है कि मनुष्य की तृष्णा कभी रुकती नहीं है, वह सदा आगे-आगे बढती रहती है ॥७७॥

जीयन्ते जीर्यतः केशाः दन्ता जीर्यन्ति जीर्यतः ।
जीर्यतश्चक्षुषी श्रोत्रे तृष्णैका तरुणायते ।।७८।।

अन्वयः– जीर्यतः केशाः जीर्यन्ते, जीर्यतः दन्ता जीर्यन्ती, जीर्यतः चक्षुषी श्रोत्रे च (जीर्येते) किन्तु एका तृष्णा तरुणायते ॥७८॥

व्याख्या– जीर्यन्त इति । जीर्यतः = जरां प्राप्तवतो जनस्य केशाः = **शिरोबालाः जीर्यन्ते** = शुक्ली-भवन्ति, (वृद्धव्यक्ति के, बाल पक जाते है) तथा जीर्यतः दन्ताः (दांत) **जीर्यन्ति** = अन्नचर्वणे असमर्था जायन्ते, स्वस्थानं परिजहित (दाँत अन्नका चर्वण करने में असमर्थ होकर अपने स्थान से गिर जाते हैं) **चक्षुः श्रोत्रे** = नेत्रकर्णावपि, **जीर्येते** = स्वस्य विषयग्रहणाय नालं भवतः, तथापि **एका** = केवला **तृष्णा** = विषयभोगलिप्सा (तु) **तरुणायते** = तरूणी इव आचरति, नवन-वीभवति ॥७८॥

हिन्दी– वृद्धावस्था में बाल, दाँत, आँख और कान आदि सभी इन्द्रियाँ शिथिल हो जाती हैं। मनुष्य में शक्ति नहीं रहती, किन्तु उसकी केवल तृष्णा उत्तरोत्तर युवावस्था को प्राप्त होती रहती है। तात्पर्य यह है कि मनुष्य की कामनाएँ, उसकी विषयभोग की लिप्सा कभी भी पूर्ण नहीं होती है, वह सदा एक नवयौवना युवती की तरह नवीन होती रहती हैं ॥७८॥

अथ तत्सरः समासाद्य वानरः प्रत्यूषसमये राजानमुवाच-"देव! अत्राऽर्धोदिते सूर्येऽन्तःप्रविष्टानां सिद्धिर्भवति। तत्सर्वोऽपि जन एकदैव प्रविशतु। त्वया पुनर्मया सह प्रवेष्टव्यं येन पूर्वदृष्टस्थानमासाद्य, प्रभूतास्ते रत्नमाला दर्शयामि।"

अथ प्रविष्टास्ते लोकाः सर्वे भक्षिताः राक्षसेन। अथ तेषु चिरमाणेषु राजा वानरमाह–"भो यूथाधिप! किमिति चिरायते मे परिजनः?" तच्छ्रुत्वा वानरः सत्वरं वृक्षमारुह्य, राजानमुवाच–'भो

दुष्टनरपते ! राक्षसेनान्तःसलिलस्थितेन भक्षितास्ते परिजनः । साधितं मया कुलक्षयजं वैरम्, तद् गम्यताम् । त्वं स्वामीति मत्वा नाऽत्र प्रवेशितः । उक्तं च–

कृते प्रतिकृतं कुर्याद्धिंसिते प्रतिहिंसितम् ।
न तत्र दोषं पश्यामि यो दुष्टे दुष्टमाचरेत् ।।७९।।

व्याख्या– अथेति । प्रत्यूषसमये = प्रातःकाले (प्रभात होने पर) **अत्र** = सरोवरे (इस सरोवर में) **अर्धोदिते** = अर्धोदयकालिके (सूर्य के अर्धोदय काल में) **अन्तः प्रविष्टानां** = सरोवरस्य जलाभ्यन्तरप्रविष्टानां (सरोवर के जल के भीतर प्रवेश करनेवाले को) **सिद्धिः** = रत्नोपलब्धिरूपकार्यसिद्धिः (रत्नमाला की प्राप्ति) **एकदैव** = एकस्मिन्नेवसमये, (एक ही समय में) ।

अथेति । लोकाः = जनाः, (लोग) **अथ** = कियत्कालान्तरं (कुछ समय के पश्चात्) **तेषु** = राजपरिवारेषु (राजा परिवार के जनों के) **चिरमाणेषु** = विलम्बं कुर्वत्सु, (अधिक विलम्ब करने पर) **चिरायते** = अतिकालायते (विलम्ब कर रहे हैं) **सत्वरं** = झटिति (शीघ्र) **अन्तः सलिलस्थेन** = सरोवरस्य जलमध्यगतेन (जल में रहने वाले) **साधितं** = सम्पादितम्, (सम्पन्न कर लिया) **कुलक्षयजं** = परिवारनाशेनोत्पन्नम् (परिवार के नाश से उत्पन्न) **स्वामीति मत्वा** = मम पालकश्चेति विचार्य (आप मेरे पालक हैं, यह विचार कर) **अत्र** = सरसि (सरोवर में) **न प्रवेशितः** = (प्रवेश नहीं कराया) ।।

अन्वयः– यः कृते प्रतिकृतं कुर्यात्, हिंसिते प्रतिहिंसितं च कुर्यात् दुष्टे दुष्टम् आचरेत् तत्र दोषं न पश्यामि ।।७९।।

व्याख्या– कृत इति । कृते = उपकारे अपकारे वा कृते सति (उपकार या अपकार करनेवाले व्यक्ति का) **प्रतिकृतं** = प्रतिकारम्, उपकारमपकारं वा यथायोग्यं कुर्यात् (उपकार या अपकार यथा योग्य करना चाहिए) **हिंसिते** = हनने मारणे कृते सति, (हिंसा करने के समय) **प्रतिहिंसितम्** = प्रतिहननं कुर्यात् **दुष्टे** = दुर्जने (दुष्ट व्यक्ति के प्रति) **दुष्टम्** = अनिष्टं, **दण्डादिकं**, (दुष्टता या दण्ड आदि) **तत्र** = एवं कृते सति (ऐसा करने पर) अहं दोषम् पापं न पश्यामि, अतः **समाचरेत्** = अनुतिष्ठेत् ।।७९।।

हिन्दी– तत्पश्चात् उस सरोवर के तट पर पहुँचने पर वानर ने प्रातःकाल होने पर राजा से कहा–देव ! सूर्य के अर्धोदय काल में इस सरोवर मे प्रवेश करने से अभीष्ट (रत्नमाला) की सिद्धि (प्राप्ति) होती है । अतः सभी लोग एक साथ ही इस सरोवर में स्नान करने के लिए प्रवेश करें–और आप मेरे साथ प्रवेश करें, जिससे मैं पूर्वपरिचितस्थान में आपको ले जाकर अगणित रत्नमालाओं को दिखाऊँगा ।''

उस सरोवर में प्रवेश करते ही राजा के समस्त परिवार को वह राक्षस खा गया । अपने परिवार के सदस्यों को अधिक विलम्ब करते देखकर राजा ने वानर से पूछा–हे यूथाधिप ! हमारे परिवार के सदस्य विलम्ब क्यों कर रहे हैं ? राजा की बात सुनकर वानर तत्काल वृक्ष पर चढ गया और राजा से बोला– अरे दुष्टराजन् ! जल के भीतर निवास करनेवाले राक्षस ने तुम्हारे संपूर्ण परिवार के सदस्यों को खा लिया है । मैंने तुम्हारे द्वारा किये गये अपने कुल-नाश का बदला ले लिया है, अब तुम चले जाओ । तुम्हें मैंने अपना स्वामी समझकर इस सरोवर में जाने नहीं दिया । कहा भी है–

हिन्दी– व्यक्ति को उपकार अथवा अपकार का बदला-उपकार या अपकार से (क्रमशः) हिंसा का बदला हिंसा से, और दुष्टता का बदला दुष्टता से चुकाना चाहिए । इस प्रकार के कार्य में मैं कोई दोष नहीं देखता हूँ ।।७९।।

'तत्त्वया मम कुलक्षयः कृतः, मया पुनस्तव' इति । अथैतदाकर्ण्य, राजा कोपाविष्टः पदातिरेकाकी यथायातमार्गेण निष्क्रान्तः । अथ तस्मिन् भूपतौ गते राक्षसस्तृप्तो जलान्निष्क्रम्य सानन्दमिदमाह–

व्याख्या– तदिति । कुलक्षयः = कुलनाशः = कुलस्य क्षयः नाशः कुलक्षयः (कुल का नाश) **कोपाविष्टः** = कुपितः (क्रुद्ध) **पदातिः** = पादचारी (पैदल) **यथायातमार्गेण** = स्वागमनमार्गेण (अपने आये हुए मार्ग से) **निष्क्रान्तः** = गतः (चला गया) **गते** = प्रस्थिते सति (चले जाने पर) **आह** = उवाच (कहा) ।

हिन्दी– हे राजन् ! तुमने मेरे कुल का विनाश किया तो मैंने भी तुम्हारे

कुलं का नाश कर दिया। वानर का यह कथन सुनकर राजा अत्यन्त क्रोधित होकर पैदल ही जिस मार्ग से आया था, उसी मार्ग से चला गया। इस प्रकार राजा के चले जाने के पश्चात् राक्षस ने जलाशय से बाहर निकलकर वानर से कहा–

हतः शत्रुः कृतं मित्रं रत्नमाला न हारिता।
नालेनपिबता तोयं भवता साधु वानर! ।।८०।।

अन्वयः– हे वानर ! नालेन तोयं पिबता भवता शत्रुः हतः, मित्रं कृतं रत्नामाला च न हारिता (सर्वं) साधु (कृतम्) ।।८०।।

व्याख्या– हत इति। हे वानर ! = नालेन = पद्मखण्डेन (कमल के नाल से) **तोयम्** = जलम् (पानी) **पिबता** = आस्वादयता (पीते हुए) **भवता शत्रुः** = वैरी **हतः** = मारितः (मार दिया) **मित्रं** = सुहृत् कृतः (मित्र बनाया) तथा **रत्नमाला न** = नैव हारिता-विनाशिता-कस्मैचिदपि न प्रदत्ता (किसी को भी नहीं दी) **एवं सर्वं साधु** = सुष्ठु यथा तथा कृतंम् अनुष्ठितम् ।।८०।।

हिन्दी– हे वानर ! कमल नाल से जलग्रहण करते हुए तुमने चातुर्य से शत्रु का नाश किया, मित्र (मेरे जैसा) बनाया और अपनी रत्नमाला भी किसी को नहीं दी। अतः तुम प्रशंसार्ह हो ।।८०।।

अतोऽहं ब्रवीमि–

यो लौल्यात्कुरुते कर्म नैवोदर्कमवेक्षते।
विडंबनामवाप्नोति स, यथा चन्द्रभूपतिः ।। इति ।।

एवमुक्त्वा, भूयोऽपि स चक्रधरमाह–"भो मित्र ! प्रेषय मां, येन स्वगृहं गच्छामि।"

चक्रधर आह–"भद्र! आपदर्थे धनमित्रसङ्ग्रहः क्रियते। तन्मामेवंविधं त्यक्त्वा क्व यास्यसि ? उक्तं च–

व्याख्या– एवमिति। एवमुक्त्वा = एवमभिधाय (इस प्रकार कहकर) **भूयोऽपि** = पुनरपि (फिर से) **प्रेषय** = गमनार्थम् अनुज्ञां प्रयच्छ (जाने की आज्ञा दो)।

चक्रधर इति । आपदर्थे = आपत्तिनिवारणाय (विपत्ति को दूर करने के लिये) **धनमित्रसङ्ग्रहः** = धनानां मित्राणां च सञ्चयः (धन और मित्र का संग्रह) **एवं विधम्** = आपद्गतं = (विपत्ति में ग्रस्त) **क्व यास्यसि** = कुत्र गमिष्यसि (कहाँ जाओगे) ।

हिन्दी– इसलिए मैं कहता हूँ-'जो आदमी लालच से काम करता है और परिणाम नहीं देखता वह राजा चन्द्र के समान कष्ट पाता है ।उक्त कथा को सुनलेने के पश्चात् सुवर्णसिद्धि ने चक्रधर से कहा–मित्र ! अब मुझे घर जाने की अनुमति दो । जिससे मैं अपने घर जाऊँ ।

चक्रधर ने कहा–प्रिय ! विपत्तिकाल के लिए ही धन और मित्र का संग्रह किया जाता है । अतः इस विपत्ति में ग्रस्त मुझे छोडकर तुम कहाँ जाओगे ? क्योंकि कहा गया है–

यस्त्यक्त्वा सापदं मित्रं याति निष्ठुरतां वहन् ।
कृतघ्नस्तेन पापेन नरके यात्यसंशयम् ।।८१।।

अन्वयः– यः सापदं मित्रं त्यक्त्वा निष्ठुरतां वहन् याति, कृतघ्नः (सः) तेन पापेन असंशयं नरके याति ।।८१।।

व्याख्या– य इति । यः सुहृत् (जो मित्र) **सापदम्** = विपद्ग्रस्तं (विपत्ति में पडे हुए) **मित्रं त्यक्त्वा** = विहाय (छोडकर) **निष्ठुरतां** = कठोरतां याति (निष्ठरतापूर्वक) अर्थात् आपदः सकाशात्तस्य मोचनाय यत्नं न कुरुते (आपत्ति में ग्रस्त मित्र को छुडवाने का प्रयत्न नहीं करता है ।) **सः कृतघ्नः** = कृतं हन्तीति कृतघ्नः (जो किये हुए को भूल जाता है) **तेन** = पापेन निष्ठुरतारूपेण असंशयम् **नरके** = निरये याति (नरक में जाता है) तस्य नरकगमने संशयो नास्तीत्यर्थः ।।८१।।

हिन्दी– जो व्यक्ति (मित्र) विपत्ति में ग्रस्त हुए अपने मित्र को निर्दयतापूर्वक छोड़कर चला जाता है, वह कृतघ्न उस पाप कर्म से निश्चित ही नरक में जाता है ।।८१।।

सुवर्णसिद्धिराह–भोः, सत्यमेतद्यदि गम्यस्थाने शक्तिर्भवति। एतत्पुनर्मनुष्याणामगम्यस्थानम्। नाऽस्ति कस्याऽपि त्वामुन्मोचयितुं शक्तिः। अपरं यथा यथा चक्रभ्रमवेदनया तव मुखविकारं पश्यामि तथा-तथाऽहमेतज्जानामि यद्द्राग् गच्छामि, मा कश्चिन्ममाऽप्यनर्थो भवेदिति। यतः–

व्याख्या– सुवर्णसिद्धिरिति। गम्यस्थाने = गन्तुं योग्यस्थाने,-गमनयोग्ये स्थाने (जाने योग्य स्थान में)-**शक्तिः** = सामर्थ्यम्, शक्तिसाध्ये सति, **उन्मोचयितुं** = विमोक्षणं कर्त्तुं (मुक्त करने की) **मुखविकारं** = मुखविकृतिं-मुखाकृतिम् (मुख की आकृति को) **द्राग्** = शीघ्रम्-(अतिशीघ्र) **अनर्थः** = विपत्तिः, भवेदिति, शक्तिसाध्ये सति यदि सुहृदन्यमित्रस्य साहाय्यं न कुर्यात्तदाऽसौ नरकभाग्भवतीत्याशयः सुवर्णसिद्धेः।

हिन्दी– सुवर्णसिद्धि ने कहा–मित्र तुम ठीक कहते हो, किन्तु यह बात तभी हो सकती थी, जब मुझमें तुम्हे इस विपत्ति से मुक्त करने की शक्ति होती, किन्तु तुम जिस प्रकार की विपत्ति में ग्रस्त हो, उससे मुक्त करने की शक्ति मनुष्यमात्र में भी नहीं है, इसके अतिरिक्त, जैसे-जैसे चक्र के घूमने से होनेवाली पीड़ा के कारण तुम्हारी मुखाकृति में विकृति को मैं देखता हूँ तो उससे मैं यही समझता हूँ कि मुझे यहाँ से शीघ्र जाना चाहिए। कहीं ऐसा न हो कि मेरे ऊपर ही कोई अनर्थकारी घटना घटित हो पड़े। कहा भी है–

यादृशी वदनच्छाया दृश्यते तव वानर।
विकालेन गृहीतोऽसि, यः परैति स जीवति॥८२॥

अन्वयः– हे वानर ! तव यादृशी वदनच्छाया दृश्यते (तेन ज्ञायते) त्वं विकालेन गृहीतः असि, (अतः) यः परैति स (एव) जीवति॥८२॥

व्याख्या– यादृशीति। हे वानर ! हे मर्कट ! **तव वदनस्य** = मुखस्य **यादृशी** = यदाकारा, यद्रूपावच्छिन्ना छाया मुखकान्तिः, दृश्यते विलोक्यते, **हे वानर,** (मुख की कान्ति) **तेन त्वं विकालेन** = विशिष्टकालेन यमसदृशेन केनचित् भयङ्करेण सत्त्वेन, (किसी विपत्ति या राक्षस से) **गृहीतोऽसि** = अभिभूतोऽसि

आक्रान्तोऽसि, **यः** = पुरुषः (जो व्यक्ति) **परैति** = पलायते (तुमसे दूर भागेगा) **जीवति** = संकटात् मुक्तो भवति, (जीवित बचेगा, संकट से मुक्त होगा) ॥८२॥

हिन्दी– हे वानर ! जिस प्रकार की तुम्हारी म्लान मुख की कान्ति दिखाई दे रही है, उससे ज्ञात होता है कि तुम भयानक काल से आक्रान्त हो चुके हो। अतः जो यहाँ से दूर भाग जायगा, वही जीवित बच सकेगा, (संकट से मुक्त हो सकेगा) ॥८२॥

चक्रधर आह–कथमेतत् ? सोऽब्रवीत्–

हिन्दी– चक्रधर ने कहा–यह कैसे ? तब सुवर्णसिद्धि ने कहा–

(११) विकालवानर-कथा

कस्मिंश्चिन्नगरे भद्रसेनो नाम राजा प्रतिवसति स्म। तस्य सर्वलक्षणसम्पन्ना रत्नवती नाम कन्याऽस्ति। तां कश्चिद्राक्षसो जिहीर्षति। रात्रावागत्योपभुङ्क्ते, परं कृतरक्षोपधानां तां हर्तुं न शक्नोति। साऽपि तत्समये रक्षःसांनिध्यजामवस्थामनुभवति कम्पादिभिः।

एवमतिक्रामति काले कदाचित् स राक्षसो मध्यनिशायां गृहकोणे स्थितः। साऽपि राजकन्या स्वसखीमुवाच–'सखि! पश्यैष विकालः समये नित्यमेव मां कदर्थयति। अस्ति तस्य दुरात्मनः प्रतिषेधोपायः कश्चित्?''

तच्छ्रुत्वा राक्षसोऽपि व्यचिन्तयत्–'नूनं यथाऽहं, तथाऽन्योऽपि कश्चिद्विकालनामाऽस्या हरणाय नित्यमेवागच्छति, परं सोऽप्येनां हर्तुं न शक्नोति। तत्तावदश्वरूपं कृत्वाश्वमध्यगतो निरीक्षयामि–किं रूपः सः किं प्रभावश्चेति?'' एवं राक्षसोऽश्वरूपं कृत्वाऽश्वानां मध्ये तिष्ठति।

व्याख्या– कस्मिंश्चिदिति। सर्वलक्षणसम्पन्ना = सर्वलक्षणोपेता (समस्तलक्षणों से युक्त) **कन्या** = पुत्री, **जिहीर्षति** = हर्तुमिच्छति (हरण करना चाहता था) **उपभुङ्क्ते** = रमते, कन्यया सह कामक्रीडां करोति, (कामक्रीडा किया करता था) **तत्समये** = राक्षसस्यागमनावसरे, कामक्रीडावसरे वा, (रतिक्रीडा के समय) **कृतरक्षोपधानां** = कृतं रक्षाया उपधानमुपबर्हं यस्याः सा ताम्, अथवा–कृतं सम्पादितं रक्षायै उपधानं कश्चन व्रतविशेषो यथा सा ताम् तादृशीम् (मन्त्रादि द्वारा अभिरक्षित उस कन्या को) **रक्षः सानिध्यजां** = राक्षसागमनकालीनां (राक्षस के आगमनावसरकी) **कम्पादिभिः** = शरीरकम्पनादिभिः (शरीर में उत्पन्न कम्पनादि से)॥

एवमिति। एवम् = अनेन प्रकारेण (इस प्रकार) **अतिक्रामति** = गच्छति (बीतने पर) **मध्यनिशायाम्** अर्धरात्रे (मध्य रात्रि के समय) **विकालः** = विकाल नामा, विकरालमुखाकृतिर्वा (भयंकर, विकराल आकृतिवाला) **समये** = निशीथे (रात्रि में) **कदर्थयति** = भोगेन क्लेशयतीत्यर्थः (रतिक्रीडा के अवसर पर पीडित

करता है) **प्रतिषेधोपायः** = प्रतिषेधात्मकोपायः, निरोधोपायः वा (उसे रोकने का उपाय) ॥

तदिति । अन्योऽपि = (दूसरा भी कोई) **अस्याः** = कन्यायाः (कन्या का) **एनां** = कन्यां (कन्या को) **अश्वरूपं कृत्वा** = अश्वस्य रूपम् विधाय (घोड़े का रूप धारण कर) **अश्वमध्यगतः** = अश्वमध्ये स्थितः, (घोडों के मध्य में स्थित होकर) **निरीक्षयामि** = अवलोकयामि (देखता हूँ) **किंप्रभावः** = कीदृक् शक्तियुक्तः (कितनी शक्ति से सम्पन्न है) ॥

हिन्दी– किसी नगर में भद्रसेन नाम का राजा रहता था। उसकी समस्त शुभ-लक्षणों से युक्त 'रत्नवती' नाम की एक कन्या थी। उस कन्या को एक राक्षस हरण करना चाहता था। रात्रि में आकर वह उस कन्या के साथ कामक्रीड़ा किया करता था, किन्तु मन्त्र-तन्त्रादिसे अभिरक्षित होने के कारण वह उसका अपहरण नहीं कर पाता था। किन्तु वह कन्या शरीर में उत्पन्न होने वाले कम्पन आदि लक्षणों से उसके आने का आभास पा लेती थी।

इस प्रकार कुछ दिन व्यतीत होने पर एक दिन मध्यरात्रि मे वह राक्षस आकर घर के एक कोने में स्थित हो गया। उस समय वह राजकन्या अपनी सखी से कहने लगी हे सखि ! देखो, यह विकाल नाम का राक्षस सदा प्रति रात्रि में निर्धारित समय पर आकर मुझे पीडित करता है, तो क्या इसे रोकने का कोई उपाय है ?

राजकन्या के उक्त वचन को सुनकर राक्षस ने सोचा–"जिस प्रकार मैं इस कन्या का अपहरण करना चाहता हूँ, उसी प्रकार ज्ञात होता है कि अन्य कोई भी विकाल नाम का राक्षस इसका अपहरण करने के लिए प्रतिदिन आता है। किन्तु वह भी इसका अपहरण करने में समर्थ नहीं होता है। अतः मैं अश्व का रूपधारण कर घोड़ों के मध्य में स्थित हो जाता हूँ और देखता हूँ वह कितना शक्तिशाली है और कितना रूपसम्पन्न है। इस प्रकार वह राक्षस अश्व का रूप धारण कर घोड़ों के मध्य में स्थित हो गया।

तथाऽनुष्ठिते निशीथसमये राजगृहे कश्चिदश्वचौरः प्रविष्टः । स च सर्वानश्वानवलोक्य, तं राक्षसमश्वतमं विज्ञायाऽधिरूढः ।

अत्राऽन्तरे राक्षसश्चिन्तयामास–"नूनमेष विकालनामा मां चौरं मत्वा कोपान्निहन्तुमागतः । तत्किं करोमि ?" एवं चिन्तयन् सोऽपि तेन खलीनं मुखे निधाय, कशाघातेन ताडितः । अथाऽसौ भयत्रस्तमनाः प्रधावितुमारब्धः । चौरोऽपि दूरं गत्वा, खलीनाकर्षणेन तं स्थिरं कर्तुमारब्धवान् । स तु वेगाद्वेगतरं गच्छति ।

अथ तं तथागणितखलीनाकर्षणं मत्वा चौरश्चिन्तयामास–"अहो, नैवंविधा वाजिनो भवन्त्यगणितखलीनाः । तन्नूनमनेनाऽश्वरूपेण राक्षसेन भवितव्यम् । यद्यदि कञ्चित्पांसुलं भूमिदेशमवलोकयामि तदात्मानं तत्र पातयामि । नाऽन्यथा मे जीवितव्यमस्ति ।

व्याख्या– तथेति । तथानुष्ठिते = तेन प्रकारेण कृते सति (उस प्रकार करने पर) **निशीथसमये** = अर्धरात्रे (आधीरात में) **अश्वतमम्** = अतिशयेन अश्वम् अश्वतमम्, श्रेष्ठमश्वम् (उत्तम घोडे को) **मत्वा** = विदित्वा (जानकर) **निहन्तुं** = मारयितुम् (मारने के लिए) ॥

अत्रेति । सोऽपि = राक्षसोपि, (उस राक्षस को) **तेन** = अश्वचौरेण (चोर ने) **खलीनं** = कविकाम् 'कविका तु खलीनोऽस्त्री'–**इत्यमरः मुखे** = आनने (मुख में) **निधाय** = आरोप्य (डालकर, लगाकर) **कशाघातेन** = कशाप्रहारेण 'अश्वादेस्ताडनी कशा'–**इत्यमरः** ताडनीताडनेन (चाबुक की मार से) **असौ** = अश्वरूपी राक्षसः, **भयत्रस्तमनाः** = भयेन त्रस्तं मनो यस्य सः, भयभीतः (डरकर) **प्रधावितुं** = धावितुम् (दौडने के लिए) ॥ **खलीनाकर्षणेन** = कविकार्षणेन (लगाम को खींचकर) ।

अथेति । तम् = अश्वरूपिणं राक्षसम्, **सः** = अश्वः (घोडा-राक्षस) **वेगाद्वेगतरम्** = तीव्रात्तीव्रतरम् (अत्यधिक वेग से) **गच्छति** = प्रधावति (दौडने लगा) **अगणितखलीनाकर्षणं** = अगणितम् अनालोचितम् खलीनस्याकर्षणम् येन सः तम्, अनादृतकविकाकर्षणम् (लगाम की रोक को न मानने वाला)

वाजिनः = अश्वाः, **पांसुलं** = धूलिसहितम्, सिकता बहुलम् (धूल भरी) **जीवितव्यं** = जीवनम् (जीवन)।

हिन्दी– इस प्रकार उस राक्षस ने अश्व का रूप धारण कर, घोडों के मध्य में स्थित होने के पश्चात् मध्यरात्रि के समय कोई अश्व को चुराने वाला चोर राजभवन में आ गया। सभी अश्वों को देखने के पश्चात् वह राक्षसरूपी अश्व को सभी अश्वों में श्रेष्ठतम जानकर उसी पर आरूढ हो गया।

तदनन्तर राक्षस ने सोचा, निश्चय ही यही विकाल नाम का राक्षस है, जो मुझे चोर समझकर मुझे मारने के लिए आया है। तो मुझे इस समय क्या करना चाहिए ?

अभी वह इस प्रकार विचार कर ही रहा था कि उस चोर ने उसके मुख में लगाम डालकर चाबुक से उसे ताडित किया। कोडे की मार से वह भयभीत हो गया और उसने दौडना प्रारम्भ कर दिया। इस प्रकार कुछ दूर जाने के पश्चात् चोर लगाम को खींचकर उसे रोकने लगा, किन्तु लगाम खींचने पर भी वह राक्षस और भी अधिक वेग से भागने लगा।

इस प्रकार लगाम खींचने पर भी उसे रुकते न देखकर चोर ने सोचा– अरे ! घोडे तो इस प्रकार के नहीं होते जो लगाम को खींचने पर भी न रुके। ज्ञात होता है–यह अश्व का रूप धारण किया हुआ कोई राक्षस है। अतः यदि कहीं बालू से भरी हुई भूमि मिल जाय तो कूदकर अपने प्राणों की रक्षा करुँ, अन्यथा जीवित रहना कठिन है–

एवं चिन्तयत इष्टदेवतां स्मरतस्तस्य सोऽश्वो वटवृक्षस्य तले निष्क्रान्तः। चौरोऽपि वटप्ररोहमासाद्य तत्रैव विलग्नः। ततो द्वावपि तौ पृथग्भूतौ परमानन्दभाजौ, जीवितविषये लब्धप्रत्याशौ सम्पन्नौ।

अथ तत्र वटे कश्चिद्राक्षससुहृद्वानरः स्थित आसीत्। तेन राक्षसं त्रस्तमालोक्य, व्याहृतं–भो मित्र! किमेवं पलाय्यतेऽलीकभयेन? त्वद्भक्ष्योऽयं मानुषः, भक्ष्यताम्।

सोऽपि वानरवचो निशम्य, स्वरूपमाधाय शङ्कितमनाः

स्खलितगतिर्निवृत्तः । चौरोऽपि तं वानराहूतं ज्ञात्वा, कोपात्तस्य लाङ्गूलं लम्बमानं मुखे निधाय, चर्वितवान् ।

वानरोऽपि तं राक्षसाऽभ्यधिकं मन्यमानो भयान्न किञ्चिदुक्तवान् । केवलं व्यथार्तो निमीलितनयनस्तिष्ठति । राक्षसोऽपि तं तथाभूतमवलोक्य श्लोकमेनमपठत्–

यादृशी वदनच्छाया दृश्यते तव वानर!
विकालेन गृहीतोऽसि, यः परैति स जीवति ।।

इत्युक्त्वा प्रनष्टश्च ।

व्याख्या– एवमिति । एवम् = उक्तरीत्या (इस प्रकार से) **चिन्तयतः** = चिन्ताग्रस्तस्य (चिन्तित) **इष्टदेवतां स्मरतः** = निजेष्टदेवतां प्रार्थयतः, स्मरणं कुर्वतः, (अपने इष्टदेव का स्मरण या प्रार्थना करता हुआ) **तस्य** = तस्करस्य, चोरस्य (चोर का) **निष्क्रान्तः** = निर्गतः (निकला) **वटप्ररोहं** = वटस्य न्यग्रोधस्य प्ररोहम् शाखाग्रम् वटवृक्षस्य जटाम् वा (वटवृक्षकी जटाको) **आसाद्य** = अवलम्ब्य, धृत्वा (पकडकर) **तत्रैव** = वृटवृक्षे, शाखाग्रे, **विलग्नः** = संसक्तः (लिपट गया) **द्वौ** = चोरराक्षसौ (चोर और राक्षस) **पृथग्भूतौ** = पृथग्जातौ (दोनों ही एक दूसरे से अलग होकर) **जीवितविषये** = स्व-स्व जीवनविषये (अपने अपने जीवन के संबन्ध में) **लब्धप्रत्याशौ** = आशान्वितौ (आशान्वित हो गये) ।।

अथेति । त्रस्त मालोक्य = भयान्वितं विलोक्य (भयग्रस्त देखकर) **व्याहृतं** = कथितं (कहा) **पलाय्यते** = पलायनं क्रियते (भागे जा रहे हो) **अलीकभयेन** = मिथ्याभयेन (विना किसी भयके) **भक्ष्यः** = खाद्यभूतः (खाद्य) ।

स इति । निशम्य = श्रुत्वा (सुनकर) **स्वरूपमाधाय** = निजस्वाभाविकरूपं गृहीत्वा (अपने स्वाभाविकरूप को धारण करके) **स्खलितगतिः** = स्खलिता शैथिल्यं प्राप्ता गतिर्गमनव्यापारो यस्य स तादृशः (मन्द गति-चाल-से) **वानराहूतं** = मर्कटेन कथितं (वानर द्वारा कथित) **कोपात्** = क्रोधात् (क्रोध के कारण) **लांगूलं** = पुच्छम् (पूँछ को) **चर्वितवान्** = खादितवान् (चबा गया) ।

वानर इति । राक्षसाभ्यधिकं = राक्षसादपि बलवत्तरम् (राक्षस से भी

बलशाली) **व्यथार्तः** = व्यथया दुःखितः सन् (व्यथा-कष्ट से दुःखी होकर) **निमीलितनयनः** = निमीलिते नयने येन स निमीलितनयनः (आँखें बन्द करके) **तथाभूतं** = दुःखितं मौनं च (दुःखित तथा मौन) **प्रनष्टः** = पलायितः (भाग गया) ॥

हिन्दी– पूर्वोक्त प्रकार से वह चोर मन में विचार कर ही रहा था, और अपने इष्ट देव का स्मरण कर रहा था कि उसका घोड़ा एक वटवृक्ष के नीचे से जाने लगा। चोर वटवृक्ष की जड़ों को पकड़कर उनसे ही लिपट गया। इस प्रकार दोनों ही (चोर और राक्षसरूप अश्व) एक दूसरे से पृथक् हो गये तथा अत्यधिक प्रसन्न होकर अपने जीवन के विषय में आशान्वित हो गये।

उस वटवृक्ष पर राक्षस का एक मित्र वानर रहता था। उसने डरे हुए राक्षस को भागते हुए देखकर कहा–अरे, तुम इस प्रकार मिथ्या भय से क्यों भाग रहे हो ? यह तो तुम्हारा भक्ष्य मनुष्य है। तो इसे खा जाओ।

वह भी वानर की बात सुनकर अपना पुनः स्वाभाविक रूप धारण कर शङ्कान्वित होकर मन्दगति से खड़ा हो गया। चोर ने भी वानर के द्वारा उसे बुलाया जानकर क्रोधसे उसकी लटकती हुई पूँछ को मुख में दबाकर चबाने लगा।

वानर भी उसे राक्षस से अधिक शक्तिशाली समझकर भयसे कुछ भी कहने में असमर्थ हो गया। केवल अपनी दोनों आँखें मूंद कर शान्त हो गया। जब राक्षस ने उसे इस प्रकार मौन देखा तो वह श्लोक कहने लगा "हे वानर ! तुम्हारे मुँह का जैसा रंग दिखाई दे रहा है उससे लगता है कि तुम्हे विकाल ने पकड लिया है, जो भाग जायगा वह बच जायगा। इस श्लोक को कहने के पश्चात् वह वहाँ से तत्काल भाग गया।

'तत्प्रेषय मां, येन गृहं गच्छामि। त्वं पुनरनुभुङ्क्ष्वाऽत्र स्थित एव लोभवृक्षफलम्।'

चक्रधर आह–"भोः अकारणमेतत् दैववशात्सम्पद्यते नृणां शुभाऽशुभम्। उक्तं च–

व्याख्या– तदिति। प्रेषय = गृहं गन्तुम् आज्ञा कुरु–(घर जाने की आज्ञा दो) **अनुभुङ्क्ष्व** = अनुभवस्व (अनुभव करो)॥

चक्रधर इति । दैववशात् = भाग्यवशात् (भाग्यसे) **लोभवृक्षफलम्** = लोभरूपपादपफलमित्यर्थः (लोभ का परिणाम)।

हिन्दी– सुवर्णसिद्धि ने कहा–अब तुम मुझे घर जाने की आज्ञा दो, तुम यहीं रहकर अपने लोभ रूपी वृक्ष के फल का उपभोग करो।

तब चक्रधर ने कहा–भाई ! तुम तो विना कारण ही इस प्रकार कहते हो। मनुष्य को सुख-दुःख तो भाग्य के अनुसार प्राप्त होते हैं–कहा गया है–

दुर्गस्त्रिकूटः, परिखा समुद्रो रक्षांसि योधा धनदाच्च वित्तम्।
शास्त्रं च यस्योशनसा प्रणीतं, स रावणो दैववशाद्विपन्नः ।।८३।।

अन्वयः– यस्य त्रिकूटः दुर्गः, समुद्रः परिखा, रक्षांसि योधा, धनदात् च वित्तम्, उशनसा प्रणीतं यस्य शास्त्रं, स रावणः दैववशात् विपन्नः ।।८३।।

व्याख्या– दुर्ग इति । यस्य त्रिकूटः = त्रिकूटाख्यो दुर्गः, **समुद्रः** = सागरः, **परिखा** = खातः (खाई) **रक्षांसि** = राक्षसाः (राक्षस) **योधाः** = सैनिकाः, **धनदात् च** = कुबेराच्च **वित्तं** धनं कोष इति यावत् (कुबेर से धन) **शास्त्रञ्च** = नीतिशास्त्रन्तु, **उशनसा** = शुक्राचार्येण **प्रणीतम्** रचितम् (शुक्राचार्य द्वारा रचित नीतिशास्त्र) यः शुक्रनीतिमनुरुध्य व्यवहारमकरोदित्यर्थः, सः सोऽपि **रावणः** दशास्यः **दैववशात्** प्रतिकूलदैवात् (भाग्य प्रतिकूल होनेसे) **विपन्नः** = विपत्तिं **प्राप्तः**-सपरिवारो विनष्ट इत्यर्थः ।।८३।।

हिन्दी– तीन शिखरों वाला त्रिकूट पर्वत ही जिसका दुर्ग था। समुद्र ही जिसकी खाई थी। राक्षस जिसके सैनिक थे, कुबेर से प्राप्त होने वाला जिसका धन था, और शुक्राचार्य द्वारा रचित नीतिशास्त्र का जो अनुसरण करता था, वह दशमुख वाला रावण भी भाग्य विपरीत होने के कारण ही नष्ट हो गया ।।८३।।

अन्धकः कुब्जकश्चैव त्रिस्तनी राजकन्यका।
त्रयोऽप्यन्यायतः सिद्धाः सम्मुखे कर्मणि स्थिते ।।८४।।

अन्वयः– कर्मणि सम्मुखे स्थिते, अन्धकः कुब्जकः त्रिस्तनी राजकन्यका च त्रयोऽपि अन्यायतः सिद्धाः ।।८४।।

व्याख्या– अन्धक इति । कर्मणि = प्रारब्धकर्मणि (भाग्य के) **संमुखे स्थिते** = अनुकूले सति (अनुकूल होने पर) **अन्धकः** = चक्षुर्हीनः (दृष्टिहीन) **कुब्जकः** = कुब्जः तथा **त्रिस्तनी** = स्तनत्रयोपेता राजकन्यका, एते त्रयोऽपि अन्यायतः अन्यायं कुर्वन्तो वा, **सिद्धाः** = सिद्धिप्राप्ताः, अनुकूलेन दैवेन स्वस्वविरूपान्मुक्ता इत्यर्थः ॥८४॥

हिन्दी– और भी अन्धक, कुब्जक तथा त्रिस्तनी राजकन्या इन तीनों ने ही असत् कार्य करने पर भी भाग्य अनुकूल होनेसे, सिद्धि प्राप्त कर ली ॥८४॥

सुवर्णसिद्धिराह - कथमेतत् ? सोऽब्रवीत्-

हिन्दी– सुवर्णसिद्धि ने पूछा–वह कैसे ? तब चक्रधर ने कहा–

(१२) अन्धक-कुब्जक-त्रिस्तनीकथा

अस्त्युत्तरापथे मधुपुरं नाम नगरम्। तत्र मधुसेनो नाम राजा बभूव। तस्य कदाचिद्विषयसुखमनुभवतस्त्रिस्तनी कन्या बभूव। अथ तां त्रिस्तनीं जातां श्रुत्वा, स राजा कञ्चुकिनं प्रोवाच-यत् 'भोः त्यज्यतामियं त्रिस्तनी, गत्वा दूरेऽरण्ये यथा कश्चिन्न जानाति।

तत् श्रुत्वा कञ्चुकिनः प्रोचुः—महाराज! ज्ञायते यदनिष्टकारिणी त्रिस्तनी कन्या भवति। तथापि ब्राह्मणा आहूय प्रष्टव्याः। येन लोकद्वयं न विरुध्येते्। यतः—

व्याख्या— अस्तीति। उत्तरापथे-उत्तरस्यां दिशि (उत्तर दिशा में) **विषयसुखम्**-विषयाणां शब्दस्पर्शरूपादीनां सुखमिन्द्रियसंसर्गजनित आनन्द-स्तमित्यर्थः, रतिसुखम्, (कामक्रीडा- सुख) **अनुभवतः** = अनुभवं कुर्वतः (अनुभव करते हुए) **त्रिस्तनी** = स्तनत्रययुक्ता (तीन स्तनोंवाली), **कन्या** = सुता, **कञ्चुकिनम्** = अन्तःपुररक्षकम् सेवकम् (अन्तःपुर के सेवक को)।

तदिति। अनिष्टकारिणी = अनिष्टोत्पादनशीला-कष्टकारिणी (माता-पिता का अनिष्टकरने वाली) **लोकद्वयम् न विरुध्येत** = इह लोक परलोकश्च विरुद्धो न भवेदित्यर्थः, इह निन्दा न भवेत् परत्र धर्मो न हीयेतेत्यर्थः।

हिन्दी— उत्तर दिशा में मधुपुर नाम का एक नगर था। वहाँ मधुसेन नाम का राजा रहता था। कामसुख के आनन्द का अनुभव करते हुए उसे एक तीन स्तनवाली कन्या हुई। उस त्रिस्तनी कन्या के जन्म का वृत्त सुनकर राजा को बहुत चिन्ता हुई। उसने कंचुकियों को बुलाकर कहा—इस कन्या को कहीं वन में ले जाकर छोड दो। और इस बात का ध्यान रखना कि इसे कोई जानने न पावे।

यह सुनकर कञ्चुकी बोले-महाराज! मालूम है कि तीन स्तनों वाली कन्या हानिकारक होती है तो भी ब्राह्मणों को बुलाकर पूछना चाहिए। जिससे इस लोक में तथा परलोक में कोई विरोध न हो। क्योंकि—

यः सततं परिपृच्छति शृणोति सन्धारयत्यनिशम्।
तस्य दिवाकरकिरणैर्नलिनीव विवर्द्धते बुद्धिः ॥८५॥

अन्वयः– यः सततं परिपृच्छति, शृणोति, अनिशं सन्धारयति च तस्य बुद्धिः दिवाकरकिरणैः नलिनी इव विवर्द्धते ॥८५॥

व्याख्या– य इति । यः = पुरुषः (जो पुरुष) **सततं** = नित्यम् (सदा) **परिपृच्छति** = तत्तत्कर्मानुष्ठानकाले परकीयसम्मतिगृह्णाति, (जो प्रत्येक कार्य करने के समय परकीय विचार को गृहण करता है) **शृणोति** = परोपदेशमाकर्णयति, (दूसरे के उपदेश को सुनता है) **अनिशम्** = निरन्तरम् (सदा) **सन्धारयति** = उपदिष्टं स्वमनसि निवेशयति, (उपदेश को मन में धारण करता है) **तस्य पुरुषस्य दिवाकरकिरणैः** = सूर्य किरणैः नलिनी इव = पद्मिनीव (उस पुरुष की बुद्धि सूर्य किरणों से नलिनी की तरह) **विवर्धते** = विशेषेण वृद्धि प्राप्नोति ॥८५॥

हिन्दी– जो पुरुष निरन्तर जिज्ञासा करता है, दूसरों की बात-परामर्श को सुनता है तथा सुनकर उसे मन में धारण करता है, उसकी बुद्धि सूर्य किरण से विकसित होनेवाली कमलिनी के समान वृद्धि को प्राप्त होती है ॥८५॥

पृच्छकेन सदा भाव्यं पुरुषेण विजानता ।
राक्षसेन्द्रगृहीतोऽपि प्रश्नान्मुक्तो द्विजः पुरा ॥८६॥

अन्वयः– विजानता पुरुषेण अपि सदा पृच्छकेन भाव्यम्, पुरा राक्षसेन्द्रगृहीतः अपि द्विजः प्रश्नात् मुक्तः ॥८६॥

व्याख्या– पृच्छकेनेति । विजानता = बुद्धिमताऽपि पुरुषेण सदा (जो बुद्धिमान पुरुष) **पृच्छकेन** = कृतप्रश्नेन भाव्यम् (सदा प्रश्न करता रहता है, अपने कार्य को जानते हुए भी दूसरों से पूछ कर कार्य करता है) **राक्षसेन्द्रगृहीतः** = महाराक्षसेनाक्रान्तोऽपि (बडे राक्षस द्वारा पकडे जाने पर भी) **द्विजः** = ब्राह्मणः, **प्रश्नात्** = प्रश्नकरणात् (प्रश्न करने से) मुक्तः ॥८६॥

हिन्दी– इसके अतिरिक्त सब कुछ जानते हुए भी पुरुष को सदा जिज्ञासाशील रहना चाहिए। देखो, बडे राक्षस के द्वारा पकड़ा गया ब्राह्मण अपने बार-बार प्रश्न करने से उसके चंगुल से मुक्त हो गया ॥८६॥

राजा आह– कथमेतत् ? ते प्रोचुः–

राजा ने पूछा–यह कैसे ? वे बोले–

(१३) राक्षसगृहीत-ब्राह्मण कथा

देव ! कस्मिंश्चिद्वनोद्देशे चण्डकर्मा नाम राक्षसः प्रतिवसतिस्म । एकदा तेन भ्रमताऽटव्यां कश्चिद् ब्राह्मणः समासादितः । तनस्तस्य स्कन्धमारुह्य प्रोवाच–भो अग्रेसरो गम्यताम् ।

ब्राह्मणोऽपि भयत्रस्तमनास्तमादाय प्रस्थितः । अथ तस्य कमलोदरकोमलौ पादौ दृष्ट्वा ब्राह्मणो राक्षसमपृच्छत्–'भोः किमेवंविधौ ते पादवतिकोमलौ ?' राक्षस आह–'भोः व्रतमस्ति, नाहमार्द्रपादो भूमिं स्पृशामि ।'

तच्छ्रुत्वात्मनो मोक्षोपायं चिन्तयन् स सरः प्राप्तः । ततो राक्षसेनाभिहितं–'भो यावदहं स्नानं कृत्वा देवतार्चनविधिं विधायागच्छामि, तावत्त्वयाऽतः स्थानादन्यत्र न गन्तव्यम् ।

व्याख्या– देवेति । अटव्यां = वने (जंगल में) **समासादितः** = सम्प्राप्तः (पा गया) **अग्रेसरः** = अग्रेगन्ता अथवा अग्रे सरोवरं यावदित्यर्थः (आगे के सरोवर तक) ।।

ब्राह्मण इति । तम् = राक्षसम् (राक्षस को) **आदाय** = (लेकर) **कमलोदरकोमलौ** = कमलोदरवत् कोमलौ मृदुलौ = (कमल के समान कोमल) **पादौ** = चरणौ (पैरों को) **व्रतमस्ति** = प्रतिज्ञाऽस्ति (मेरी प्रतिज्ञा है) **आर्द्रपादः** = क्लिन्नाङ्घ्रिः-क्लिन्नचरण; (गीले पैर से) ।

तदिति । मोक्षोपायं = उद्धारप्रकारम् मोक्षस्योपायं मार्गम् = (मुक्ति का उपाय) **सरः** = सरोवरः **देवतार्चनविधिम्** = देवतायाः अर्चनं तस्य विधिस्तं-देवतार्चनविधिम्-देवपूजनकर्म, **विधाय** = कृत्वा (करके) **न गन्तव्यम्** = न अग्रे गन्तव्यम् (आगे मत जाना) ।

हिन्दी– देव ! किसी वन में चण्डकर्मा नामका राक्षस रहता था । एक दिन जंगल में भ्रमण करते हुए उसने एक ब्राह्मण को देखा, तत्पश्चात् उसने ब्राह्मण के कन्धे पर चढकर कहा– अरे, आगेचल, या आगे के सरोवर तक चल ।

वह ब्राह्मण भी भयभीत होकर उसे ले कर चल दिया। कुछ दूर जाने के पश्चात् राक्षस के कमल के समान कोमल चरणों को देखकर ब्राह्मण ने पूछा– "आपके चरण इतने कोमल क्यों है ?" राक्षस ने कहा–"मेरी यह प्रतिज्ञा है कि मैं गीले चरणों से भूमि का स्पर्श नहीं करुँगा।"

राक्षस के उक्त वचन को सुनकर वह ब्राह्मण अपनी मुक्ति का उपाय सोचने लगा और वह उस सरोवर तक जा पहुँचा। राक्षस ने उस सरोवर को देखकर कहा–मैं स्नान करके देवताओं की पूजा सम्पन्न करके आता हूँ तबतक तुम इस स्थान से और कहीं न जाना।

तथाऽनुष्ठिते द्विजश्चिन्तयामास–'नूनं देवार्चनविधेरुर्ध्वं मामेव भक्षयिष्यति, तद्द्रुततरं गच्छामि, येनैष आर्द्रपादो न मम पृष्ठमेष्यति।'

तथाऽनुष्ठिते राक्षसो व्रतभङ्गभयात्तस्य पृष्ठं न गतः। अतोऽहं ब्रवीमि–'पृच्छकेन सदा भाव्यम्'' इति।

अथ तेभ्यस्तच्छ्रुत्वा राजा द्विजानाहूय प्रोवाच–'भोः ब्राह्मणाः! त्रिस्तनी मे कन्या समुत्पन्ना, तत् किं तस्या प्रतिविधानमस्ति न वा ? ते प्रोचुः–देव श्रूयताम्–

हीनाङ्गी वाऽधिकाङ्गी वा या भवेत् कन्यका नृणाम्।
भर्तुः सा स्याद्विनाशाय स्वशीलनिधनाय च ।।८७।।

व्याख्या– तथेति। तथानुष्ठिते = उक्तविधिना कृते, (उक्त प्रकार से) **द्विजः** = ब्राह्मणः, **चिन्तयामास** = चिन्तितवान् (सोचने लगा) **द्रुततरं** = शीघ्रम् (जल्दी से) **पृष्ठमेष्यति** = अनुगमिष्यति (पीछे-पीछे आयगा)।

तेथति। व्रतभङ्गभयात् = प्रतिज्ञानाशभयात् (प्रतिज्ञा नष्ट होने के भयसे) **तेभ्यः** = (कंचुकियों से) **तस्याः** = समुत्पन्नायाः कन्यायाः (उस कन्या के जन्म लेने का) **प्रतिविधानम्** = दोषपरिहारोपायः (निराकरण का उपाय)।

अन्वयः– नृणां हीनाङ्गीं वा अधिकाङ्गी वा या कन्यका भवेत् सा भर्तुः विनाशाय स्वशीलनिधनाय च स्यात् ।।८७।।

व्याख्या– हीनाङ्गीति। हीनाङ्गी = हीनमङ्गं यस्याऽसा न्यूनावयवा

(हीन अवयवों की) **अधिकांगी** = अधिकावयवा (अधिक अंगोंवाली) **भर्तुः** = स्वपतेः, स्वामिनः विनाशाय (अपने पति का नाश करनेवाली) **स्वशीलनिधनाय** = स्वस्य शीलमाचारो व्यभिचाराभावः तस्य निधनाय विनाशाय च स्यात् (अपने चरित्र को नष्ट करने वाली) ॥८७॥

हिन्दी– इस प्रकार जब राक्षस स्नान करने के लिए चला गया तो ब्राह्मण ने विचार किया–निश्चय ही देवपूजा के पश्चात् यह राक्षस मुझे खा डालेगा। अतः मैं शीघ्रता से यहाँ से भाग जाता हूँ, जिससे गीले पैर होने से यह मेरे पीछे नहीं आयगा।

ऐसा विचार कर ब्राह्मण वहाँ से भाग गया। राक्षस ने भी अपने व्रत के भङ्ग के भय से उसका पीछा नहीं किया। अतः मैं कहता हूँ कि मनुष्य को सदैव जिज्ञासु होना चाहिए।

तत्पश्चात् कञ्चुकियों की बात सुनकर राजा ने ब्राह्मणों को बुलाकर पूछा–हे विप्रों ! मुझे त्रिस्तनी कन्या उत्पन्न हुई है, तो उसके परिहार का कोई उपाय है अथवा नहीं ? तब ब्राह्मणों ने कहा–महाराज ! सुनिए–

मनुष्यों को यदि कम या अधिक अवयव वाली कन्या उत्पन्न हो तो वह अपने पति के विनाश अथवा अपने चरित्र को नष्ट करनेवाली होती है ॥८७॥

या पुनस्त्रिस्तनी कन्या याति लोचनगोचरा।
पितरं नाशयत्येव सा द्रुतं नात्र संशयः ॥८८॥

अन्वयः– पुनः या त्रिस्तनी कन्या लोचनगोचरा याति सा द्रुतमेव पितरं नाशयति। अत्र संशयः न ॥८८॥

व्याख्या– येति। पुनः = भूयः (फिर) **या त्रिस्तनी** = स्तनत्रययुक्ता-(तीन स्तनों वाली) **लोचनगोचरा** = दृष्टिपथम् याति, (दृष्टि के सामने आती है) **द्रुतं** = शीघ्रम् (शीघ्र ही) **पितरं** = जनकं (पिता को) **नाशयति** = मारयति। अत्र **संशयः** सन्देहो नास्ति ॥८८॥

हिन्दी– यदि तीन स्तनोंवाली कन्या पुनः पिता के सामने आती है, तो अपने पिता का वह शीघ्र नाश करती है, इसमें सन्देह नहीं है ॥८८॥

तस्मादस्या दर्शनं परिहरतु देवः । तथा यदि कश्चिदुद्वाहयति, तदेनां तस्मै दत्त्वा देशत्यागेन स नियोजयितव्यः इति । एवं कृते लोकद्वयाऽविरुद्धता भवति ।

अथ तेषां तद्वचनमाकर्ण्य स राजा पटहशब्देन सर्वत्र घोषणामाज्ञापयामास—अहो त्रिस्तनीं राजकन्यां यः कश्चिदुद्वाहयति, स सुवर्णलक्षमाप्नोति देशत्यागश्च ।

एवं तस्यामाघोषणायां क्रियमाणायां महान् कालो व्यतीतः । न कश्चित्तां प्रतिगृह्णाति । सापि यौवनोन्मुखी सञ्जाता सुगुप्तस्थानस्थिता यत्नेन रक्ष्यमाणा तिष्ठति ।

व्याख्या— तस्मादिति । तस्मात् = अतः, **अस्याः** = कन्यायाः (कन्या का) **परिहरतु** = वर्जयतु, (त्याग दें, न करें) **उद्वाहयति** = परिणयते (विवाह कर लेता है) **देशत्यागेन** = देशपरिहारेण (राज्य के त्याग से) **नियोजयितव्यः** = समायोजयितव्यः (व्यवस्था की जाय, उसे राज्य से बाहर निकाल दिया जाय) ।

अथेति । पटहशब्देन = ढक्काध्वानेन, आनकोद्घोषेण 'आनकः पटहोऽस्त्री'- **इत्यमरः** (नगाडे की ध्वनि से) **आप्नोति** = प्रोप्नोति (प्राप्त करेगा) ।

एवमिति । महान्कालः = दीर्घकालः (बहुत दिन) **यत्नेन** = प्रयत्नेन (प्रयत्न से) **तिष्ठति** = निवसति (रहती थी) **यौवनोन्मुखी** = तारुण्योपेतेत्यर्थः (युवती हो गयी) ।

हिन्दी— अतः महाराज ! आप इसका दर्शन न करें । यदि कोई इसके साथ विवाह करे तो उसके साथ इस कन्या को भी राज्य से निकाल दिया जाय । ऐसा करने से आपके दोनों लोक बने रहेंगे ।

उन ब्राह्मणों की ऐसी बातें सुनकर उस राजा ने नगाडा पीटवाकर उद्घोषणा करवादी कि मेरी इस त्रिस्तनी कन्या के साथ जो विवाह करेगा उसे एक लाख सुवर्ण की मुद्राएँ दी जायँगी, किन्तु उस व्यक्ति को इस राज्य के बाहर जाना पडेगा ।

राजा की इस प्रकार की घोषणा हो जाने के पश्चात् भी दीर्घ काल व्यतीत गया, किन्तु कोई भी व्यक्ति उस कन्या के साथ विवाह करने के लिए तैयार नहीं हुआ। वह कन्या भी धीरे धीरे युवती हो गयी। उसे किसी गुप्त स्थान में अत्यन्त प्रयत्न से सुरक्षित रखा गया था।

अथ तत्रैव नगरे कश्चिदन्धस्तिष्ठति। तस्य च मन्थरकनामा कुब्जोऽग्रेसरो यष्टिग्राही। ताभ्यां तं पटहशब्दमाकर्ण्य मिथो मन्त्रितं– स्पृश्यतेऽयं पटहः। यदि कथमपि दैवात् कन्या लभ्यते, सुवर्णप्राप्तिश्च भवति, तदा सुखेन सुवर्णप्राप्त्या कालो व्रजति। अथ यदि तस्य दोषतो मृत्युर्भवति, तदा दारिद्र्योपात्तस्यास्य क्लेशस्य पर्यन्तो भवति। उक्तं च–

व्याख्या– अथेति। अथ = तदनन्तरम्, **कुब्जः** = कुबड़ा, **अग्रेसरः** = अग्रगः (आगे चलने वाला) **यष्टिग्राही** = यष्टिं गृह्णाति सः यष्टिका ग्रहीता (लाठी को पकड़ने वाला) **मिथः** = परस्परम् (आपस में) **मन्त्रितं** = विचारितं (विचार किया) **व्रजति** = याति। यास्यति (व्यतीत होगा) **तस्याः** = कन्यायाः (कन्या के) **मृत्युः** = मरणम् (मृत्यु) **दारिद्र्योपात्तस्य** = दारिद्र्येण उपात्तः द्रारिद्र्यजनितस्य, निर्धनताजन्यस्य (निर्धनता के) **क्लेशस्य** = दुःखस्य (दुःख की) **पर्यन्तः** = अवसानम् (अन्त) **स्यात्** = भवेत्।

हिन्दी– उसी नगर में एक अन्धा रहता था। मन्थरक नाम का एक कुब्जा व्यक्ति उसका मित्र था जो उसकी लाठी को पकडकर आगे-आगे चलता था। उन दोनों ने राजा द्वारा की हुई घोषणा को सुना, उन्होंने परस्पर विचार किया– "चलो पटह को छू लिया जाय। संयोग से राजकन्या प्राप्त हो गयी तो एक लाख सुवर्ण मुद्राएँ भी प्राप्त हो जायेंगी तथा उस धन से हमारा समय भी आनन्द से व्यतीत हो जायगा। यदि भाग्यवश ऐसा नहीं हो सका और राजकन्या के दोष से हमारी मृत्यु हो गयी, तो भी हमारे इस कष्टपूर्ण जीवन की समाप्ति हो जायगी। क्योंकि–कहा भी है–

लज्जा स्नेहः स्वरमधुरता बुद्धयो यौवनश्रीः
कान्तासङ्गः स्वजनममता दुःखहानिर्विलासः।

धर्मः शास्त्रं सुरगुरुमतिः शौचमाचारचिन्ता
पूर्णे सर्वे जठरपिठरे प्राणिनां सम्भवन्ति ।।८९।।

अन्वयः– लज्जा, स्नेहः, स्वरमधुरता, बुद्धयः, यौवनश्रीः, कान्तासङ्गः, स्वजनममता, दुःखहानिः, विलासः, धर्मः, शास्त्रं सुरगुरुमतिः,-शौचम्, आचार-चिन्ता, (एते सर्वे) प्राणिनां जठरपिठरे पूर्णे एव सम्भवन्ति ।।८९।।

व्याख्या– लज्जेति । लज्जा = व्रीडा, दुष्टकर्मणः सकाशात्, **स्नेहः** = अनुरागः (प्रेम) पुत्रादिषु, **स्वरमधुरता** = स्वरसौष्ठवं, सुन्दरभाषण-भङ्गिर्जनेष्विति, (प्रियभाषण) **यौवनश्रीः** = यौवनस्य तारुण्यस्य श्रीः शोभा काान्तिरित्यर्थः (जवानी) **कान्तासङ्गः** = स्त्रीप्रसंगः-कान्तया सह सङ्गमः, (स्त्री का साथ) **स्वजनममता** = स्वजनेषु स्वबन्धुषु कलत्रादिषु ममता (अपने बन्धुवर्ग के प्रति ममता) **दुःखहानिः** = दुःखानां क्लेशानां हानिर्विनाशः (दुःखों का अन्त) **सुरगुरुमतिः** = देवगुरुर्बृहस्पतिः तद्वत् मतिः, कर्तव्याकर्तव्यविवेचनारूपा बुद्धिः, (विवेक) **शौचम्** (शुद्धिः) पवित्रता, **आचारचिन्ता** = आचरणविचारः (आचार की भावना) **जठरपिठरे** = उदरभाण्डे, (पेट रूपी बर्तन के) **पूर्णे** = पूरिते (भरने पर) **संभवन्ति** = होती हैं ।।८९।।

हिन्दी– लज्जा, स्नेह, प्रिय भाषण, बुद्धि, युवावस्था, स्त्री समागम, प्रिय व्यक्तियों के प्रति ममता, दुःखहानि, विलास, धर्म, विद्या, गुरुजनों-पूज्यजनों के प्रतिश्रद्धा, आचार-भावना, पवित्रता आदि का उद्भव मनुष्य के मन में तभी होता है,जब उसका पेट भरा रहता है । वस्तुतः उदर के खाली होने पर कोई भी बात अच्छी नहीं लगती है ।।८९।।

एवमुक्त्वाऽन्येन गत्वा स पटहः स्पृष्टः । उक्तं च– अहं तां कन्यामुद्वाहयामि, यदि राजा मे प्रयच्छति । ततस्तैःराजपुरुषैर्गत्वा राज्ञे निवेदितम्–देव ! अन्येन केनचित् पटहः स्पृष्टः । तदत्र विषये देवः प्रमाणम् । राजा प्राह–

व्याख्या– एवमिति । उक्त्वा = कथयित्वा (कहकर) **पटहः** = आनकः (नगाड़ा) स्पृष्टः, **प्रयच्छति** = ददाति, **राजपुरुषैः** = राजभृत्यैः (सिपाहियों ने) **निवेदितम्** = कथितम्, **प्रमाणम्** = कार्याकार्यं कर्तुं समर्थः ।

हिन्दी– इस प्रकार उन दोनों ने परस्पर विचार करने के पश्चात् उस अन्धे ने पटह को जाकर छू लिया और कहा यदि महाराज तैयार हो तो मैं उस कन्या के साथ विवाह के लिए तैयार हूँ। तत्पश्चात् राजपुरुषों ने राजा के पास जाकर निवेदन किया–महाराज ! एक अन्धे ने पटह को छू लिया है। इस विषय में आपका जो आदेश हो उसका हम पालन करेंगे।

अन्धो वा बधिरो वाऽपि कुष्ठी वाप्यन्त्यजोऽपि वा।
प्रतिगृह्णातु तां कन्यां सलक्षां स्याद्विदेशगः ।।९०।।

व्याख्या– विदेशगः = परदेशगः (परदेश चला जाय) ।।९०।।

हिन्दी– राजपुरुषों के वचन को सुनकर राजा ने कहा– चाहे वह व्यक्ति अन्धा हो, बधिर हो, कोढी हो या अन्त्यज हो, मैं उसके साथ इस कन्या का विवाह करने को तैयार हूँ। वह पुरुष एक लाख स्वर्णमुद्राओं के साथ इस कन्याको ग्रहण कर सकता है, केवल एक शर्त यह है कि उसे यह राज्य तत्काल छोड़ देना होगा ।।९०।।

अथ राजादेशात्तैः राजपुरुषैस्तं नदीतीरे नीत्वा सुवर्णलक्षेण समं विवाहविधिना त्रिस्तनीं तस्मै दत्त्वा जलयाने निधाय कैवर्ताः प्रोक्ताः– भोः देशान्तरं नीत्वा कस्मिंश्चिदधिष्ठानेऽन्धः सपत्नीकः कुब्जकेन सह मोचनीयः।

तथानुष्ठिते विदेशमासाद्य कस्मिंश्चिदधिष्ठाने कैवर्त्तदर्शिते त्रयोऽपि मूल्येन गृहं प्राप्ताः सुखेन कालं नयन्ति स्म। केवलमन्धः पर्यङ्के सुप्तः तिष्ठति, गृहव्यापारं मन्थरकः करोति। एवं गच्छता कालेन त्रिस्तन्याः कुब्जकेन सह विकृतिः समपद्यत। अथवा साध्विदमुच्यते–

व्याख्या– अथेति। राजादेशात् = राज्ञः आदेशः, तस्मात्, (राजा की आज्ञा से) **तम्** = अन्धपुरुषम् (अन्धे को) **तस्मै** = अन्धाय, **जलयाने** = नौकायाम् (नाव में) **कैवर्त्ताः** = धीवराः, नौकोपजीविनः कर्णधारा इति यावत् (केवटों से) **मोचनीयः** = परित्याज्यः (छोड़ दिया जाय)।

तथेति । पर्यङ्के = मञ्चके (चारपाई पर) **गृहव्यापारं** = गृहप्रबन्धं (घर का प्रबन्ध) **विकृतिः** = विकारः, व्यभिचाररूप इत्यर्थः (व्यभिचार का सम्बन्ध) **समपद्यत** = समभवत् (हुई)।

हिन्दी– इस प्रकार राजा के आदेश से उन राजपुरुषों ने उस अन्धेपुरुष को नदी तट पर ले जाकर एक लाख सुवर्ण मुद्राओं के साथ विवाह की विधिसे उस त्रिस्तनी कन्या को उसे देकर और उन सभी को नाव में बिठला कर धीवरों से कहा– अरे कैवटों ! इन सभी को अन्य राज्य में लेजाकर किसी स्थान पर कुबडे के साथ पत्नी सहित इस अन्धे को छोड देना।

इस प्रकार वे तीनों परदेश चले जाने पर मल्लाहों द्वारा दर्शित किसी नगर में किराये पर मकान लेकर आनन्द से रहने लगे। अन्धा दिन-रात चारपाई पर पड़ा रहता था और कुबडा मन्थरक घर का समस्त कार्य-भार देखता था। इस प्रकार कुछ दिन व्यतीत हो जाने पर उस त्रिस्तनी के मन में कुबडे को देखकर मनोविकार उत्पन्न हो गया। अथवा उचित ही कहा गया है–

यदि स्याच्छीतलो वह्निश्चन्द्रमा दहनात्मकः।
सुस्वादुः सागरः स्त्रीणां तत्सतीत्वं प्रजायते ।।९१।।

अन्वयः– यदि वह्निः शीतलः स्यात्, यदि वा चन्द्रमा दहनात्मकः स्यात्, यदि सागरः सुस्वादुः स्यात् तत् स्त्रीणां सतीत्वं प्रजायते ।।९१।।

व्याख्या– यदीति । यदि नाम वह्निः = अग्निः, **शीतलः** = शिशिरः, शैत्यगुणयुक्तः, **चन्द्रमा** = शशी, **दहनात्मकः** = दाहकः भवेत् यदि वा, **सागरः** = समुद्रः, **सुस्वादुः** = स्वादिष्टः, सुष्ठु अनायासेन पेयः स्यात्, भवेत् तदा **स्त्रीणां** = नारीणां, योषाणामपि सतीत्वम् सतीभावः पतिव्रतात्वं **प्रजायते** = भवेदित्यर्थः वह्न्यादीनां शैत्यादिवत् नारीणां सतीत्वमप्यसम्भवतीति भावः। **निदर्शना** अलंकारः ।।९१।।

हिन्दी– यदि अग्नि शीतल हो जाय, चन्द्रमा उष्ण हो जाय और खारा समुद्र सुस्वादु हो जाय, इस प्रकार यदि ये सभी असम्भव हो जाय तो कदाचित् स्त्री से पातिव्रत्य की आशा की जा सकती है ।।९१।।

अथान्येद्युस्त्रिस्तन्या मन्थरकोऽभिहितः–'भो सुभग ! यद्येषोऽन्धः कथञ्चिद्व्यापाद्यते, तदावयोः सुखेन कालो याति। तदन्विष्यतां कुत्रचिद्विषम्, येनास्मै तत्प्रदाय सुखिनी भवामि।

अन्यदा कुब्जकेन परिभ्रमता मृतः कृष्णसर्पः प्राप्तः। तं गृहीत्वा प्रहृष्टमना गृहमभ्येत्य तामाह–'सुभगे लब्धोऽयं कृष्ण-सर्पः। तदेनं खण्डशः कृत्वा प्रभूतशुण्ठ्यादिभिः संस्कार्यास्मै विकलेनत्राय मत्स्यामिषं भणित्वा प्रयच्छ, येन द्राग्विनश्यति। यतोऽस्य मत्स्यामिषं सदा प्रियम्।' एवमुक्त्वा मन्थरको बहिर्गतः।

व्याख्या– अथेति। अन्येद्युः = अन्यस्मिन् दिने (किसी दिन) **अभिहितः** = कथितः (कहा) **व्यापाद्यते** = हन्यते (मार डाला जाता है।) **प्रदाय** = दत्वा (देकर) **सुखिनी** = सानन्दा (निश्चिन्त, चिन्तारहित)।

अन्यदेति। अन्यदा = द्वितीयदिने (दूसरे दिन) **अभ्येत्य** = आगत्य (आकर) **प्रभूतैः** = प्रचुरैः **प्रभूतशुण्ठ्यादिभिः**-शुण्ठीप्रभूतिभिश्चूर्णीकृतैरित्यर्थः-(सोंठ, कालीमिर्च आदि से) **संस्कार्य** = पाचयित्वा (पकाकर) **विकलनेत्राय** = अन्धाय (अन्धेको) **मत्स्यामिषं** = मीनमांसम् (मछली का मांस) **भणित्वा** = कथयित्वा (कहकर) **द्राक्** = झटिति (तत्काल) **बहिर्गतः** = बहिर्निर्गतः (बाहर चला गया)।

हिन्दी– तत्पश्चात् एक दिन उस त्रिस्तनी ने मन्थरक से कहा– हे सुभग ! यदि यह अन्धा किसी प्रकार मार डाला जाय तो हम दोनों का समय आनन्द से व्यतीत होने लगेगा। अतः कहीं से विष खोजकर ले आइये, जिससे इसे विष खिलाकर आनन्द से अपने दिन व्यतीत करूँ।

इसके उपरान्त एक दिन घूमते हुए उस कुबडे को कही मृत साँप मिल गया। उसे लेकर वह प्रसन्न मन से घर आकर त्रिस्तनी से बोला– प्रिये ! आज यह काला साँप मिल गया है। इस साँप के टुकडे-टुकडे कर सोंठ-कालीमिर्च आदि मसाले से अच्छी तरह पकाकर इस अन्धे को मछली का मांस है, ऐसा

कहकर खिला दो। ऐसा करने से यह शीघ्र मर जायगा। क्योंकि इसे मछली का मांस बहुत प्रिय है। ऐसा कहकर वह मन्थरक कहीं बाहर चला गया।

सापि प्रदीप्ते वह्नौ कृष्णसर्पं खण्डशः कृत्वा तक्रस्थाल्यामाधाय गृहव्यापाराकुला तं विकलाक्षं सप्रश्रयमुवाच–'आर्यपुत्र। तवाभीष्टं मत्स्यमांसं समानीतम्। यतस्त्वं सदैव तत्पृच्छसि। ते च मत्स्या वह्नौ पाचनाय तिष्ठन्ति, तद्यावदहं गृहकृत्यं करोमि, तावत्त्वं दर्वीमादाय क्षणमेकं तान् प्रचालय।'

सोऽपि तदाकर्ण्य हृष्टमना सृक्कणी परिलिहन् द्रुतमुत्थाय दर्वीमादाय प्रमथितुमारब्धः। अथ तस्य मत्स्यान् मथ्नतो विषगर्भबाष्पेण संस्पृष्टं नीलपटलं चक्षुर्भ्यामगलत्। असावप्यन्धस्तं बहुगुणं मन्यमानो विशेषान्नेत्राभ्यां बाष्पग्रहणमकरोत्।

व्याख्या– सेति। सापि = त्रिस्तनी अपि, (उस त्रिस्तनी ने भी) **प्रदीप्ते वह्नौ** = प्रज्वलिताग्नौ (जलती अग्नि पर) **तक्रस्थाल्यां** = तक्रभाण्डे, (मट्ठे के बर्तन में) **विकलाक्षं** = दृष्टिशून्यम् (अन्धे से) **सप्रश्रयं** = स्नेहन = (प्रेम से) **गृहव्यापाराकुला** = गृहस्य व्यापारे भोजन-इन्धनादौ आकुला व्यापृता (गृह कार्य में व्यस्तता के कारण) **तवाभीष्टं** = तव प्रियं वस्तु (तुम्हारी प्रियवस्तु) **पाचनाय** = पाकाय (पकने के लिये) **दर्वीम्** = खजाकाम्, (कलछी, चम्मच को)–'दर्वीः कम्बोखजाका **चेत्यमरः**' **प्रचालय** = मन्थय (चलाओ)।

स इति। सृक्कणी = ओष्ठप्रान्तभागौ (ओठों को) **परिलिहन्** = रसनया पुनः पुनः परिमार्जयन् (जीभसे चाटते हुए) **प्रमथितुम्** = सञ्चालयितुम् (चलाने के लिए) **मथ्नतः** = परिचालयतः (चलाते हुए) **विषगर्भवाष्पेण** = विषं गर्भे मध्ये यस्य तादृशेन वाष्पेण धूमविशेषेण-(विषमिश्रितवाष्प से) **संसृष्टम्** = संलग्नम्, **नीलपटलम्** = कालिमनिचयः दृष्टेरावरकं यदित्यर्थः (आँख का माँड़ा) **अगलत्** = अस्त्रवत् (गलकर गिरने लगा) बहुगुणम् प्रचुरगुणकरम् (लाभदायक)।

हिन्दी– त्रिस्तनी उस राजकन्या ने भी सर्प के टुकड़े-टुकड़े करके मट्ठे के बर्तन में रखकर उसे अग्नि पर चढाकर गृहकार्य की व्यस्तता के कारण प्रेम

से उस अन्धे को कहा–'आर्य ! आपकी प्रिय वस्तु मछली मँगायी गयी है, क्योंकि आप उसके विषय में निरंतर पूछा करते हैं। उन मछलियों को पकने के लिये मैंने अग्नि पर चढा दिया है। आप चम्मच लेकर उसे चलाइये, तबतक मैं घर का अन्य कार्य कर लेती हूँ।'

उसके कथन को सुनकर अन्धे ने प्रसन्नता से अपने ओठों को जीभ से चाटते हुए चम्मच को लेकर उसे चलाना प्रारम्भ कर दिया। मछली को चलाते समय उसके नेत्रों में विष-मिश्रित भाप के लगने से आँख का माँड़ा (मोतिया बिन्द) गलकर गिरने लगा। अन्धा भी इसे बहुत लाभकारक मानता हुआ विशेषरूप से नेत्रों द्वारा भाप ग्रहण करने लगा।

ततो लब्धदृष्टिर्जातो यावत्पश्यति, तावत्तक्रमध्ये कृष्णसर्पखण्डानि केवलान्येवावलोकयति। ततो व्यचिन्तयत् 'अहो किमेतत्? मम मत्स्यामिषं कथितमासीदनया। एतानि तु कृष्णसर्पखण्डानि। तत्तावद्विजानामि सम्यक् त्रिस्तन्याश्चेष्टितम् किं मम वधोपायक्रमः कुब्जस्य वा, उताहो अन्यस्य वा कस्यचित्' एवं विचिन्त्य स्वाकारं गूहयन्नन्धवत् कर्म करोति यथा पुरा।

अत्रान्तरे कुब्जः समागत्य निःशङ्कतयालिङ्गन-चुम्बनादिभिस्त्रिस्तनीं सेवितुमुपचक्रमे। सोऽप्यन्धस्तमवलोयन्नपि यावन्न किञ्चिच्छस्त्रं पश्यति, तावत्कोपव्याकुलमनाः पूर्ववच्छयनं गत्वा कुब्जं चरणाभ्यां सङ्गृह्य सामर्थ्यात् स्वमस्तकोपरि भ्रामयित्वा त्रिस्तनीहृदये व्यताडयत्।

अथ कुब्जप्रहारेण तस्यास्तृतीयः स्तनः उरसि प्रविष्टः। तथा बलान्मस्तकोपरि भ्रमणेन कुब्जः प्राञ्जलतां गतः। अतोऽहं ब्रवीमि– 'अन्धकः कुब्जकश्चैव' इति।

सवुर्णसिद्धिराह–भो सत्यमेतत्। दैवानुकूलतया सर्वं कल्याणं सम्पद्यते। तथापि पुरुषेण सतां वचनं कार्यम्। न पुनरेवमेव वर्तितव्यम् अथ एवमेव यो वर्तते, स त्वमिव विनश्यति। तथा च–

व्याख्या– तत इति । ततः = तदनन्तरम्, (तत्पश्चात्) **लब्धदृष्टिः** = लब्धा दृष्टिर्येन स लब्धदृष्टिः-प्राप्तदर्शनशक्तिम् (देखने की शक्ति) **अनया** = त्रिस्तन्या (त्रिस्तनी ने) **विजानामि** = विस्तरेण-पूर्णरूपेणावगच्छामि (पूर्णरूप से समझलूँ) **चेष्टितं** = पापकृत्यम् (घृणित कार्य) **स्वाकारम्** = स्वययार्थरूपम्, (अपने यथार्थरूपको) **गूहयन्** = अप्रकाशयन् (छिपाते हुए) ।

अत्रेति आलिङ्गनचुम्बनादिभिः = रतिक्रीडाविशेषव्यापारैः (रतिक्रीडा के कार्यों को) **व्याकुलमनाः** = आकुलचित्तः (चिन्तित-व्यग्रचित) **सङ्गृह्य** = धृत्वा (पकड़कर) **सामर्थ्यात्** = पूर्णशक्तितः-(पूर्ण शक्तिसे) **हृदये** = उरसि (छाती पर) **व्यताडयत्** = विशेषेण अधिकं दयां परित्यज्येत्यर्थः, हतवान् ।

सुवर्णसिद्धिरिति । प्राञ्जलतां = ऋजुताम्, **गतः** = प्राप्तः, कुब्जदोषर-हितोऽभूदित्यर्थः-(कुबडा सीधा हो गया) **कार्यम्** = कर्त्तव्यम्, (कर्त्तव्य) **वर्तितव्यम्** = व्यवहरणीयम् (व्यवहार करना) **विनश्यति** = नाशं प्राप्नोति (नाश होता है) ।

हिन्दी– भाप के सेकने से जब अन्धे की आँखों में देखने की शक्ति उत्पन्न हो गयी तब उसने देखा कि मट्ठे में काले साँप के टुकड़े पड़े हुए हैं । तत्पश्चात् उसने सोचा कि अरे ! यह क्या है ? इस त्रिस्तनी ने तो मुझे बताया था कि मछली के टुकड़े हैं, किन्तु ये तो काले साँप के टुकड़े पकाये जा रहे हैं । अतः अत मुझे त्रिस्तनी के व्यवहार का ठीक रीति से पता लगाना चाहिए । उसने ऐसा उपाय मुझे मारने के लिए किया है अथवा कुबड़े को, अथवा किसी दूसरे को मारने के लिए यह किया है । ऐसा विचार कर वह अपने स्वरूप को प्रकट न करते हुए पूर्ववत् अन्धे की तरह अपना कार्य करने लगा ।

इसी बीच वह कुबडा आकर विना किसी भय के उस त्रिस्तनी का आलिंगन-चुम्बनादि करता हुआ उसके साथ रतिक्रीडा करने लगा । उस अन्धे ने यह सब देखकर उसे मारने के लिए पास में जब कोई शस्त्र नहीं देखा तो क्रोध से व्याकुल होकर टटोलता हुआ खाट के पास जाकर उस कुबडे के दोनों पैरों को पकडकर, उसे उठाया और अपने शिर पर घुमाता हुआ त्रिस्तनी की

छाती पर जोर से उसे पटक दिया। इस प्रकार कुबडे के प्रहार से त्रिस्तनी का तीसरा स्तन उसके हृदय में घुस गया और वह कुबडा भी सीधा हो गया। अतः मैं कहता हूँ 'अन्धकः कुब्जकश्चैव' इत्यादि।

तब सुवर्णसिद्धि ने कहा–भाई ! तुम यथार्थ कहते हो। भाग्य के अनुकूल होने पर कल्याण ही होता है। तथापि सज्जनों की बात को मानना ही चाहिए। मनमाना अनुचित कार्य नहीं करना चाहिए। जो इस प्रकार दूसरे की बात न मानकर मनमाना कार्य करता है, वह तुम्हारी तरह नष्ट होता है–क्योंकि कहा भी है–

एकोदराः पृथग्ग्रीवा अन्योन्यफलभक्षिणः।
असंहता विनश्यन्ति भारुण्डा इव पक्षिणः ।।९२।।

अन्वयः– असंहताः एकोदराः पृथग्ग्रीवाः अन्योन्यफलभक्षिणः भारुण्डाः पक्षिणः इव विनश्यन्ति ।।९२।।

व्याख्या– एकोदरा इति ।असंहताः = न संहताः मिलिता इति असंहताः ऐक्यहीना इत्यर्थः, लोका इति शेषः (एक विचार न रखनेवाले लोक) **एकोदराः** = समानोदराः-अभिन्नकुक्षयः (एक उदरवाले) **पृथग्ग्रीवाः** = द्विमुखाः-भिन्नकण्ठाः (भिन्न कण्ठवाले) किन्तु **अन्योन्यफलभक्षिणः**- = परस्पर-फलखादनेच्छवः-विषमफलाशिनः (परस्पर विरुद्ध फल खानेवाले) **पक्षिणः** = खगा इव (पक्षियों की तरह) **विनश्यन्ति** ।।९२।।

हिन्दी– एक मत-विचार होकर कार्य न करने वाले, एक उदर किन्तु दो मुख-कण्ठवाले और परस्पर में दोनों पृथक् पृथक् फलों को खानेवाले भारुण्ड नाम के पक्षियों की तरह नष्ट हो जाते हैं ।।९२।।

चक्रधर आह–"कथमेतत् ?" सोऽब्रवीत्–

हिन्दी– चक्रधर ने पूछा–यह कैसे ? सुवर्णसिद्धि ने कहा–

(१४) भारुण्डपक्षि-कथा

कस्मिंश्चित् सरोवरे भारुण्डनामा पक्षी एकोदरः पृथग्ग्रीवः प्रतिवसति स्म। तेन च समुद्रतीरे परिभ्रमता किञ्चित्फलममृतकल्पं तरङ्गाक्षिप्तं समुद्रकल्लोलाहृतानि फलानि भक्षितानि। परमपूर्वोऽस्यास्वादः। तत्किं पारिजातहरिचन्दनतरुसम्भवम्? किं वा किञ्चिदमृतमयफलमिदमव्यक्तेनापि विधिनाऽपातितम्।'

एवं तस्य ब्रुवतो द्वितीयमुखेनाऽभिहितम्–'भो' यद्येवं तन्ममापि स्तोकं प्रयच्छ, येनाहमपि जिह्वालौल्यसौख्यमनुभवामि।' ततो विहस्य प्रथमवक्त्रेणाभिहितम्–'आवयोस्तावदेकमुदरम् एका तृप्तिश्च भवति। ततः किं पृथक् भक्षितेन? वरमनेन शेषेण प्रिया तोष्यते।'

व्याख्या– कस्मिंश्चिदिति। अमृतकल्पम् = सुधासदृशम्-मधुरम्-(अमृत के समान) **तरङ्गाक्षिप्तं** = तरङ्गैर्लहरीभिर्वेलाम्प्रत्यानीतम् (जल तरङ्गों द्वारा प्रवाहित किया हुआ) **अपूर्वः** = अद्भुतः **अव्यक्तेन** = अदृष्टेन, **विधिना** = दैवेन (भाग्यसे)।

एवमिति। स्तोकं = अल्पम् (थोडा) **जिह्वासौख्यम्** = आस्वादसुखम् जिह्वानन्दम् = (सुस्वादु) **तृप्तिः** = सन्तोषः (संतोष) **शेषेण** = अवशिष्टभागेन (बचे हुए से) **प्रिया** = भार्या (पत्नी)।

हिन्दी– किसी सरोवर पर भारुण्ड नाम का एक पक्षी, जिसे एक पेट (उदर) और दो अलग-अलग कण्ठ थे, रहता था। उसने एक दिन समुद्र के किनारे घूमते हुए अमृत-तुल्य स्वादिष्ट एक फल प्राप्त किया जो कहीं से समुद्र की तरङ्गों द्वारा तट पर लाया गया था। उसने उस फल को खाते हुए कहा– अहा! मैंने समुद्र की लहरों द्वारा प्रवाहित अनेक फलों को खाया है, किन्तु इस फल का स्वाद तो अद्भुत-अपूर्व-है, तो क्या यह पारिजात, हरिचन्दन आदि वृक्षों में उत्पन्न हुआ है अथवा यह अमृतकल्प फल भाग्य से ब्रह्मा ने मेरे लिये ला दिया है।

जब वह इस प्रकार कह रहा था तो उसके दूसरे मुख ने कहा–भाई ! यदि ऐसा है तो मुझे भी थोडा दो जिससे मैं भी जिह्वा का आनन्द प्राप्त करुँ। तब हँसकर प्रथम मुख ने कहा–भाई हम लोगों का पेट तो एक ही है, जिससे तृप्ति भी समान रूप से होती है, फिर अलग-अलग खाने से क्या लाभ है ? अच्छी बात तो यह है कि अवशिष्ट भाग प्रियतमा-भार्या-को दे दिया जाय, जिससे वह भी सन्तुष्ट हो जायगी।

एवमभिधाय तेन शेषं भारुण्ड्याः प्रदत्तम्। सापि तदास्वाद्य प्रहृष्टतमालिङ्गनचुम्बनसम्भावनाद्यनेकचाटुपरा बभूव। द्वितीयं मुखं तद्विनादेव प्रभृति सोद्वेगं सविषादं च तिष्ठति।

आथान्येद्युर्द्वितीयमुखेन विषफलं प्राप्तम्। तद् दृष्ट्वापरमाह–भो निस्त्रिंश ! पुरुषाधम ! निरपेक्ष ! मया विषफलमासादितम्। तत्तवापमानाद्भक्षयामि। अपरेणाऽभिहितं–'मूर्ख मा मैवं कुरु, एवं कृते द्वयोरपि विनाशो भविष्यति।' अथैवं वदता तेनापमानेन तत्फलं भक्षितम्। किं बहुना, द्वावपि विनष्टौ। अतोऽहं ब्रवीमि–'एकोदराः पृथग्ग्रीवा' इति।

चक्रधर आह–सत्यमेतत्, तद् गच्छ गृहम्। परमेकाकिना न गन्तव्यम्। उक्तं च–

व्याख्या–एवमिति। आलिङ्गनचुम्बनसम्भावनाद्यनेकचाटुपरा = आलिङ्गनमाश्लेषः, चुम्बनम् वक्त्रसंयोगोऽधरपानादि, सम्भावनमादरपूर्विका दृष्टिः तान्यादीनि येषामेवम्भूता ये चाटवः प्रिया व्यवहारास्तत्पराः तदभिमुखी बभूवेत्यर्थः (पति को आलिङ्गन, चुम्बन तथा कटाक्षादि द्वारा प्रसन्न करने लगी) निस्त्रिंश = दयाशून्य (दयाहीन)।

अथेति। निरपेक्ष = अपेक्षायाः निर्गतम् यथा स्यात् तथा, परानपेक्षिन् ! **अपमानेन** = स्वतिरस्कारहेतुना (तुम्हारे द्वारा अपमानित होनेसे) **द्वयोः** = **आवयवोः** = (हम दोनों का) विनष्टौ = प्रनष्टौ (नष्ट हो गये)।

हिन्दी– ऐसा कहकर उसने अवशिष्ट फल अपनी प्रिया पत्नी को दे

दिया। उस फल को खाने से वह प्रसन्न होकर अपने पति को आलिङ्गन, चुम्बन, कटाक्ष तथा मधुर भाषणादि युक्त विविध हावभावों से प्रसन्न करने लगी, किन्तु दूसरा मुख उसी दिन से उदास और खिन्न रहने लगा।

दूसरे दिन दूसरे मुख को विषफल प्राप्त हुआ। उसे लेकर उसने प्रथम मुख से कहा– हे निर्दय ! हे पुरुषाधम ! हे ! स्वयं भक्षी, आज मुझे यह विष का फल प्राप्त हुआ है, अतः मैं तुम्हारे अपमान के कारण इसे खाऊँगा। तब प्रथम मुखने कहा–मूर्ख ! ऐसा मत करो। ऐसा करने से हम दोनों नष्ट हो जायँगे। इतना कहने पर भी अपमान से दुःखी होकर उसने वह विषफल खा लिया। परिणामतः वे दोनों ही नष्ट हो गये। अतः मैं कहता हूँ कि–'एकोदरा पृथग्ग्रीवा'-इत्यादि।

चक्रधर ने कहा–तुम सत्य कहते हो, ठीक है, अब तुम घर जा सकते हो। किन्तु अकेले घर मत जाना। कहा भी है–

एकः स्वादु न भुञ्जीत नैकः सुप्तेषु जागृयात्।
एको न गच्छेदध्वानं नैकश्चार्थान्प्रचिन्तयेत्।।९३।।

अन्वयः– एकः स्वादु न भुञ्जीत, एकः सुप्तेषु न जागृयात्। एकः अध्वानं न गच्छेत्, एकः च अर्थान् न प्रचिन्तयेत् ॥९३॥

व्याख्या– एक इति। एकः = एकाकी, **स्वादु** = मधुरं द्रव्यं लड्डुकपेटादिकं न **भुञ्जीत** = शयानेषु सत्सु एकः **न जागृयात्** = जागरिता न भवेत्, **एकः** = असहायः **अध्वानं** = मार्गं न गच्छेत्, एकः सन् **अर्थान्** = अपेक्षितानवश्यकर्त्तव्यान् पदार्थान् **न प्रचिन्तयेत्** = नैव विचारयेत्, किन्त्वपरेण केनापीष्टेन मित्रादिना सहेव मन्त्रणां कुर्यादित्यर्थः ॥९३।

हिन्दी– सुस्वादु वस्तु अकेले नहीं खानी चाहिए। सोनेवालों के मध्य में अकेले नहीं जागना चाहिए। अकेले यात्रा नहीं करनी चाहिए। इसी प्रकार किसी विषय पर विचार-चिन्तन-अकेले नहीं करना चाहिए ॥९३॥

अपि कापुरुषो मार्गे द्वितीयः क्षेमकारकः।
कर्कटेन द्वितीयेन जीवितं परिरक्षितम्।।९४।।

अन्वयः– द्वितीयः कापुरुषः अपि मार्गे क्षेमकारकः (भवति) यथा द्वितीयेन कर्कटेन जीवितं परिरक्षितम् ॥९४॥

व्याख्या– अपीति । कापुरुषः = शक्तिहीनः नरः (शक्तिहीन पुरुष) **मार्गे** = (मार्ग में) **क्षेमकारकः** = करोतीति कारकः, क्षेमस्य कारकः, शुभकरः (हितकर) **जीवितम्** = जीवनम् (प्राण) ॥९४॥

हिन्दी– अत्यन्त शक्तिहीन या भीरु भी व्यक्ति मार्ग में कल्याणकारी हो जाता है, जैसे कर्कट ने साथ रहने के कारण ब्राह्मण के जीवन की रक्षा की ॥९४॥

सुवर्णसिद्धिराह–'कथमेतत् ? सोऽब्रवीत् ।

हिन्दी– सुवर्णसिद्धि ने पूछा–यह कैसे ? तब चक्रधर ने कहा–

(१५) ब्राह्मण-कर्कटक-कथा

कस्मिंश्चिदधिष्ठाने ब्रह्मदत्तनामा ब्राह्मणः प्रतिवसति स्म। स च प्रयोजनवशाद् ग्रामं प्रस्थितः स्वमात्राभिहितः—यत् 'वत्स कथमेकाकी व्रजसि ? तदन्विष्यतां कश्चिद् द्वितीयः सहायः। स आह—'अम्ब ! मा भैषीः। निरुपद्रवोऽयं मार्गः कार्यवशादेकाकी गच्छामि।'

अथ तस्य तं निश्चयं ज्ञात्वा, समीपस्थवाप्याः सकाशात् कर्कटमादाय मात्राभिहितं—'वत्स ! अवश्यं यदि गन्तव्यं तदेष कर्कटोऽपि सहायो भवतु। तदेनं गृहीत्वा गच्छ।' सोऽपि मातुर्वचनादुभाभ्यां तं पाणिभ्यां सङ्गृह्य कर्पूरपुटिकामध्ये निधाय पात्रमध्ये संस्थाप्य शीघ्रं प्रस्थितः।

व्याख्या— कस्मिंश्चिदिति। प्रयोजनवशात् = अत्यावश्यककार्यवशात् (आवश्यक कार्य से) **प्रस्थितः** = चलितः (चलने लगा) **द्वितीयः** = अपरः (अन्य कोई दूसरा) **माभैषीः** = भयं मा कुरु (तुम डरो मत) **निरुपद्रवः** = निर्विघ्नः (विना विघ्न के)।

अथेति। निकटस्थवाप्याः = समीपस्थवाप्याः (पास की बावली से) **कर्कटम्** = कुलीरम् (केंकड़ा) **सहायः** = सहचरः (सहायक) **कर्पूरपुटिकामध्ये** = कर्पूरसम्पूटे (कपूर की डिबिया में) **संस्थाप्य** = स्थापयित्वा (रखकर) **प्रस्थितः** = चलितः चला गया।

हिन्दी— किसी नगर में ब्रह्मदत्त नामक एक ब्राह्मण रहता था। एक दिन वह किसी काम से जब अन्य ग्राम को जाने लगा तो उसकी माँ ने कहा-बेटा ! अकेले क्यों जा रहे हो ? किसी को अपने सहायक रूप में ले लो। उसने (पुत्र ने) उत्तर दिया—माँ डरो मत। इस मार्ग में कोई भय नहीं है। कुछ काम है, जिससे मैं अकेला ही जा रहा हूँ।

तत्पश्चात् माँ ने पुत्र के जाने का निश्चय जानकर पास की बावली से एक कर्कट लाकर उसे देते हुए कहा— पुत्र ! यदि तुम्हें जाना आवश्यक ही हो तो

यह केकड़ा भी तुम्हारा सहायक होगा। तुम इसे अपने साथ लेकर जाओ। फिर माँ की आज्ञा लेकर उसने उस केकड़े को दोनों हाथों से पकड़कर कपूर की डिबिया में रख लिया। फिर उसे अपनी पोटली में रखकर शीघ्र चला गया।

अथ गच्छन्नैं ग्रीष्मोष्मणा सन्तप्तः कञ्चिन्मार्गस्थं वृक्षमासाद्य तत्रैव प्रसुप्तः। अत्रान्तरे वृक्षकोटरान्निर्गत्य सर्पस्तत्ससमीपमागतः। स चाभ्यन्तरगतां कर्पुरपुटिकामतिलौल्यादभक्षयत्। सोऽपि कर्कटस्तत्रैव स्थितः सन् सर्पप्राणानपाहरत्। ब्राह्मणोऽपि यावत्प्रबुद्धः पश्यति, तावत्समीपे मृतः कृष्णसर्पो निजपार्श्वे कुर्पुरपुटकोपरि स्थितस्तिष्ठति। तं दृष्ट्वा व्यचिन्तयत्–'कर्कटेनायं हतः' इति। प्रसन्नो भूत्वाऽब्रवीच्च– 'भोः सत्यमभिहितं मम मात्रा यत् –'पुरुषेण कोऽपि सहायः कार्यः। नैकाकिना गन्तव्यम्।' यतो मया श्रद्धापूरितचेतसा तद्वचनमनुष्ठितम्, तेनाहं कर्कटेन सर्पव्यापादनाद्रक्षितः।' अथवा साध्विदमुच्यते–

व्याख्या– अथेति। अथ = तदनन्तरम् (पश्चात्) **ग्रीष्मोष्मणा** = ग्रीष्मातपेन = (ग्रीष्म कालीन गर्मी से) **सन्तप्तः** = व्याकुलः **मार्गस्थं** = मार्गे स्थितम् (मार्ग में स्थित) **प्रसुप्तः** = शयितः (सो गया) **वृक्षकोटरात्** = वृक्षस्य विवरात् (वृक्ष के कोटर से) **निर्गत्य** = आगत्य (निकलकर) **तत्समीपं** = ब्राह्मणसन्निकटम् (ब्राह्मण के पास) **अभ्यन्तरगतां** = पुटिकान्तरगतां (पोटली के भीतर स्थित) **अपाहरत्** = अहरत्, **प्रबुद्धः** = सुप्तोत्थितः (सोकर उठने के पश्चात्) **व्यचिन्तयत्** = चिन्तयामास (विचार करने लगा) **अयं** = सर्पः (यह सर्प) **श्रद्धापूरितचेतसा** = श्रद्धया पूरितं चेतः यस्य सः श्रद्धापूरितचेतः, तेन, श्रद्धया (श्रद्धासे) **तद्वचनं** = मातुःवचनम् (माता की आज्ञा) **अनुष्ठितं** = कृतम् (पालन किया) **सर्पव्यापादनात्** = सर्पेण व्यापादनं, तस्मात् सर्पमारणात् (सर्प के मारने से) **रक्षितः** = मोचितः (बचाया)।

हिन्दी– इस प्रकार यात्रा करते हुए वह ब्राह्मण ग्रीष्म की गर्मी से व्याकुल होकर मार्गस्थ एक वृक्ष के नीचे सो गया। इसी बीच वृक्ष के कोटर से एक सर्प निकलकर उस ब्राह्मण के पास आ गया और ब्राह्मण के पास में रखी हुई

कपूर की डिबिया को जीभ की चपलतावश खाने लगा। वह केकडा जो पूर्व से ही उस कपूर की डिबिया में रखा हुआ था, उसने तत्काल साँप के प्राणों का हरण कर लिया। ब्राह्मण जब उठा तो उसने देखा कि समीप में कपूर की पोटली पर मरा हुआ काला साँप पड़ा हुआ है। उसे देखकर वह विचार करने लगा– निश्चय ही यह साँप इस केकड के द्वारा मार डाला गया है। बाद में प्रसन्न होकर बोला–अरे ! मेरी माँ ने ठीक ही कहा था, कि व्यक्ति को अपने साथ किसी को सहायक रूप में रखना चाहिए, अकेले यात्रा नहीं करनी चाहिए। यह ठीक ही हुआ कि मैंने माँ की आज्ञा श्रद्धा से मान ली, जिससे इस केकडे ने सर्प के काटने से मुझे बचा लिया, अथवा यह ठीक ही कहा गया है–

क्षीणः श्रयति शशी रविमृद्धो वर्द्धयति पयसां नाथम्।
अन्ये विपदि सहाया धनिनां श्रियमनुभवन्त्यन्ये ।।९५।।

अन्वयः– क्षीणः शशी रविं श्रयति, (तेन) ऋद्धः स पयसां नाथं वर्धयति। विपदि-धनिनां सहाया अन्ये (भवन्ति) (तेषां) श्रियं च अन्ये अनुभवन्ति ।।९५।।

व्याख्या– क्षीण इति। क्षीणः = क्षयङ्गतः, **शशी** = चन्द्रः- "चतुर्दश्यष्टमे यामे क्षीणो भवति चन्द्रमाः"-**रविं** = सूर्यं, **श्रयति** = आश्रयते (आश्रय लेता है) **ऋद्धः** = समृद्धः-पूर्णकालः (पूर्णि को पूर्णकलाओंका) यदा क्षीणोऽपि भवति चन्द्रस्तदापि तनुवृद्धौ सूर्यस्याश्रयात् समुद्रस्य शवरीवृद्धिनिमित्तं स्रवति सुधामयूखान् वर्षयति। **विपदि** = विपत्तौ (आपत्तिकाल में) **धनिनां** = समृद्धानां (श्रीमन्तों के) **सहायाः** = सहायकाः (सहायक, सहयोगी) **अन्ये** = इतरे (दूसरे लोग) **अनुभवन्ति** = भुञ्जन्ति (अभोग करते हैं) ।।९५।।

हिन्दी– अमावास्या का क्षीण चन्द्रमा जब सूर्य की रश्मियों का आश्रय ग्रहण कर बढ़ जाता है, पूर्ण हो जाता है, तब वह सम्पूर्ण जगत् को अपनी अमृत की वर्षा से आह्लादित करता है, तथा समुद्र के जल की वृद्धि करता है। अतः यह ठीक ही कहा–गया है कि धनिकों की विपत्ति में सहायक होनेवाले अन्य लोग होतें हैं, किन्तु उनकी संपत्ति का उपभोग करने वाले अन्य लोग हुआ करते हैं ।।९५।।

मन्त्रे तीर्थे द्विजे देवे दैवज्ञे भेषजे गुरौ ।
यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी ।।९६।।

अन्वयः– मन्त्रे, तीर्थे, द्विजे, देवे, दैवज्ञे, भेषजे, गुरौ च यस्य यादृशी भावना भवति तादृशी (एव तस्य) सिद्धिः भवति ।।९६।।

व्याख्या– मन्त्र इति । श्रद्धैव परमभीष्टसाधिका सुखोदर्का चेत्याह- **मन्त्रे** = वैदिके तान्त्रिके वा जप्ये, (वैदिक या तान्त्रिक जप में) **तीर्थे** = हरिद्वारादौ पुण्यक्षेत्रे (हरिद्वार आदि पुण्य-पवित्र क्षेत्र में) **द्विजे** = (वेदादि शास्त्रों के ज्ञाता ब्राह्मण में) **देवे** = (इन्द्रादि देवताओं में) **दैवज्ञे** = ज्योतिःशास्त्रज्ञे (ज्योतिष शास्त्र में) **भेषजे** = (औषधि में) **गुरौ** = (पूज्य पिता-विद्या देनेवाले आदि व्यक्ति में) **यादृशी** = यद्रूपा जैसी **भावना** = श्रद्धा होती है, **तादृशी** = वैसी, **सिद्धिः** = फलावाप्तिः **भवति** = जायते ।

हिन्दी– मन्त्र में, तीर्थ में, ब्राह्मण में, देवता में, ज्योतिषियों में, औषधियों में तथा गुरु में मनुष्य की जिस प्रकार की भावना-श्रद्धा-होती है, उसी प्रकार का फल भी उसे प्राप्त होता है ।।९६।।

एवमुक्त्वासौ ब्राह्मणो यथाभिप्रेतं गतः । अतोऽहं ब्रवीमि–'अपि कापुरुषो मार्गे' इति एवं श्रुत्वा सुवर्णसिद्धिं समनुज्ञाप्य स्वगृहं प्रति निवृत्तः ।

व्याख्या– एवमिति । श्रुत्वा = निशम्य (सुनकर) **समनुज्ञाप्य** = (आज्ञा लेकर) **प्रतिनिवृत्तः** = परावृत्तः (लौट गया) । प्रकृते तु–"कर्कटोऽयं तवसाहाय्यं करिष्यती' ति मातुर्वचसि श्रद्धां कृत्वा क्षुद्रमपि कर्कटकं सह नीतिवान् ब्राह्मणी-पुत्रः, तस्य च तथा गुरुवचसि श्रद्धावशादेव सर्पदंशात् कर्कटकेन रक्षा कृतेति फलितोऽर्थः ।

हिन्दी– ऐसा कहकर वह ब्राह्मण अपने इच्छित स्थान पर चला गया । इस प्रकार कथा सुनाने के पश्चात् चक्रधर ने सुवर्णसिद्धि से कहा–अतः मैं कहता हूँ कि यात्रा के अवसर पर साथ में रहने वाला निर्बल भी प्राणी अत्यधिक उपकारी होता है । जैसे कर्कटक ने उस ब्राह्मण की सर्पदंश से रक्षाकर उपकार

किया। तत्पश्चात् चक्रधर की बात सुनलेने के अनन्तर सुवर्णसिद्धि उसकी आज्ञा ग्रहणकर अपने घर की ओर लौट गया।

इति श्रीविष्णुशर्मविरचिते पञ्चन्त्रेऽपरीक्षितकारकं नाम पञ्चमं तन्त्रं समाप्तम् ।।५।।

इस प्रकार विष्णुशर्मा द्वारा रचित पञ्चतन्त्र का **'अपरीक्षितकारक'** नाम का यह पाँचवाँ तन्त्र समाप्त हुआ ।।५।।

महामहोपाध्यायानाम्पण्डित **श्री गजाननशास्त्रिचरणा**-नामनुगृहीतान्तेवासिना, पूज्यपाद **पण्डित श्री केशव शास्त्रि** चरणतनूजन्मना **मुसलगाँवकरोपनामकेन श्री राजेश्वरशास्त्रिणा** विरचितायां किरणावल्याख्यायां व्याख्यायां पञ्चतन्त्रस्य **पञ्चमं** तन्त्रम् ।।५।।

।। श्रीहरिः शरणम् ।।